डा० राममनोहर लोहिया के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार

Social and Political Ideas of Dr. Rammanohar Lohia

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डॉक्टर आफ फिलासफी उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

शोधकर्ता

सन्तोष कुमार अग्रवाल

निर्देशक

प्रो० मोहन लाल

भूतपूर्व अध्यक्ष

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

राजनीति विज्ञान विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९६

विषय सूची

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार

प्रस्तावनाः

भाग - एक

अध्याय - प्रथम

डॉ0 राम मनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं विचार स्रोत

डॉ0 लोहिया का बाल्यकाल, प्रारम्भिक एवं उच्च शिक्षा, शिक्षा काल में विभिन्न व्यक्तियो से लोहिया का सम्पर्क एवं राष्ट्रीय - अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का उन पर प्रभाव, संस्कृति, आदर्श एवं दर्शन का प्रभाव ।

अध्याय - द्वितीय

डॉ0 राम मनोहर लोहिया की चिन्तन परिधि

भाग - दो

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक विचार

अध्याय - तृतीय

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विचार

जाति प्रथा, हरिजन समस्या, भारतीय नारी, हिन्दू-मुस्लिम सबंध, शिक्षा, भाषा और संस्कृति ।

अध्याय - चतुर्थ

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के आर्थिक विचार

वर्ग-उन्मूलन, मूल्यनीति, आय नीति, भूमि का पुर्नवितरण, आर्थिक विकेन्द्रीकरण, अन्न सेना व भू-सेना, राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण, खर्च पर सीमा ।

भाग - तीन

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक विचार

अध्याय - पंचम्

राष्ट्रीय आन्दोलन में डॉ0 राम मनोहर लोहिया की भूमिका एवं उनके विचार

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति लोहिया का दृष्टिकोण, राष्ट्रीय आन्दोलन में लोहिया की भूमिका, लोहिया की रिहाई और क्रिप्स मिशन, लोहिया भारत छाड़ा आन्दोलन के परिवेश में, गोवा स्वाधीनता आन्दोलन में लोहिया की भूमिका ।

अध्याय - षष्ठम्

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक विचार

राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या, धर्म और राजनीति का संबंध, राज्य संबंधी विचार, जन शक्ति का महत्व, सविनय अवज्ञा (सिविल नाफरमानी), मौलिक अधिकार, वाणी स्वतंत्रता एवं कर्म नियंत्रण तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधी विचार ।

अध्याय - सप्तम्

मूल्यांकन

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध डॉ0 राम मनोहर लोहिया के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार के विश्लेषण का प्रयास है । अतएव इन्हीं दो पक्षों के विशेष सन्दर्भ में यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

भारत में समाजवादी आन्दोलन भी मार्क्सवादी विचारधारा एवं चिन्तन से प्रभावित रहा है लेकिन इसके बावजूद इसकी अपनी विशिष्ट शैलियाँ हैं जो उन्हें विश्व के समाजवादी चिन्तन से अलग श्रेणी प्रदान करती है । भारतीय समाजवादी आन्दोलन एवं चिन्तन मूलतः राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की अवधि में प्रस्फुटित हुआ है । अतएव निश्चित रूप से राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव भारतीय समाजवादी चिन्तकों पर देखने को मिलता है । इस प्रभाव के कारण समाजवादी चिन्तक मूलतः राष्ट्रवादी दिखाई पड़ते हैं । यदि इनका मूल्यांकन मार्क्सवादी चिन्तन के अन्तर्गत किया जाय तो उनका राष्ट्रवाद अनउपयुक्त लगेगा क्योंकि मार्क्सवाद राष्ट्रवाद को यथार्थ नहीं मानता और राष्ट्रवाद की परिधि से ऊपर होकर विश्व के मजदूरों को एक जुट होने के लिए आह्वान करता है।[1] अतएव भारतीय समाजवाद और मार्क्सवाद में उपर्युक्त अन्त:विरोध है जिसे यद्यपि स्थायी नहीं माना जा सकता । आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए और सामाजिक समानता को प्राप्त करने के लिए तत्कालीन परतंत्र भारत को स्वतंत्र बनाना प्रथम अपरिहार्य शर्त थी जिसको स्वतंत्रता संग्रामियों ने पूरा कर समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ने के लिए मार्ग प्रशस्त किया ।

1.देखिए, मार्क्स का कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो:

भारतीय समाजवादी चिन्तन एवं आन्दोलन पर भारतीय संस्कृति का भी प्रभाव है । वैदिक समाज और तद्उपरान्त जो भारतीय समाज ने स्वरूप धारण किया उसकी अच्छाइयों ने जो उन पर प्रभाव छोड़ा है उसका आभास उन भारतीय चिन्तकों के विचार में देखने को मिलता है । लेकिन वहीं दूसरी ओर जो भारतीय समाज की त्रुटियाँ रही हैं जिनके कारण सामाजिक विषमताएँ उत्पन्न हुई हैं उन्हें दूर करने के लिए भारतीय समाजवादी चिन्तकों ने जो परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत किये हैं वे मूलतः भारतीय हैं । इसके कारण भारतीय समाजवादी चिन्तन और आन्दोलन में मूल्य और चरित्र की प्रधानता को स्थान दिया गया है । जहाँ मार्क्सवादी चिन्तन इनकी उपेक्षा करता है वहीं भारतीय समाजवादी चिन्तन समाज को स्वस्थ बनाने के लिए इन्हें समाजवादी शैली में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है ।

भारतीय समाजवादी आन्दोलन एवं चिन्तन से जुड़े हुए महत्वपूर्ण व्यक्तियों में से आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, सम्पूर्णनन्द, राम मनोहर लोहिया, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन, एम0आर0 मसानी, कमला देवी, युसुफ मेहर अली, गंगाशरण सिन्हा, मधुलिमये एवं राज नारायण आदि हैं । लेकिन पंडित जवाहर लाल नेहरू का नाम भी यहाँ उल्लेखनीय है जिन्होंने भारत में लोकतान्त्रिक समाजवाद की नींव डाली । सामाजिक असमानता को दूर करने के लिए महात्मा गाँधी के प्रयास भी महत्वपूर्ण हैं । यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, डॉ0 लोहिया आदि ने कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना कर उसके नेतृत्व में समाजवादी आन्दोलन चलाया

जबकि नेहरू आदि ने कांग्रेस पार्टी संगठन के अन्तर्गत काम किया । इसके कारण जब कभी भारतीय समाजवादी आन्दोलन का उल्लेख होता है तो उनमें आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, डॉ0 राम मनोहर लोहिया तथा उनके अनुयायों का ही नाम विशेष रूप से लिया जाता है ।

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के अनुसार आधुनिक भारतीय समाजवादी आन्दोलन का प्रारम्भ सन् 1934 ई0 में हुआ । इस आन्दोलन को चार भागों में बाँटा जा सकता है । प्रथम सन् 1934 से सन् 1946 ई0 तक । समाजवादी चिन्तकों ने इस अवधि में जो प्रयास किया उसका परिणाम था कांग्रेस समाजवादी दल का निर्माण । इनके प्रमुख प्रतिपादक आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, डॉ0 लोहिया आदि थे । दूसरा काल सन् 1947 ई0 से सन् 1951 ई0 तक का है । सन् 1947 ई0 के कानपुर अधिवेशन में कांग्रेस समाजवादी दल कॉंग्रेस से पृथक हो गया और सामाजिक स्वतंत्रता और समानता के लिए कार्य करना प्रारम्भ कर दिया ।[1]

तीसरा काल सन् 1952 ई0 से सन् 1955 ई0 तक का है । इस अवधि में इस दल में किसान मजदूर पार्टी का विलयन हुआ और फलस्वरूप प्रजा समाजवादी दल का जन्म हुआ ।[2] इस काल में चौखम्भा राज्य का आदर्श

---

1. इस युग को डॉ0 लोहिया ने उफान वाला दिखावटी ताकत का युग कहा है देखिए, डॉ0 लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ - 2
2. इस युग को डॉ0 लोहिया एक तोड़ और तनाव का युग आपस में खींचातानी या मोड़ युग कहा है । देखिए, डॉ0 लोहिया - समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ - 2

भी दल ने रखा किन्तु दल की आपसी फूट के कारण डॉ0 लोहिया ने हैदराबाद, सम्मेलन में 31 दिसम्बर सन् 1955 ई0 को "सोशलिस्ट पार्टी" का निर्माण किया ।

चतुर्थ युग सन् 1956 ई0 से आज तक का है । इस युग में डॉ0 लोहिया ने समाजवादी आन्दोलन को अधिक बल दिया और प्रभावी ढंग से कांग्रेस विरोधी नीति प्रारम्भ की । इसके कारण गैर-कांग्रेसवाद का जन्म हुआ । वास्तव में समाजवादी आन्दोलन जो आगे बढ़ा उसका एक महत्वपूर्ण कारण गैर कांग्रेसवाद था । गैर - कांग्रेसवाद का जन्म सन् 1967 ई0 के आस-पास हुआ । गैर-कांग्रेसवाद का मुख्य उद्देश्य था कांग्रेस की नीतियों और कार्यक्रमों की आलोचना करना, प्रदेश और केन्द्र के स्तर पर कांग्रेसी सरकार का विरोध एवं उनपर प्रहार करना, विरोधी दलों को कांग्रेस के विरोध में सशक्त बनाने के लिए एकजुट बनाने का प्रयास करना और कांग्रेस को तोड़कर इन्हें सत्ता से हटाने का प्रयत्न करना ।

डॉ0 लोहिया ने जिन विषयों पर आन्दोलन संगठित किये और उन्हें मार्ग दिखलाया वे हैं अंग्रेजी के प्रभुत्व के खिलाफ, जाति-प्रथा के खिलाफ, दिमागी जड़ता और गुलामी के खिलाफ, नर-नारी समानता के लिए प्रयत्न, दामों की लूट के खिलाफ, शासक वर्ग की विलासिता के खिलाफ, सादगी और कर्त्तव्य की भावना को जागृत करने के लिए प्रयास, सीमा सुरक्षा को सशक्त बनाने के लिए आह्वान, देश के नकली बँटवारे के खिलाफ, किसानों के हितों को ध्यान

में रखते हुए कृषि विकास आन्दोलन पर बल लोहिया जी के आन्दोलनों के मुख्य आयाम रहे हैं ।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में डॉ0 राम मनोहर लोहिया के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार को समझने के लिए समस्त अध्याय को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा गया है । प्रत्येक भाग में दो-दो अध्याय संकलित हैं तथा अन्त में इनका मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । प्रथम अध्याय डॉ0 लोहिया के व्यक्तित्व एवं विचार स्रोत का विवरण एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है । द्वितीय अध्याय, डॉ0 राम मनोहर लोहिया की चिन्तन परिधि को अंकित करने का प्रयास करता है । तृतीय अध्याय भारतीय सामाजिक संरचना, भारतीय नारी, हिन्दू-मुस्लिम संबंध, शिक्षा, संस्कृति एवं भाषा को सम्मिलित किया गया है । अध्याय चार, डॉ0 लोहिया के आर्थिक विचार से सम्बद्ध मूल्यनीति, आयनीति, भूमि का वितरण, आर्थिक विकेन्द्रीकरण, अन्न सेना तथा भू-सेना, राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण एवं खर्च पर सीमा आदि विषयों को समझने का प्रयास किया गया है ।

तीसरे भाग के अन्तर्गत डॉ0 लोहिया के राजनीतिक विचारों को पंचम् एवं षष्ठम् दो अध्यायों के अन्तर्गत रखा गया है । पंचम् अध्याय, राष्ट्रीय आन्दोलन में डॉ0 लोहिया की भूमिका एवं उनके विचार को समझने का प्रयत्न करता है । तत्पश्चात् अध्याय षष्ठम् के अन्तर्गत डॉ0 लोहिया द्वारा प्रस्तुत इतिहास की समाजवादी व्याख्या, धर्म और राजनीति का संबंध, राज्य संबंधी विचार, जन-शक्ति का महत्व, सविनय अवज्ञा, मौलिक अधिकार, अन्तर्राष्ट्रीय संबंधी विचार को समझने का प्रयत्न किया गया है । अंतिम अध्याय डॉ0 लोहिया के सामाजिक

एवं राजनीतिक विचार का मूल्यांकन प्रस्तुत करता है ।

चूँकि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में डॉ0 राम मनोहर लोहिया के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है अतएव इस दृष्टि से अध्याय तृतीय, अध्याय पंचम् और अध्याय षष्ठम् के आकार अन्य अध्यायों की अपेक्षा सामान्य से कुछ अधिक वृहद हो गये हैं ।

शोध प्रबन्ध के विषय सामग्री को डॉ0 राम मनोहर लोहिया की मूल पुस्तकों उनके समकालीन सहयोगी समाजवादी चिन्तकों एवं राजनेताओं की पुस्तकों, लेखों एवं साक्षात्कारों से एकत्रित किये गये हैं । समाजवादी नेता स्वर्गीय श्री राजनारायण एवं स्वर्गीय श्री कर्पूरी ठाकुर (मुख्यमंत्री बिहार सरकार) श्री जनेश्वर मिश्र, जल संसाधन मंत्री, भारत सरकार का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मुझसे हुए अपने व्यक्तिगत वार्तालाप में डॉ0 लोहिया के चिन्तन एवं दर्शन के विषय में मेरा ज्ञान वर्द्धन किया ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की अध्ययन पद्धति मूलतः ऐतिहासिक तथा तकनीक विवरणात्मक और विश्लेषणात्मक है ।

शोध प्रबन्ध को पूरा करने के लिए जिन लोगों एवं संस्थाओं का सहयोग मिला है उनके प्रति आभार प्रगट करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है ।

सर्वप्रथम मैं अपने गुरू एवं शोध निर्देशक प्रो0 मोहनलाल भूतपूर्व अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रति कृतज्ञ हूँ

जिन्होंने शोध प्रबन्ध को पूरा करने में अमूल्य एवं पांडित्यपूर्ण मार्ग-दर्शन प्रस्तुत किया । मैं उनका हृदय से आभार प्रगट करता हूँ ।

मेरे गुरूजन प्रो0 ए0डी0 पन्त, भूतपूर्व अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय एवं भूतपूर्व निर्देशक गोविन्द बल्लभ पन्त सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, झूँसी, इलाहाबाद, प्रो0 हरिमोहन जैन, भूतपूर्व अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रो0 के0के0 मिश्रा, राजनीतिशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की मुझपर सदैव कृपा एवं स्नेह रहा है, उनकी प्रेरणा एवं सहायता के बिना यह कार्य संभव नहीं था अतएव इन सबका आभारी हूँ। प्रो0 उमाकांत तिवारी अध्यक्ष राजनीतिशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, के अमूल्य सुझाव, सहयोग तथा उत्साहवर्द्धन के लिए मैं उनका आभार प्रगट करता हूँ ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली द्वारा प्रदान की गई टीचर्स फैलोशिप के अन्तर्गत यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका है इसलिए मैं उनका आभारी हूँ ।

मैं अपने अग्रज श्री सतीश अग्रवाल जिनके सहयोग के बिना यह शोध कार्य प्रारम्भ करना ही संभव नहीं था । उन्होंने डॉ0 लोहिया के समाजवादी साहित्य को उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । मैं उनका आभार प्रगट करता हूँ ।
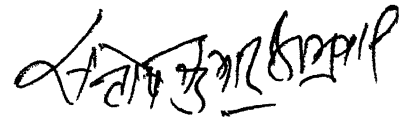
अन्त में मैं अपनी पत्नी श्रीमती सुनीता अग्रवाल राजनीतिशास्त्र विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय जिन्होंने अपने अध्ययन, अध्यापन तथा गृह के व्यस्ततम् कार्यक्रम के बावजूद शोध प्रबन्ध को पूरा कराने में हर प्रकार से सहयोग दिया है । उनके लिए आभार प्रगट करना केवल एक औपचारिकता ही होगी ।

मैं अपने परम मित्र डॉ0 इन्द्रदेव मिश्र, रीडर राजनीतिशास्त्र विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय के प्रति अपना आभार प्रगट करता हूँ जिनके परामर्श, उत्साहवर्द्धन और सहायता के बिना इस शोध प्रबन्ध का पूरा होना असंभव था । श्री श्याम कृष्ण पाण्डेय, मंत्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, श्री मोहन सिंह भूतपूर्व संसद सदस्य, स्वर्गीय श्री नरेन्द्र, श्री विपिन चन्द्र चौधरी, डॉ0 मिलन मुखर्जी, श्रीमती नीता मुखर्जी, डॉ0 ओ0पी0 सिन्हा एवं श्री वाई0पी0 पाण्डेय का भी मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने यथा समय मुझे सहयोग प्रदान किया ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की विषय सामग्री के संग्रह में योगदान देने के लिए इलाहाबाद विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, पब्लिक लाइब्रेरी, स्वराज्य भवन लाइब्रेरी, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी, नई दिल्ली, सोशलिस्ट पार्टी कार्यालय, नई दिल्ली तथा लखनऊ के पुस्तकालयाध्यक्षों एवं अधिकारियों का विशेष रूप से आभारी हूँ । अन्त में मैं अपने टंकण श्री राम प्रकाश साहू जी को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने बहुत ही अल्प समय में शोध प्रबन्ध को पूरा किया ।

दिनांक: 25.10.96

सन्तोष कुमार अग्रवाल
राजनीति विज्ञान विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद ।

अध्याय - प्रथम

डॉ0 राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं विचार स्रोत

प्रस्तुत अध्याय डॉ0 राम मनोहर लोहिया के सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों के विश्लेषण हेतु उनके व्यक्तित्व एवं विचार स्रोत को जानने का एक प्रयास है । किसी भी राजनीतिक व्यक्ति के विचार एवं गतिविधियों के समग्र अध्ययन के लिए उन समस्त परिस्थितियों एवं कारकों का अन्वेषण एवं विश्लेषण अपेक्षित है जिनका सम्यक प्रभाव व्यक्तित्व के निर्माण एवं विचारों के सृजन में हुआ है । यदि किसी व्यक्ति के सामाजिक, राजनीतिक चिन्तन, अध्ययन विश्लेषण का विषय वस्तु हो, तो उस दशा में समग्र परिस्थितियों एवं विचार स्रोतों के अध्ययन की पूर्वापेक्षा अपरिहार्य है । डॉ0 राम मनोहर लोहिया प्रस्तुत सन्दर्भ में उपर्युक्त दो आयामों को अपने जीवन एवं चिन्तन प्रणाली में समीपस्थ होकर अध्ययन की पूर्वापेक्षा की अपरिहार्यता को सिद्ध करता है । तथास्तु प्रस्तुत सन्दर्भ इस पूर्वापेक्षा की अपरिहार्यता डॉ0 राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व निर्माण के प्रभावी कारकों का एक समवेत अनावरण है । इस अनावरण का निष्नात् प्रयोजन उनके विचार स्रोतों के उदगम् अभिस्थल की खोज है । पुनश्च् यह अनवेषनात्मक प्रयास डॉ0 लोहिया की विचार श्रृंखला का क्रमिक एवं समस्या पक्षीय विश्लेषण में अन्यत्र सहायक होगा ।

व्यक्तित्व निर्माण के प्रभावीकारकों का रेखांकन का स्रोत लोहिया की स्वरचित रचनाएँ, लोहिया के समीपस्त व्यक्तियों द्वारा दी गई जानकारी, लोहिया के समकालीन सादृश्य दृष्टिकोणी विचारपन्थी एवं राजनीतिक अभिकर्ताओं की कृतियाँ एवं निबन्ध हैं । उक्त सन्दर्भित प्रथमिक स्रोतों के अतिरिक्त भारतीय विश्वविद्यालयों

में लोहिया पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध उपलब्ध पत्र-पत्रिकाओं में लोहिया के व्यक्तित्व से सम्बद्ध प्रकाशित लेख एवं लोहियावाद विषयान्तर्गत प्रकाशित अन्य पुस्तकें व्यक्तित्व रेखांकन प्रयास का द्वितीय स्रोत है ।

डॉ0 लोहिया के व्यक्तित्व पक्ष को अभिन्न रूप से प्रकाश में लाने वाला घटनाक्रम एवं परिस्थितियों का सूचीबद्ध स्वरूप निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है । तथापि इस प्रयास के पूर्व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत व्यक्तित्व का सापेक्षीय छद्म निर्धारक, वंश एवं वातावरण माने जाते हैं । मनोविज्ञान के इस दृष्टिकोण का प्रस्तुत प्रयास खण्डन नहीं करता; किंचित यह प्रयास इसी दृष्टिकोण का समर्थन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत करता है ।

संक्षिप्त जीवन परिचय:-

(क) डॉ0 राम मनोहर लोहिया का बाल्यकाल:-

डॉ राम मनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च सन् 1910 ई0 कस्बा अकबरपुर जिला फैजाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ । उनकी माँ चन्द्री, बिहार प्रान्त के मिथिलांचल अन्तर्गत चैनपटिया नाम के स्थान झुनझुनवाला परिवार की थीं । उनके पिता हीरा लाल लोहिया एक उद्भट देश भक्त और गान्धीवादी थे । लोहे का व्यापार उनके परिवार का पुश्तैनी पेशा था । इसलिए कई पुश्त से उनके परिवार को "लोहिया" परिवार कहकर सम्बोधित किया जाने लगा ।[1]

---

1. देखिए शरद ओंकार, लोहिया लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968 पृष्ठ - 34

राम मनोहर जब ढाई वर्ष के थे तभी उनकी माता का देहान्त हो गया था । इसके कारण हीरा लाल जी पर पिता और माँ दोनों के निर्वाह करने का भार आ पड़ा । हीरा लाल जी कर्त्तव्य परायण एवं दृढ़ विश्वासी व्यक्ति थे, तथापि वह अन्ध विश्वासों और निरर्थक रूढ़ियों के प्रति निर्मम दृष्टिकोण रखते थे । सन् 1919 ई0 में जब राम मनोहर लोहिया 9 साल के थे, तभी उनके पिता उन्हें पहली बार गाँधी जी के पास ले गए थे ।[1]

उपर्युक्त समस्त पारिवारिक परिस्थितियों का प्रभाव डॉ0 राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व निर्माण प्रक्रिया में नींव की ईंट की तरह प्रमाणित हुई। उदाहरणार्थ बचपन में मातृ बिछोह की छद्म करुणा वयोस्कोपरांत मातृ भूमि की व्यापक व्योम के अन्तराल में उद्वेलन एवं करुण क्रन्दन करने लगी । सम्पूर्ण मातृ भूमि में वह अपनी मातृ उद्गार अनुभूति का साक्षात्कार करने लगे । मातृ भूमि की पीड़ा की अनुभूति उद्वेलित होकर राष्ट्रीय संग्राम में कूद पड़े । पिता की देशभक्ति उनकी मातृ भूमि राष्ट्रीयता का निर्धारक प्रारम्भिक कारक का दूसरा उदाहरणीय प्रसंग है । अन्ध विश्वास एवं रूढ़िवादी व्यवहार के प्रति विरोधी दृष्टिकोण का सृजन एवं पथ प्रदर्शन उन्हें पिता के रूढ़ि विरोधी चिन्तन एवं प्रयास से मिला । कर्त्तव्य परायणता एवं अनुशासनबद्धता का बीजक भी उन्हें

---

1. गाँधी जी को दक्षिण अफ्रीका से भारत आए हुए तब केवल पाँच वर्ष ही हुए थे । गान्धी जी के साथ इस पहली मुलाकात को लोहिया जी ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है । "गान्धी जी के सन् 1919-20 ई0 के असयोग आन्दोलन के आह्वान पर मेरी उम्र के विद्यार्थियों ने विद्यालय का परित्याग किया था । मेरे पिता जी मुझे गान्धी जी के पास ले गए एवं जहाँ तक मुझे याद है, मैंने उनके चरण स्पर्श किए और उन्होंने मेरी पीठ को थपथपाकर आशीर्वाद दिया ।"- देखिए-राम मनोहर लोहिया, मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, नव हिन्द, हैदराबाद, 1963 पृष्ठ - 140

पिता से प्राप्त हुआ । स्नेह एवं प्रेम का उद्‌गार का अंकुर बाल्यावस्था में स्वतन्त्रता पूर्वक लड़कों के साथ खेल-कूद में मिला । निश्चित रूप से यह कहना अनुपयुक्त नहीं है की बाल्यकाल में ही महामानव गाँधी के दर्शन ने उनके हृदय और मानस पर एक मूक अमिट छाप छोड़ी । उन्हीं के शब्दों में - "मेरा विश्वास है कि मेरी पीढ़ी के अनगिनत लोगों को ऐसे ही अनुभव हुए होंगे और उस कृपालु और हाथ के स्पर्श से अत्यधिक प्रभावित हुए होंगे ।[1]

डॉ0 लोहिया की प्रारम्भिक शिक्षा:-

लोहिया की प्रारम्भिक शिक्षा अकबरपुर में हुई । उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा सन् 1925 ई0 में बम्बई के मारवाड़ी विद्यालय से उत्तीर्ण की । सन् 1927 ई0 में काशी विश्वविद्यालय से इण्टर की परीक्षा तथा विद्यासागर कॉलेज कलकत्ता से बी0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण की । उपर्युक्त शिक्षा प्राप्त करने के स्थान का अप्रत्यक्ष रूप से उनके व्यक्तित्व पर प्रभाव अवश्य पड़ा होगा । ग्रामीण वातावरण में प्रारम्भिक शिक्षा और पुनः मैट्रिक की शिक्षा बम्बई जैसे महानगर में ग्रहण करना भारतीय जीवन की दो चरम सीमा का द्योतक है । ग्रामीण प्रभाव से एकाएक महानगरीय प्रभाव किसी भी व्यक्ति के जीवन पर अनायास दो विभिन्न दृष्टिकोणों के समायोजन के लिए झंझावात परिस्थितियाँ पैदा करता है । डॉ0 लोहिया के दृष्टिकोण, लगाव एवं व्यवहार में यह प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है । संभवतः यह एक महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि है जिसने उनके विचारों को ग्रामीण

---

1. डॉ राम मनोहर लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, 1963, पृष्ठ-140

एवं नगरीय समस्याओं के जाल एवं प्रवाह में जूझने के लिए छोड़ दिया है । पुनः काशी[1] जैसी धर्म स्थली जहाँ हिन्दुत्व का व्यापक दर्शन शिव के मन्दिर से प्रवाहित होकर संसार को बिना किसी भेदभाव के सुख शान्ति का मन्त्रोचारण पृथ्वी एवं गगन के बीच निरन्तर गुंजायमान होता रहता है, लोहिया के नगरीय शैक्षणिक प्रभाव पर आध्यात्मवाद की अमिट छाप छोड़ देता है । शिव की काशी नगरी शिव के त्याग की अतिगामी कहानी की धरोहर को भारतीय संस्कृति के लिए एक अमूल्य आध्यात्मिक विरासत प्रदान करता है । वह शिव जो समस्त मूलतम् आवश्यकताओं को भी त्याग सकता है, त्याग एवं बलिदान की निरन्तर प्रेरक प्रवाह है । डॉ0 लोहिया के प्रारम्भिक जीवन पर अध्यात्मवाद का यह मंत्र उनके विचार शक्ति में केन्द्रस्थ हो गया । इस प्रकार उनके शैक्षणिक जीवन का यह काल भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद की सार्थकता को समझकर उसकी प्रासंगिकता को ढूँढ़ने के लिए जीवन पर्यन्त संघर्षशील, किन्तु संवेदनापूर्ण जीवन यापन करने के लिए, बाध्य करता है ।

उनके शिक्षाकाल का उपर्युक्त भारतीय चरण की समाप्ति के पश्चात् उनकी उच्च शिक्षा का दूसरा चरण प्रारम्भ होता है । यह दूसरा चरण विदेश भूमि पर विदेशी वातावरण में पूरा होता है । जुलाई 1929 ई0 में वह प्रथम बार इंग्लैण्ड उच्च शिक्षा हेतु गये किन्तु वहाँ वह अपने अनुकूल वातावरण न पाकर ब्रितानी शिक्षा व्यवस्था को छोड़कर उन्होंने जर्मनी में उच्च शिक्षा ग्रहण

---

1. शरद ओंकार, लोहियाः पृष्ठ - 43

करने का निश्चय किया । इसका प्रथम कारण यह था कि भारतीय संस्कृति से अभिभूत राम मनोहर लोहिया ने पाश्चात्य ब्रितानी शिक्षा संस्कृति को अनुपयुक्त समझा । दूसरा कारण संभवत यह था कि भारत पर ब्रिटिश शासन की साम्राज्यवादी शोषण नीति ने उनके मन में वहाँ की उच्च शिक्षा ग्रहण करने के प्रति अनाआस्था की भावना पैदा की हो । तृतीय इंग्लैण्ड में उन्हें ऐसा आभास हुआ कि वहाँ भारतीयों के साथ अंग्रेजों का बुरा व्यवहार हो रहा है । चतुर्थ, लन्दन पुस्तकालय में लोहिया द्वारा कुछ किताबों की खोज किये जाने की घटना है । उनके इस प्रयास के समय एक पुस्तकालय कर्मचारी ने कहा कि "अगर नई चीजों को जानना चाहते हो तो बर्लिन जाओ ।[1] अन्ततोगत्वा इस एक वाक्य ने लोहिया को बर्लिन में अध्ययन के लिए बाध्य किया । फलस्वरूप उन्होंने जर्मनी में बर्लिन स्थित हुम्बोल्ट विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया । बर्लिन विश्वविद्यालय में शोध उपाधि हेतु पंजीकृत लोहिया ने "नमक और सत्याग्रह"[2] विषय पर शोध प्रारम्भ किया।

---

1. कृष्ण नन्दन ठाकुरः डॉ0 राम मनोहर लोहिया के आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, एस0 चाँद एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली 1979, पृष्ठ - 10

2. डॉ0 लोहिया के शोध निर्देशक हुम्बोल्ट विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के प्रो0 बर्नर जोम्बार्ठ थे । प्रो0 जोम्बार्ठ टूटी-फूटी अंग्रेजी जानते थे, इस तथ्य ने राम मनोहर लोहिया को तत्काल जर्मन सीखने को प्रेरित किया तथा अपने शोध प्रबन्ध को जर्मन भाषा में लिखकर प्रस्तुत किया । इस घटना ने लोहिया जी को एक सबक सीखने का अवसर प्रदान किया यह सबक था 'ज्ञान के लिए किसी खास भाषा पर अधिकार जरूरी नहीं और अपनी मातृभाषा ही ज्ञान और अभिव्यक्ति का सबसे अच्छा माध्यम हो सकता है । "देखिए, ओम प्रकाश दीपक" लोहिया असमाप्त जीवन, समता अध्ययन न्यास जय प्रकाश नगर, बम्बई, 1978, पृष्ठ - 5

क्रमशः पृष्ठ 7 पर

सन् 1932 ई0 मे विश्वविद्यालय ने उनके शोध कार्य के लिए पी0एच-डी0 डिग्री प्रदान की । उनके शोधकाल के इस काल ने उनके राष्ट्रवादी धारणा की परिपक्वता प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया । सर्वप्रथम तत्कालीन जर्मनी में राष्ट्रवाद के प्रखर उत्कट रूप ने लोहिया के मस्तिष्क की राष्ट्रवादी विचारां सशक्त रूप से अंकुरित होने में सहायता प्रदान की । इसके परिणामस्वरूप उनका हृदय अगाध राष्ट्र प्रेम से विभोर हो गया तथा अपनी मातृ भूमि भारत को अंग्रेजों से स्वतन्त्र कराने के लिए नये-नये विचारों और संकल्पों का क्रान्तिकारी स्थली बनने के लिए अग्रसर होने लगा । उनके शोध प्रबन्ध का शीर्षक उनके राष्ट्रवादी संकल्पों को दुहराने के लिए बार-बार उन्हें कुरेदता रहा । शोध कार्य ने उन्हें राष्ट्रीय संग्राम का वस्तु परक अनुभव एवं विश्लेषण का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया।

शिक्षाकाल में विभिन्न व्यक्तियों से लोहिया का सम्पर्क एवं राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का उनपर प्रभावः-

माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करते समय एक अगस्त सन् 1920 ई0 में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की मृत्यु का लोहिया पर हृदय विदारक प्रभाव पड़ा । उन्होंने लोकमान्य की मृत्यु को महामृत्यु की संज्ञा दी[1] तथा मारवाड़ी

डॉ0 लोहिया के शोध प्रबन्ध के परीक्षक थे - प्रो0 कुर्ट सुमाखर, प्रो0 लुडवीग वेरनाडी, प्रो0 हरमन ऑकिन एवं प्रो0 दसनार । मौखिक परीक्षा में प्रो0 कुर्ट सुमाखर ने लोहिया से कहा "हिटलर अब जर्मनी में शासन में आने वाला है और यहाँ तुम्हारे लिए उचित होगा कि तुम जर्मनी छोड़ दो।" कृष्णनन्दन ठाकुर, डॉ0 राम मनोहर लोहिया के आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक विचार । पृष्ठ - 10

1. कृष्णनन्दन ठाकुर - डॉ0 राम मनोहर लोहिया के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विचार पृष्ठ - 3
   ओंकार शरद - लोहिया. पृष्ठ - 41

विद्यालय के अपने छात्र साथियों को हड़ताल का आवाह्न कर उनका नेतृत्व किया। इसी समय गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर लोहिया ने अध्ययन छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन की यात्रा में अपने को सम्मिलित कर लिया । अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का यह उनका प्रथम महत्वपूर्ण अवसर था ।

सन् 1928 में राम मनोहर लोहिया कलकत्ता युवक सम्मेलन में पं0 जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस के नजदीक आए । उनके विचारों एवं दृष्टिकोण को जानने का लोहिया के लिए यह प्रथम प्रत्यक्ष अवसर था । इसी समय लोहिया ने साइमन कमीशन[1] के विरोध में कलकत्ते में विद्यार्थियों को एकजुट करने के लिए तैयार किया तथा बहिष्कार अभियान का नेतृत्व किया। लोहिया के व्यक्तित्व पर सुभाष बोस के प्रभाव का उल्लेख करते हुए उनके एक सन्निकट सहयोगी का कथन है कि "सुभाष बोस के व्यक्तित्व में भी उग्रता थी, आकर्षण था । लेकिन इसके अलावा भी उनकी गाँधी जी के साथ कभी नहीं बनी, लोहिया को उन्होंने शायद इसलिए भी अधिक आकर्षित नहीं किया ।"[2]

सुभाष चन्द्र बोस के सम्पर्क में आने का दूसरा अवसर सन् 1933-34 था । इन दिनों बंगाल में एक तरह का राजनीतिक शून्य भी था । कोई सर्वमान्य नेता इस समय नहीं था । उग्र राष्ट्रवादियों के नेता के रूप में सुभाष चन्द्र बोस

---

1. यह घटना सन् 1928 ई0 में 'साइमन वापस जाओ' भारतीयों द्वारा बहिष्कार अभियान की एक श्रृंखला थी ।
2. ओम प्रकाश दीपक, 'लोहिया असमाप्त जीवनी' समता अध्ययन न्यास, जय प्रकाश नगर, गोरे गाँव (पूर्व) बम्बई, 1978, पृष्ठ - 7

सामने आ रहे थे । लेकिन लोहिया की समझ में सुभाष बोस की दृष्टि में वह व्यापकता नहीं थी ।[1] जिसकी आवश्यकता उस समय बंगाल को थी । अतएव लोहिया ने सुभाष बोस में उक्त अभाव को देखकर उसकी पूर्ति के लिए कलकत्ता और बंगाल को अपना कार्य क्षेत्र बनाया । इसका आशय यह है कि लोहिया ने सुभाष बोस की चरमपन्थी, उग्रवादी कार्य शैली की प्रासंगिक - प्रभावकारिता पर सन्देह प्रकट किया । लोहिया के व्यक्तित्व निर्माण के इस अन्तःकरण की प्रक्रिया में गाँधी एवं नेहरू के प्रभाव की वर्चस्वता भी एक मुख्य कारण रही है ।

जब राम मनोहर लोहिया अठारह बीस साल के रहे होंगे उस समय जवाहर लाल नेहरू का यह वक्तव्य कि स्वर्ग का साम्राज्य गरीबों का है । (The Kingdom of heaven is for the poor) लोहिया को अत्यधिक प्रभावित किया । उन्हीं के शब्दों में "उस वक्त तो सब श्रोताओं के साथ मैं भी चमत्कृत हो गया ।"[2] विश्व क्रान्ति और विश्व बंधुत्व का जो सपना उन दिनों देखा जा रहा था, और भारतीय नेताओं में जिसका स्वर जवाहर

---

1. ओम प्रकाश दीपक वही, (1978) पृ0-18
2. जवाहर लाल नेहरू ने एक सभा में भाषण करते हुए उपर्युक्त वाक्य का प्रयोग किया था राम मनोहर लोहिया बाद में पंडित नेहरू के कटु आलोचक भी रहे । नेहरू द्वारा प्रयुक्त उक्त वाक्य के मूल स्रोत का ज्ञान होने पर लोहिया की यह युक्ति नेहरू पर घातक प्रहार है । यह तो मुझे बाद में मालूम हुआ कि यह वाक्य उन्होंने कहाँ से चुराया था । वाक्य एजिंल्स का है:- उद्धृत ओम प्रकाश दीपक वही, 1978, पृ0 - 7

लाल नेहरू में सबसे अधिक मुखर था, उसमें लोहिया जैसे नौजवानों के लिए एक सहज आकर्षण था । नेहरू ने पूर्ण स्वतन्त्रता की आवाज उठाई थी और लोहिया के जर्मनी जाने के पहले सन् 1929 ई० में नेहरू की अध्यक्षता में ही कांग्रेस ने पूर्ण स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया था । इस घटना ने लोहिया के व्यक्तित्व पर स्वतन्त्रता संग्रामी बनने का अडिग प्रभाव छोड़ा । नेहरू का सहृदय एवं संवेदनशील व्यक्तित्व का प्रभाव भी लोहिया के व्यक्तित्व पर पड़ा है ।[1] लोहिया के शब्दों में "आचरण और भाव में श्री नेहरू जीवन के प्रति हमेशा सहृदय रहे हैं, सहृदयता हमेशा परिस्कृति की द्योतक होती है ।"[2]

गाँधी का लोहिया के व्यक्तित्व पर व्यापक प्रभाव पड़ा है । लोहिया के व्यक्तित्व पर गाँधीवादी प्रभाव को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है । प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत गाँधी से लोहिया के सम्पर्क एवं उनके विचार पुंजो के सन्निकट आने का अवसर है तथा द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम में गाँधी की भूमिका का लोहिया के व्यक्तित्व पर प्रभाव माना जा सकता है । पुनः प्रथम श्रेणी के गाँधीवादी प्रभावकों को कई उप-श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, शिक्षा काल में गान्धी अथवा गाँधी के विचारों

---

1. राम मनोहर लोहिया - गिल्टी मेन ऑफ इण्डियाज पार्टीशन, हैदराबाद, 1970, पृष्ठ - 9।
2. राम मनोहर लोहिया, भारत विभाजन के अपराधी, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970, पृष्ठ-82
   पंडित नेहरू के संबंध में लोहिया की आलोचक दृष्टि के लिए उपर्युक्त ग्रन्थ, विशेषकर पृष्ठ - 82-83 देखें ।

से सम्पर्क और शिक्षणेत्तरकाल में पुनः गाँधी और गाँधीवादी विचार स्रोतों से सम्पर्क एवं निकटता । इसी प्रकार शिक्षणेत्तर जीवन काल में गाँधीवादी सिद्धान्त की वास्तविक अनुभूति एवं उनका कार्यान्वयन में विभाजन गाँधीवादी प्रभावकों की द्वितीय श्रेणी का उप-विभाजन माना जा सकता है । तत्पश्चात् बर्लिन में शोध उपाधि हेतु चुने गये विषय वस्तु पर अध्ययन करने हेतु गाँधीवादी विचारों के मूल स्रोतों के सन्निकट आने का सुअवसर प्राप्त हुआ ।[1]

निष्कर्ष रूप में यदि लोहिया के व्यक्तित्व पर गाँधी, नेहरू और सुभाष के प्रभाव की मात्रा का अनुपात निकालने का प्रयास किया जाये तो यह कहा जा सकता है कि "गाँधी और लोहिया दोनों ही हमेशा 'एक समय में एक कदम' को मानते रहे । लेकिन गाँधी का कदम न्यूनतम से आरम्भ होकर धीरे-धीरे बढ़ता था, जिस कारण अक्सर वक्त उनसे आगे बढ़ जाता था । इसके विपरीत लोहिया का कदम 'अधिकतम' को लेकर चलता था, जिसके कारण बहुधा ऐसा लगता था कि वे असम्भव या असाध्य कार्य अपने हाथ में ले रहे हैं ।"[2] लोहिया ने उपर्युक्त महापुरूषों के जीवन का अपने जीवन पर प्रभाव की भावाभिव्यक्ति निम्नलिखित शब्दों में की है ।

---

1. राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँधी के विचार एवं कर्म का लोहिया पर प्रभाव के विश्लेषण के लिए इसी अध्याय के अन्तर्गत राष्ट्रीय आन्दोलन का लोहिया पर प्रभाव उपशिर्षक के अन्तर्गत देखें ।

2. ओम प्रकाश दीपक, वही 1978, पृष्ठ - 39

"मेरी पीढ़ी के लोगों के लिए गाँधी जी कल्पना थे, जवाहर लाल जी कामना और नेताजी सुभाष कर्म । कल्पना सर्वदा दृष्टा रहेगी, तथापि विस्तार में उसके कुछ अपने दोष थे, पर उसकी कीर्ति, मैं आशा करता हूँ कि समय के साथ चमकेगी ।"[1]

डॉ0 लोहिया के समकालीन सहचारियों में जिनके साथ विचारों के आदान-प्रदान एवं संघर्ष पूर्ण सामाजिक समस्याओं पर उन सभी के साथ जूझने का अवसर मिला, उन लोगों ने एक दूसरे को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य प्रभावित किया है । इन सहचरियों में मुख्य रूप में आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, यूसुफ मेहर अली, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता[2] आदि नाम उद्घृत किये जा सकते हैं । आचार्य नरेन्द्र देव की पहली बार मई सन् 1934 में लोहिया जी से मुलाकात हुई । उस भेंट में लोहिया के संबंध में आचार्य नरेन्द्र देव ने निम्नलिखित उद्गार व्यक्त किये हैं - "मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि जब पार्टी का विधान बना तो केवल डॉ0 लोहिया और हम इस पक्ष में थे कि उद्देश्य के अन्तर्गत पूर्ण स्वाधीनता भी होनी चाहिए अन्त में हम लोगों की विजय हुई ।"[3]

---

1. राम मनोहर लोहिया · भारत विभाजन के अपराधी - पृष्ठ-81
2. उद्घृत उपर्युक्त व्यक्तियों के संक्षिप्त इतिहास जानने के लिए देखिए जी0एस0 भार्गव, लीडरस् ऑफ दि लेफ्ट; देखिए एल0पी0 सिन्हा- दि लेफ्ट विंग इन इण्डिया (1919-47) दामूचक मुजफ्फरपुर, 1965 अध्याय 6 पृ0-304-384; देखिए ब्रजेन्द्र प्रताप गौतम, समाजवादी चिन्तन का इतिहास उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1978, अध्याय दस पृ0-423-588
3. आचार्य नरेन्द्र देव - राष्ट्रीयता और समाजवाद, बसन्त पंचमी 2006, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, पृष्ठ - 688

देश के बाहर जिन प्रमुख व्यक्तित्वों के सम्पर्क में आकर लोहिया प्रभावित हुए उनमें ग्रेटा गार्बो जोसेफीन बेकर बर्नाडशा आइन्सटीन आदि है । ग्रेटा गार्बो[1] और जोसेफीन बेकर का अपूर्व सौन्दर्य तथा उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व ने लोहिया के मन को जीत लिया । इसका यह आशय है कि कठोर दृढ़ निश्चयी राम मनोहर लोहिया सौन्दर्य के प्रति उतने ही भावुक थे जितना कि कोई कवि अथवा साहित्यकार हो सकता है । आइन्सटीन से लोहिया की मुलाकात और आइन्सटीन का सापेक्षवाद का प्रभाव भी लोहिया के व्यक्तित्व पर पड़ा है । आइन्सटीन होम्बोल्ट विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान पढ़ाते थे । लोहिया कौतुहलवश एक दिन आइन्सटीन की कक्षा में गये थे । छात्र-छात्राएँ विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक को घेर कर बैठे थे । कोई प्रश्न-पूछता । फिर दूसरे छात्र उसका उत्तर देने की चेष्टा करते । आइन्सटीन के चेहरे पर एक धैर्य और स्नेह भरी मुस्कान थी । बीच-बीच में कोई संकेत सूत्र देकर वे छात्रो की सहायता करते, या किसी त्रुटि की ओर उनका ध्यान खींचते । इस प्रकार छात्र स्वयं अपनी बुद्धि से अज्ञान से ज्ञान की ओर टटोलते हुए बढ़ते और वैज्ञानिक अध्यापक स्नेह से देखता, हुआ उन्हें बढ़ावा देता तथा जरूरत पड़ने पर थोड़ा सहारा भी । उस कक्षा को देखकर लोहिया को लगा कि प्राचीन भारतीय ऋषियों के आश्रम में भी शायद ऐसी कक्षाएँ लगती रही होंगी ।[2]

---

1. ग्रेटा गार्बो और जोसेफीन बेकर (नीग्रोनायिका) अभिनेत्री थी । बेकर के संबंध में लोहिया की आशक्ति की अभिव्यक्ति उन्हीं के शब्दों में: "उसकी आँधी में मैं भी बह गया था ।" उद्धृत, ओम प्रकाश दीपक, 1978, पृ0-9
2. ओम प्रकाश दीपक, लोहिया असमाप्त जीवनी: पृष्ठ - 10

देश-विदेश भ्रमण, घटनाओं एवं परिस्थितियों का डॉ0 लोहिया पर प्रभावः-

डॉ0 लोहिया के व्यक्तित्व और विचार स्रोत को जानने हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का उन पर जो प्रभाव पड़ा उसकी जानकारी अपेक्षित है ।[1] इस प्रयास में प्रस्तुत विवरण दो अनुभागों में विभक्त है । प्रथम अनुभाग के अन्तर्गत राष्ट्रीय आन्दोलन के लोहिया के व्यक्तित्व पर प्रभाव का अन्वेषन एवं मूल्यांकन किया गया है । दूसरे अनुभाग में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में होने वाली उन घटनाओं का उनके व्यक्तित्व पर प्रभाव का उदाहरण प्रस्तुत करता है । इसी अनुभाग के अन्तर्गत लोहिया ने जिन देशों की यात्रा की उनकी परिस्थितियों की प्रत्यक्षानुभूति एव उसके प्रभाव को अंकित करने की चेष्टा की गई है ।

॥1॥ भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्रामः-

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में लोहिया पर सर्वाधिक प्रभाव गान्धीवादी सिद्धान्त एवं व्यवहार का पड़ा । लेकिन यह कहना अनुचित नहीं होगा कि लोहिया पर गाँधी का सर्वप्रथम प्रभाव पिता हीरा लाल जी के साथ हुई घटना द्वारा पड़ा । 21 मई सन् 1930 को सत्याग्रहियों का एक दल घरसाना नमक खान में अब्बास तैय्यब जी के नेतृत्व में गया तैय्यब की गिरफ्तारी के पश्चात्

---

1. विशेष जानकारी के लिए देखिएः ओम प्रकाश दीपकः "लोहिया असमाप्त जीवनी" पृष्ठ-6
   डॉ0 नानक चन्द्र मेहरोत्राः लोहिया ए स्टडीः आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, 1978, पृष्ठ - 2
   इन्दूमति केलकर. लोहिया सिद्धान्त और कर्म, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 8

सरोजनी नायडू इस सत्याग्रहियों के नेतृत्व के लिए नेता चुनी गई । 5। सत्याग्रही घरसना नामक नमक खान की ओर बढ़े पुलिस ने उन सत्याग्रहियों को जिनमें उनके पिता भी सम्मिलित थे को निर्ममता पूर्वक पीटा/घटनोपरान्त उनके पिता ने उन्हें एक लम्बी चिट्ठी घरसाना में पुलिस जुल्म एवं सत्याग्रहियों के साथ किये गये अन्याय एवं पशु तुल्य व्यवहार के बारे में लिख भेजी ।[1] 23 मार्च, सन् 1930 को भारत के महान सपूत क्रांतिकारी सरदार भगत सिंह को लाहौर में फाँसी दे दी गई । इन घटनाओं ने लोहिया के मन पर गहरी छाप छोड़ी । संक्षेप में, सन् 1939 से 1942 ई0 के बीच लोहिया गान्धी जी के अधिकाधिक नजदीक हुए और कई बातों में उन्हें गान्धी जी का समर्थन भी मिला । सन् 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रभाव भी लोहिया पर पड़ा है ।[2] इस प्रकार कुल मिलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन की तीन मुख्य घटनाएँ उनके स्वतन्त्रता संग्राम सम्बन्धित दृष्टिकोणों का प्रभावी कारक माना जा सकता है । प्रथम साइमन कमीशन बहिष्कार आन्दोलन, द्वितीय नमक आन्दोलन और तृतीय 1942 का भारत-छोड़ो आन्दोलन । इन मुख्य घटनाओं के अतिरिक्त डॉ0 लोहिया अन्त तक राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधियों से प्रेरित एवं उद्वेलित होते रहे ।

[2] अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का लोहिया के जीवन पर प्रभावः-

प्रस्तुत सन्दर्भ को समझने हेतु इसे निम्नलिखित उप-भागों में विभाजित

---

1. ओंकार शरद, लोहियाः पृष्ठ - 57
2. इन्दुमति केलकर, लोहियाः सिद्धान्त और कर्म

किया जा सकता है । (1) स्वतन्त्रता के पूर्व विदेशी अनुभव, (2) अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ जिनमें मुख्य रूप से विश्व युद्ध सम्मिलित हैं और (3) साम्यवादी विचारधारा एवं व्यवस्था का अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उदय । लोहिया का प्रथम विदेशी अनुभव उपर्युक्त प्रथम सन्दर्भ के अन्तर्गत शिक्षा काल में उनके द्वारा ब्रिटेन एवं जर्मनी में प्रवास का अनुभव माना जा सकता है । शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् स्वदेश वापस आना एवं स्वतन्त्रता के पश्चात् विश्व भ्रमण तथा उन देशों की तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं विचार स्रोत भी इसी सन्दर्भ को समझने हेतु आवश्यक है ।

जर्मनी में खोज कार्य करते हुए लोहिया ने अपनी आँखों के सामने नाजीवाद का उदय देखा ।[1] उसके हाथों साम्यवाद और समाजवाद को पराजित होते देखा । इसके परिणाम स्वरूप वह इस नतीजे पर पहुँचे कि नाजीवाद और साम्यवाद बुरे सिद्धान्त हैं लेकिन उनमें संकल्प शक्ति है । समाजवाद अच्छा सिद्धान्त है, लेकिन उसमें संकल्प - शक्ति नहीं है । संकल्प शक्ति वाला समाजवाद, यह उनका वैचारिक लक्ष्य बना ।[2] सन् 1936 ई0 में स्टालिन ने एक ओर 'अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर', 'जन मोर्चा' की नीति चलाई तथा दूसरी ओर उसने रूस के अन्दर अपने उन पुराने साथियों का सफाया करना प्रारम्भ किया जिनके बारे में जरा भी सन्देह था कि वे शायद (उ)सका साथ न दें । सोवियत संघ के गाँवों

---

1. ओम प्रकाश दीपक, लोहियाः असमाप्त जीवनी - पृष्ठ-6
   ओंकार शरद, लोहियाः पृष्ठ - 61
2. ओम प्रकाश दीपकः लोहिया असमाप्त जीवनी, पृष्ठ - 7

में सामूहिक खेती और राजकीय खेती के कार्यक्रम लागू करने में भी बड़े पैमाने पर किसानों का दमन आरम्भ हुआ । राम मनोहर लोहिया के मन पर इन घटनाओं ने प्रतिकूल प्रभाव डाला । साम्यवाद के समर्थक न होने पर भी लोहिया अभी तक मानते थे कि रूस एक नई और सामाजिक सभ्यता की स्थापना की दशा में एक प्रयोग है । उक्त घटना के पश्चात् उन्हें यह विश्वास हो गया कि उनकी सोवियत संघ के संबंध में उपर्युक्त धारण सही नहीं है । अतएव उनकी दृष्टि में अब रूस की क्रान्ति अब केवल रूस की है, और वह भी समर्थन योग्य नहीं ।[1]

इन्हीं दिनों यूरोप में एक और भी घटना हुई - स्पेन का गृह युद्ध। स्पेनी गण राज्य की सरकार के विरूद्ध फासिस्टों ने जनरल फ्रैंकों के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया था । गणराज्य की सरकार में समाजवादी भी थे, साम्यवादी भी तथा अन्य लोग भी । फ्रैंकों की सेना को हिटलर के जर्मनी और मुसोलनी के इटली से पूरी मदद मिल रही थी, लेकिन फ्रांस और इंग्लैण्ड जैसे लोकतांत्रिक कहे जाने वाले देशों ने 'हस्तक्षेप न करने' की घोषणा की । बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की क्रांतिकारी अन्तर्राष्ट्रीयता स्पेन के गृह युद्ध में मारी गई तथा अन्त में फासिज्य की विजय हुई । इस घटना ने राम मनोहर लोहिया के मस्तिष्क को अन्तर्राष्ट्रीय जगत के भविष्य के संबंध में सोचने के लिए अनुप्रेरित

---

1. इन्दुमति केलकर, लोहिया: सिद्धान्त और कर्म, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 35-36

किया ।[1]

अफ्रीका का उस समय एक मात्र स्वतंत्र देश अबीसिनिया पर मुसोलनी के आक्रमण ने भी डॉ0 लोहिया के विचार जगत को प्रभावित किया । राष्ट्र संघ (लीग ऑफ नेशन्स) और यूरोप अमेरिका के सभी देश इस आक्रमण को चुपचाप देखते रहे । इटली की आधुनिक सेना और वायु सेना के सामने सम्राट हेले सिलासी निःसहाय बन गये । फिर भी मुसोलनी को आसानी से विजय प्राप्त नहीं हुई अन्त में हेले सिलासी भाग कर इंग्लैण्ड चले गये ।

उपर्युक्त सभी घटनाओं से राम मनोहर लोहिया को विश्वास हो गया कि मनुष्य जाति की नई सभ्यता की स्थापना के लिए होने वाली विश्व क्रान्ति की प्रेरणा और शक्ति यूरोप से नहीं प्राप्त हो सकती न साम्यवाद से और न तथाकथित लोकतन्त्र से । इसके पश्चात् लोहिया का ध्यान एशिया और अफ्रीका की पराधीन जनता पर अधिक केन्द्रित होने लगा । उनमें यह धारणा बलवती

---

1. 13 अप्रैल 1936 ई0 को डॉ0 लोहिया ने उपर्युक्त घटना के संबंध में एसोशिएटेड प्रेस के संवाददाता से एक घटना में कहा कि हस्तक्षेपन करने के लिए बनाई गई कमेटी ने स्पेन की जनतांत्रिक सरकार द्वारा हथियार खरीदने पर तो प्रतिबन्ध लगा दिए, लेकिन फासिस्ट देशों की पलटनें, हवाई जहाज और टैंक स्पेन में फ्रैंको की मदद करते रहे हैं, वास्तव में यह नीति हस्तक्षेप न करने की नहीं रही, वरन् फासिस्टों के पक्ष में हस्तक्षेप करने की बन गई । देखिए इन्दुमति केलकर, लोहियाः सिद्धान्त और कर्म, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 30-36

होने लगी कि इन महाद्वीपों की गुलाम और पीड़ित जनता यदि संयुक्त मोर्चा बनाकर अपनी स्वतन्त्रता के साथ कुछ आधार भूत सिद्धान्तों को लेकर लड़े तो नई विश्व सभ्यता की आधार भूमि तैयार हो सकती है । तत्कालीन फ्रांस तथा अमेरिका आदि की सामाजिक एवं राजनीतिक पहल ने भी उनके मानस-स्थल पर प्रभाव डाला । फ्रांस के सन्दर्भ में लोहिया ने कहा था कि जो बातें फ्रांसीसी क्रान्ति की बुनियाद थी, वही अब अमल में नहीं लाई जाती और उनकी अवहेलना की जाती है ।[1]

संयुक्त राज्य अमेरिका के नागरिक स्वतंत्रता आन्दोलन से भी राम मनोहर लोहिया को प्रेरणा मिली है ।[2] अमेरिका के सन्दर्भ में उनका मत था कि वह देश धनिकों का स्वर्ग बनता जा रहा है तथा वहाँ लोकतांत्रिक अधिकारों पर बड़े ज़ोर से हमला हो रहा है ।[3] इसी सन्दर्भ में जापान की तत्कालीन घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लोहिया ने जापान के तोजो की आलोचना करते हुए लिखा है कि "मैं तोजो को उतना ही बुरा मानता हूँ जितना हिटलर या या चर्चिल को क्योंकि यह बुरा हत्याकाण्ड (युद्ध के समय का) अगर इनमें

---

1. राम मनोहर लोहिया, दि स्ट्रगल फॉर सिविल लिवर्टीज, ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी फारेन डिपार्टमेंट, 1936, पृष्ठ - 1-7
2. बृहद जानकारी के लिए देखिए डॉ0 लोहिया के लेख "सिविल लिवर्टीज इन अमेरिका", वही पृष्ठ - 8-19
3. इन्दूमति केलकर, 1963, पृष्ठ - 8-19

से किसी एक की विजय से ही समाप्त होगा तो आज से ज्यादा अच्छी दुनिया बनाने की उम्मीदें मिट्टी में मिल जायेंगी ।"[1]

संस्कृति, आदर्श एवं दर्शन का राम मनोहर लोहिया पर प्रभावः-

डॉ० राम मनोहर लोहिया के विचार स्रोतों के प्रेरक धर्म, संस्कृति, आदर्श एवं दर्शन भी रहे हैं । धर्म के जिस पक्ष ने उनके विचार उद्गम को प्रभावित किया वह है धर्म का मानवतावादी दृष्टिकोण । वह धर्म के साम्प्रदायिक भावावेशों को वास्तविक धर्म की संज्ञा नहीं देते थे । उनकी दृष्टि में धर्म की रुढ़िवादी संकीर्ण व्याख्या मानव हित के बदले मानव अहित अनायास कर डालती है । इसका यह आशय है कि लोहिया ने धर्म की रुढ़िवादी कट्टरता के विपक्ष में अपनी मान्यता कायम की ।[2] धर्म का विवेचन लोहिया ने भारतीय दर्शन के आधार पर किया । उपनिषद, गीता, राम, कृष्ण और शिव का दार्शनिक, आध्यात्मिक स्वरूप उनके मन को छू गया इसके कारण धर्म का उन्होंने आध्यात्मिक दार्शनिकीकरण कर दिया है । यही कारण है कि उनके विचारों में धर्म का जुड़ाव अध्यात्म

---

1. लोहिया ने उपर्युक्त दृष्टिकोण जापान की विजय का विश्लेषण करते हुए प्रगट किया था, देखिए, लोहिया का निबन्ध "विश्वासघाती जापान या आत्म सन्तुष्ट ब्रिटेन", हरिजन, 19 अप्रैल, 1942

2. डॉ० राम मनोहर लोहिया, हिन्दू बनाम हिन्दू, पृष्ठ - 6

   डॉ० राम मनोहर लोहिया, धर्म पर एक दृष्टि, पृष्ठ - 4-5

से और अध्यात्म का दर्शन से देखने को मिलता है । प्रस्तुत संदर्भ में राम, कृष्ण और शिव के[1] प्रति लोहिया के दृष्टिकोण का उल्लेख उनके मन पर आध्यात्मिक दार्शनिक धर्म का प्रभाव देखने को मिलता है । राम, कृष्ण और शिव का आध्यात्मिक दार्शनिक चरित्र का विश्लेषण लोहिया ने इस प्रकार किया है । "राम, कृष्ण और शिव भारत में पूर्णता के तीन महान स्वप्न हैं । सबका रास्ता अलग-अलग है । राम की पूर्णता मर्यादित व्यक्तित्व में है, कृष्ण की उन्मुक्त या सम्पूर्ण व्यक्तित्व में, और शिव की असीमित व्यक्तित्व में, लेकिन हर एक पूर्ण है । किसी एक का एक या दूसरे से अधिक या कम पूर्ण होने का कोई सवाल नहीं उठता । पूर्णता में विभेद कैसे हो सकता है ? पूर्णता में केवल गुण और किस्म का विभेद होता है ।"[2] राम, कृष्ण और शिव के बारे में आध्यात्मिक दर्शन ने लोहिया को कई प्रकार से प्रभावित किया उदाहरणार्थ जीवन अथवा समाज के आदर्श के निर्धारण में उनसे उन्हें प्रेरणा मिली । इसी प्रकार समाज में व्याप्त विसंगतियों,. त्रुटियों एवं अन्यायों को दूर करने के लिए उपयुक्त साधन के चयन निर्धारण में सहायता मिली ।[3] इसका यह अर्थ नहीं है कि लोहिया ने बिना सोचे समझे उपर्युक्त तीन देव महापुरुषों समस्त स्वरूपों एवं व्यवहारों की स्तुति

---

1. डॉ० राम मनोहर लोहिया, मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला, पृष्ठ - 1-2

2. डॉ० राम मनोहर लोहिया, इण्टरवल ड्यूरिंग पॉलिटिक्स, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1965, पृष्ठ - 32-33

3. वही, पृष्ठ - 29-49

की हो । इस सन्दर्भ में उनका यह कथन उद्दाहरणीय है ।" राम का गिरा हुआ रूप संकीर्ण व्यक्तित्व, कृष्ण का गिरा हुआ दुराचारी व्यक्तित्व, शिव का गिरा हुआ रूप स्वरूपहीन व्यक्त्वि बन जाता है । राम के दो अस्तित्व हो जाते हैं, मर्यादित और संकीर्ण, कृष्णा के उन्मुक्त और क्षुद्र प्रेमी; शिव के असीमित और प्रसांगिका ।"[1] स्पष्ट है कि डॉ0 लोहिया ने भारतीय पुराण, स्मृति एवं महाकाव्य के देवों के जीवन चरित्र का बौद्धिक अनुशीलन किया है तथा केवल उनके परिष्कृत स्वरूपों को ही स्वीकार करने के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की है । तदस्तु देखिए डॉ0 लोहिया का यह दृष्टिकोण उन्हीं के शब्दों में "ए भारत माता, हमें शिव का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो तथा राम का कर्म एवं वचन दो । हमें असीम मस्तिष्क और उन्मुक्त के साथ-साथ जीवन की मर्यादा दो ।"[2]

डॉ0 राम मनोहर लोहिया पर भारतीय संस्कृति तथा दर्शन के प्रभाव का बोध हमें उनके द्वारा रचित अन्य पुस्तकों एवं लेखों से होता है । यहाँ उदाहरणीय है कृष्ण और राधा के सन्दर्भ में उनके विचार का एक प्रसंग । कृष्ण का राधा और गोपियों के प्रति स्नेह तथा विभेद अभाव के समस्त बृजवासी एवं मानव जाति के प्रति प्रेम, सम्प्रदायवाद के वैमनस्य विचारधारा के अन्त के लिए प्रेरक स्रोत हैं । लोहिया की दृष्टि में कृष्ण की भूमिका रुढ़िवादी धर्म की भूमिका नहीं है वरन् प्रेम, सदभाव, देशभक्ति, न्याय, अधिकार, कर्त्तव्य, ज्ञान, सुख-समृद्धि,

---

1. डॉ0 राम मनोहर लोहिया, वही, पृष्ठ - 48-49

2. वही "

विश्व-शक्ति, राजधर्म आदि को वास्तविक एवं वृहद परिप्रेक्ष्य में समझने एवं प्राप्त करने की भूमिका है ।[1] अस्तु यह कहा जा सकता है कि कृष्णवाद का यह पक्ष लोहिया को समकालीन भारत एवं विश्व की समस्याओं के सन्दर्भ में उपयोगी मालूम होता है ।

राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिक एकता, कर्त्तव्य-बोध जैसे उनके विचारों के उद्गम स्रोत रामायण, गीता, महाभारत जैसे महाकाव्यों को माना जा सकता है । राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में महाभारत की उपयोगिता के प्रसंग में उन्होंने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है "महाभारत हिन्दुस्तान की पूर्व पश्चिम यात्रा है, जिस तरह रामायण उत्तर-दक्षिण यात्रा है । पूर्व-पश्चिम यात्रा का नायक कृष्ण है जिस तरह उत्तर-दक्षिण यात्रा का नायक राम है ।"[2] पुनः उनका यह विचार राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में अत्यन्त प्रासंगिक है ।" त्रेता का राम हिन्दुस्तान की उत्तर-दक्षिण एकता का देव है । द्वापर का कृष्ण देश की पूर्व-पश्चिम एकता का देव है । राम उत्तर-दक्षिण और कृष्ण पूर्व-पश्चिम धूरी पर घूमे । कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि देश को उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम एक करना ही राम और कृष्ण का धर्म था ।"[3] इसी प्रकार लोहिया ने धर्म में राष्ट्रवाद तथा पुराण में राष्ट्रीय एकता के मूल सिद्धान्त ढूँढ़ने

---

1. देखिए, राम मनोहर लोहिया, कृष्ण, हैदराबाद, 1979, पृष्ठ - 117
2. वही, पृष्ठ - 7
3. वही, पृष्ठ - 6-7

का प्रयास किया है ।

अतएव यह कहा जा सकता है कि लोहिया का अध्यात्मवाद, रुढ़िवादी, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक विश्वासों का अन्धाधुन्ध अनुकरण नहीं वरन् बुद्धिवाद का सहारा लेते हुए अध्यात्मवाद को मानवीय तथा सामाजिक समस्याओं से जोड़ने का प्रयास करता है । इसी श्रृंखला में लोहिया के संबंध में यह कहना अनुपयुक्त नहीं होगा कि आध्यात्मवाद उनकी दृष्टि में सामाजिक, राजनीतिक जीवन का दार्शनिक माध्यम है । इसकी प्राप्ति के लिए किया जाने वाला प्रयास आध्यात्मवाद का साध्य है ।

भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रभाव भी लोहिया के पिचारधारा पर पड़ा है । तथापि वर्तमान भारतीय संस्कृति में व्याप्त त्रुटियों से तिरोहित होकर उनका मन प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर गमन करने लगता है । वास्तव में वह प्राचीन भारतीय संस्कृति के उन समस्त पक्षों के पक्षधर थे जो व्यक्ति को मानव, राष्ट्र को प्रेम तथा विश्व को शान्ति बनाने की शिक्षा देता हो । वर्तमान संस्कृति को उन्होंने 'कीचड़' की संज्ञा दी जिसकी परम्परा ने या तो जीवन्त तत्व को नष्ट किया है या भुला दिया है ।[1] लोहिया मानते हैं कि हमारी संस्कृति द्विश्रृंखलात्मक है, एक श्रृंखला है इतिहास की, अभिजात विचारधारा की और दूसरी श्रृंखला है लोक जीवन की, लोक तात्विक धारणाओं की । भारतीय

---

1. राम मनोहर लोहिया, जाति प्रथा

संस्कृति का उनके मानस तथा विचार स्रोत पर कितना प्रभाव पड़ा इसका अनुमान उनके निम्नलिखित कथन से लगाया जा सकता है । "इतिहास की घटनाओं की एक लम्बी जंजीर होती है और जिससे कोई सभ्यता और संस्कृति बना करती है उनका दिमाग पर असर रहता है । लेकिन इससे आगे एक और जंजीर होती है, वह किस्से कहानियों वाली हितोपदेश और पंचतंत्र वाली ।[1]

राम मनोहर लोहिया के विचार स्रोत के प्रभावी कारकों में भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन का उल्लेख करना भी अपेक्षित है । भारतीय दर्शन का आधार वेद, उपनिषद आदि हैं वेद, उपनिषद का विशुद्ध आधि भौतिक पक्ष (जैसे ईश्वर, सत्य आदि) की खोज अथवा उसका साक्षात्कार करना राम मनोहर लोहिया का लक्ष्य रहा होगा यह शायद ही संभव हो ।[2] वास्तव में उनके मानवीय सामाजिक पक्ष को ढूँढ़ने एवं समझने का प्रयास उन्होंने अवश्य किया है । इस दृष्टि से उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व एक सामाजिक दार्शनिक का था । प्रत्येक घटना, वस्तु और समस्या के बारे में वह खूब सोचते थे । उसके मूल में जाकर विश्लेषण करने का प्रयास करते थे । समकालीन भारत और विश्व की समस्याओं को समझने

---

1. राम मनोहर लोहिया, मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व: डॉ0 राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1979, पृष्ठ - 3
2. राम मनोहर लोहिया ने शंकर के दर्शन का भी विवेचनात्मक अध्ययन किया है तथा उसे अतिवादी, अद्वैतवादी दर्शन की संज्ञा दी है देखिए, राम मनोहर लोहिया मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, 1963, प्रिफेस XX।

एवं उनके समाधान हेतु एक व्यवहारिक दर्शन उनकी हड्डियों में प्रवेश कर गया था । उपनिषदों की विचारधारा का मध्य बिन्दु 'तत· किम्' उनके ताने बाने में मानो समा गया था । यहाँ यह कहना अवांछनीय नहीं होगा कि महाबीर और बुद्ध दर्शन की प्रासंगिकता ने भी उनके मनः स्थल को स्पन्दित किया है ।[1]

आधुनिक काल में भारतीय मनीषी स्वामी विवेकानन्द तथा गाँधी के दर्शन का प्रभाव उनके विचार स्रोत पर देखने को मिलता है । बंगाल के साथ लोहिया के लगाव की पृष्ठभूमि में एक तथ्य यह भी था कि विवेकानन्द ने उनको बहुत अधिक प्रभावित किया था । विवेकानन्द के विचारों में भारतीयता और सार्वव्यापकता के मेल का राजसीयता और आध्यात्मिकता के संयोग का लोहिया पर बहुत गहरा असर पड़ा । विवेकानन्द संबंधी इस किवदंती ने भी, कि उन्होंने कन्या कुमारी में शरीर त्याग किया, लोहिया को आकर्षित किया । सन् 1958-59 ई0 में, इन्होंने इस किवंदती को पुनर्जीवित करने की चेष्टा करते हुए यह प्रश्न पूछा कि देह त्याग के समय विवेकानन्द ने समुद्र की ओर मुंख किया था या भारत की ओर । इस प्रसंग में लोहिया ने स्वयं यह अनुमान लगाया कि अगर विवेकानंद ने अपनी भारतीयता विश्व को समर्पित करनी चाही होगी तो समुद्र की ओर मुँह किया होगा; और अपनी सार्वीकता भारत को समर्पित करनी चाही

---

1. देखिए राम मनोहर लोहिया, इण्टरवल ड्यूरिंग पॉलीटिक्स, हेदराबाद, 1965, पृष्ठ - 172-184 बौद्ध-दर्शन पर लोहिया पर प्रभाव के लिए देखिए राम मनोहर लोहिया, '2,500 वीं' बुद्ध जयन्ती और हिन्दुस्तान के पढ़े लिखे', समाजवादी प्रकाशन हैदराबाद, अंनकित वर्ष, पृष्ठ - 1-2 देखिए, राम मनोहर लोहिया, मैनकाइण्ड, 1 अगस्त 1956

होगी तो स्थल की ओर ।[1] संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द ने राष्ट्रीयता और सार्वीकता को एक समेकित, विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया था उन्होंने यह लक्ष्य प्रस्तुत किया कि भारत आन्तरिक जड़ता और पराधीनता, दोनों से मुक्ति प्राप्त करें। गाँधी इसी परम्परा की अगली कड़ी थे ।

यद्यपि गाँधी के दर्शन और व्यक्तित्व का लोहिया पर व्यापक प्रभाव पड़ा है तथापि वह अपनी स्वतंत्र एवं उन्मुक्त विचारधारा को रखने के कारण गाँधी की आलोचना करने से मुकरे नहीं । यहाँ गाँधी के दर्शन और जीवन का लोहिया के विचार स्रोत पर कितना प्रभाव पड़ा ? इसका संकेत डॉ0 लोहिया ने स्वयं दिया है । सन् 1939 में उन्होंने गाँधी को 'इतिहास का दर्शन कराने वाली अँगुली कहा था' ।[2] पुनः वह लिखते हैं, "मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने कई अवसरों पर महात्मा गाँधी के बारे में सोचते हुए, कम्युनिस्टों और कैथोलिकों जैसी अन्ध भक्ति की है ।"[3] महात्मा गाँधी की दृष्टि में लोहिया का व्यक्तित्व किस प्रकार का था, गाँधी के कथन से ही स्पष्ट होता है । उन्होंने

---

1. ओम प्रकाश दीपक, 1978, पृष्ठ - 18
2. इन्दुमति केलकर, 1963, पृष्ठ - 6
3. लोहिया, मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 125

लोहिया को सीधा चलने वाला तथा बहादुर व्यक्ति[1], 'भारत की आत्मा'[2] एवं चरित्र में धारावाहिकता[3] गुण वाला व्यक्ति कह कर सम्बोधित किया ।

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के व्यक्तित्व एवं विचार स्रोत के मूल्यांकन के अंतिम क्षण में पाश्चात्य विचार दर्शन के प्रभाव का एक सिंहावलोकन आवश्यक है । किन्तु इसके पूर्व दो शब्द यह कहना यथा संगत है कि लोहिया जर्मनी में अध्ययन प्रवास के समय वहाँ की "सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी" के सम्पर्क में आए उन्होंने उसकी कई सभाओं में भाग लिया । स्वभावतः दल के सिद्धान्त एवं गतिविधियों का उनके मन पर प्रभाव पड़ा । उनके ही शब्दों में, "जर्मनी में जो समाजवादी पार्टी थी, दिमागी तौर से जिसके साथ मेरा रिश्ता सबसे ज्यादा था, उसमें बड़े सज्जन लोग थे ।"[4] लोहिया का यह कथन स्पष्टतः जर्मन समाजवादी

---

1. सन् 1940 में महात्मा गाँधी ने यह कहा था "डॉ0 लोहिया से बढ़कर सीधा चलने वाला तथा बहादुर व्यक्ति मैंने आज तक नहीं देखा।
2. सन् 1949 ई0 में गोवा में डॉ0 लोहिया की गिरफ्तारी पर महात्मा गाँधी ने कहा था "डॉ0 लोहिया कोई मामूली आदमी नहीं है । आज केवल लोहिया जेल में नहीं बल्कि भारत की आत्मा कैद है ।"
3. "तुम बहादुर हो, लेकिन बहादुर तो शेर भी होता है । तुम विद्वान हो, लेकिन विद्वान तो वकील भी होता है । इनसे परे तुम्हारा विशिष्ट गुण है, शील यानि चरित्र में धारावाहिकता ।" "गाँधी का पत्र डॉ0 लोहिया के नाम से उद्धृत" उपर्युक्त लोहिया के संबंध में समस्त कथन के लिए देखें 'लोहिया कौन ?' भिलौनीगंज, जबलपुर वर्ष अनंकित, पृष्ठ-5

   इसके अतिरिक्त लोहिया के संबंध में गाँधी की धारणा के लिए देखें गाँधी के पत्र सर इवान एम0जैकिन्स वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी के नाम पत्र, 15 नवम्बर 1945 देखें जन, डॉ0 लोहिया विशेषांक, मार्च 1978, पृष्ठ-108
4. राम मनोहर लोहिया, समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969, पृष्ठ - 20

दल का उनके ऊपर प्रभाव स्वीकारता है ।[1]

लोहिया की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचारधारा उनके समाजवादी चिन्तन में आँकी जा सकती है । अतएव यह निरापद है कि उनके मस्तिष्क पर समाजवादी विचार स्रोतों का व्यापक प्रभाव रहा है । उन्होंने कल्पनावादी समाजवादी चिन्तनों से लेकर मार्क्स, ऐंजिल्स, लेनिन, माओ, आदि के समाजवादी विचार साहित्य का भी मन्थन किया । यद्यपि यह कहना अधिक कठिन है कि उनके साहित्य का सकारात्मक प्रभाव लोहिया के मस्तिष्क पर कितना पड़ा तथापि उन साहित्यों ने ऐन केन प्रकारेण लोहिया को समाजवादी चिन्तन को भारतीय संदर्भ में समझने तथा मूल्यांकन करने का अवसर प्रदान किया । लोहिया ने मार्क्सवादी विचारधारा को भारतीय परिप्रेक्ष्य में पूर्णतः उपयोगी एवं यथार्थ युक्त नहीं माना तथा एक विशिष्ट प्रकार के समाजवादी चिन्तन एवं सिद्धान्त का आधार प्रस्तुत किया जो समग्रता का द्योतक है ।

निष्कर्ष में उपर्युक्त तथ्य एवं सन्दर्भ लोहिया के व्यक्तित्व को

---

1. लोहिया को जर्मनी की राजनीति में काफी दिलचस्पी रही इसका प्रमाण यह है कि सन् 1931 में जर्मनी के चुनाव में लोहिया ने सक्रिय भाग लिया और हिटलर के विरूद्ध हिडेनवर्ग का समर्थन किया था । उनके ही शब्दों में "जर्मनी में एक विद्यार्थी की तरह मैंने जनरल हिडेनवर्ग का समर्थन किया था क्योंकि हिटलर की तुलना में उनमें कम बुराइयाँ थीं और हमने अधिक नहीं भी तो कम से कम दो वोट हिडेनवर्ग के लिए प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी लेकिन आज यहाँ सभी जानते हैं कि हिडेनवर्ग हिटलर को कभी रोक नहीं सकता। हाँ, हिटलर के शासन में आने में कुछ विलम्ब अवश्य हुआ ।" देखिए लोहिया, मैन काइण्ड 1964, खण्ड-2, अंक-6, पृष्ठ-51

एक उदारपन्थी, अंहिसक समाजवादी के रूप में प्रस्तुत करता है । उन्हें गरीबों का मसीहा,[1] लौह पुरुष,[2] मानवतावादी, समाजवादी, विद्रोही व्यक्तित्व,[3] भविष्य दृष्टा[4] तथा मौलिक चिन्तक के रूप में जाना जाता है ।

---

1. डॉ० लोहिया को गरीबों एवं दलितों के प्रति स्वाभाविक श्रद्धा थी। अपने जीवन के अंतिम क्षणों में भी उनके शब्द थे, "लाखों का क्या होगा ? किसानों का क्या होगा ? लगान का क्या होगा ? हिन्दी का क्या होगा ? और "मेरे अकेले के लिए इतने डाक्टर, करोड़ों तो एक डाक्टर का चेहरा भी नहीं देख पाते ।'6 देखिए, दिनमान, 22 अक्टूबर, 1967, पृष्ठ - 9
   डॉ० लोहिया रात-रात भर कलकत्ते में चक्कर लगाकर देखते थे कि कितने गरीब सड़क पर सोते हैं । देखिए - जन, मार्च 1968, पृष्ठ - 32

2. डॉ० लोहिया का लाहौर किले के जेल में जो शारीरिक यातनाऐं झेलनी पड़ी एवं कष्ट उठाने पड़े उसने लोहिया को वास्तव में लौह पुरुष बना दिया । विशेष जानकारी के लिए देखें: डॉ० लोहिया द्वारा लिखित प्रो० लास्की के नाम रपट; मैनकाइण्ड, फरवरी 1968, पृष्ठ - 46
   "अपने सम्पूर्ण जीवन में 18 बार जेल जाना और निर्भयता से सामाजिक न्याय के लिए कष्ट उठाना लोहिया को अद्वितीय साहसी और क्षमतावान सिद्ध करता है ।" देखिए- 22 अक्टूबर 67, दिनमान, पृष्ठ-25

3. उनके विद्रोही व्यक्तित्व में विचार, प्रतिभा और कर्मठता का समिश्रण था । कवि रामधारी सिंह दिनकर ने उन्हें "आजीवन विस्फोटक व्यक्तित्व" और "भाग्यवाद के विरोधी, निश्छल आदर्शवादी" की संज्ञा दी । देखिए धर्मयुक; 24 मार्च, 1968, पृष्ठ - 10

4. डॉ० लोहिया भविष्य-द्रष्टा थे । उनकी भविष्यवाणी तर्क एवं चिन्तन पर आधारित थी । सन् 1950 ई० में उन्होंने पूर्वी पाकिस्तान के स्वतंत्र होने की भविष्यवाणी की थी जो बाद में स्वतंत्र राज्य बंगलादेश बना देखिए: डॉ० लोहिया; फारेन पालिसी, पृष्ठ - 112-113
   सन् 1967 ई० के चुनाव परिणाम स्वरूप राज्यों में संविद सरकारों का अभ्युदय और पतन भी डॉ० लोहिया के द्वारा की गई सन् 1962 ई० की भविष्यवाणी के अनुकूल था । देखिए- लोहिया: भाषण, सिकन्दराबाद, 2 अक्टूबर 1963

अध्याय - द्वितीय

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के चिन्तन की परिधि

डॉ0 राम मनोहर लोहिया पर पड़े व्यापक प्रभाव के स्रोतों का उल्लेख प्रथम अध्याय का विषय वस्तु रहा है । उस अध्याय की विषय सामग्री लोहिया के विचारों की दुनिया के निर्माण का अप्रत्यक्ष रेखांकन संकेत उपलब्ध कराता है । प्रस्तुत अध्याय उसी श्रृंखला की एक कड़ी है जो स्पष्ट रूप से लोहिया के चिन्तन के समस्त पक्ष को समग्र रूप में एक परिधि के बीच लाने का प्रयास करता है । यह प्रयास उनके विचार श्रृंखला का रेखांकन कर अनुवर्ती अध्यायों में उनका अलग-अलग विश्लेषण करने में सहायक होगा ।

उपर्युक्त प्रयोजन हेतु प्रस्तुत सन्दर्भ डॉ0 लोहिया के अथाह विचार समुद्र में प्रवेश कर उन्हें सीमाबद्ध करने की चेष्टा करता है । इस प्रकार का प्रयास विचार श्रृंखलाओं को न केवल समझने में सहायक होता है अपितु यह उनके आधार एवं पारस्परिक निर्भरता का भी बोध कराने में सहायता प्रदान करता है । इन सबका मूल प्रयोजन डॉ0 लोहिया के विचार रूपी व्यक्तित्व का निरूपण करना है ।

सामान्य रूप से लोहिया के विचार परिधि को तीन संवर्गों में विभक्त कर समझा जा सकता है । ये संवर्ग मूलतः सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हैं । यद्यपि प्रत्येक संवर्ग के अन्तर्गत अलग-अलग विचार वस्तु सम्मिलित हैं तथापि कोई भी संवर्ग स्वतन्त्र अथवा एक दूसरे से अलग नहीं है । दूसरे शब्दों

में विचार पहलुओं के ये संवर्ग एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से जुड़े हुए हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं । मोटे रूप में समाज की परिधि के अन्तर्गत व्याप्त समस्त कारक, पहलू तथा समस्याएँ सामाजिक विचार परिधि के अन्तर्गत आते हैं । समाज का वास्तविक स्वरूप जिसका अस्तित्व विचारक को सोचने के लिए बाध्य करता है वह स्वरूप समाज की उन समस्याओं से अच्छादित होता है जिसका असर सुखद सामाजिक जीवन के मार्ग में अपकारी होता है । यथार्थ सामाजिक रूप का व्योम इतना व्यापक होता है कि वह अपने आर्थिक व राजनैतिक स्वरूप को भी अपने गर्भ में समा लेता है । इसका यह आशय है कि आर्थिक विचार की परिधि सामाजिक विचार की परिधि की अवहेलना नहीं कर सकती । आर्थिक विचार की यह परिधि सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हुई होती है । अन्तर मात्र इतना होता है कि आर्थिक परिधि सामाजिक समस्याओं के आर्थिक पक्ष को अपने मूल केन्द्र में संयोजित रखती है । किसी समाज की रूप रेखा क्या है जिसने विशेष आर्थिक संरचना को जन्म दिया है तथा जिस आर्थिक संरचना ने समाज को किस प्रकार से लाभकारी अथवा हानिकारक रूप में प्रभावित किया है, इसका अध्ययन एवं चिन्तन लोहिया की दृष्टि में अपेक्षित है । सम्भवतः इसी अपरिहार्यता का अनुभव करते हुए उन्होंने समाज के विभिन्न अर्थ पक्ष का सूक्ष्म अध्ययन किया है तथा उसे समझने के लिए समाज की व्यापक पृष्ठभूमि का सहारा लिया है । यही कारण है कि डॉ0 लोहिया ने समाज के इतिहास को समझने के लिए जो दृष्टि प्रदान की है वह निश्चित

रूप से लोहिया के विचार व्यक्तित्व की सर्वव्यापकता का बोधक है ।[1]

इतिहास की सर्वव्यापकता समाज की सर्वव्यापकता का सूचक है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण समाज के इतिहास के विभिन्न पन्ने समाज के विभिन्न रूपों एवं पहलुओं की यथार्थता को समेटे रहते हैं । राजनीति इन पन्नों में एक विशेष स्थान को घेरे रहती है । व्यक्तियों का राजनीतिक संगठन से लेकर उनके कार्य कलाप, अधिकार, दायित्व, व्यक्ति और राज्य का सम्बन्ध, राज्य और सरकार की समस्त गतिविधियाँ जो समाज की आर्थिक सामाजिक संरचनाओं पर प्रभाव डालती है उन सबका सम्वेत् स्वरूप राजनीतिक परिधि के निर्धारक कारक के रूप में माने जा सकते हैं । डॉ0 राम मनोहर लोहिया यह मानकर चलते हैं कि समाज का राजनीतिक स्वरूप उसके आर्थिक एवं सामाजिक स्वरूप से सम्बद्ध होता है ।[2] अतएव इस सम्बद्धता का समग्र प्रभाव एक ओर अलग-अलग एक दूसरे को प्रभावित करता है तथा दूसरी ओर वे सब मिलकर सब पर अर्थात् सम्पूर्ण सामाजिक संरचना पर प्रभाव डालते हैं । लोहिया की इस दृष्टि ने उन्हें उन समस्त राजनीतिक पहलुओं पर विचार करने के लिए बाध्य किया जो अनिवार्यतः स्वाभाविक रूप से समाज में व्याप्त हैं तथा समाज को निर्णायक रूप में प्रभावित करते हैं ।

---

1. देखिए लोहिया, व्हील ऑफ हिस्ट्री, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963, लोहिया द्वारा अंग्रेजी में लिखित इस पुस्तक का अनुवाद ओंकार शरद ने किया है । देखिए लोहिया, इतिहास चक्र, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968 (अनु0 ओंकार शरद) पृष्ठ - 1-103
2. लोहियाः व्हील ऑफ हिस्ट्रीः वही, पृष्ठ - 15

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचार व्यक्तित्व का उपर्युक्त रेखांकन एक अत्यन्त सामान्य एवं वृहद विचार परिधि को प्रस्तुत करता है । इस सामान्य रेखांकन के प्रयास को स्पष्ट करने के लिए राजनीतिक शब्दावली के अन्तर्गत उनके सम्पूर्ण विचार व्यक्तित्व को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है । प्रथम वे समस्त विचार जो भारतीय राज्य समाज से सम्बद्ध हैं तथा द्वितीय वे समस्याएँ जो विश्व का विभाजन कर उन्हें विनाश के गर्त में ढकेलने का प्रयास करती है । विश्व का विभाजन गरीब और अमीर में, शोषक और शोषित में, काले और गोरे में, शस्त्र और शस्त्र विहीन में, तथा अनेक प्रकार से अमानयी विचार और कार्यों में विभाजित करता है । उनके इन विभाजनों का तथा विनाशकारी दुष्परिणाम का क्या कारण है एवं उसके निदान के क्या मार्ग संभव हो सकते हैं, राजनीतिक परिधि के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्व दृष्टि शीर्षक में समाहित है । डॉ0 लोहिया की राजनीतिक परिधि उक्त शीर्षक के अन्तर्गत विषयों को अध्ययन एवं विश्लेषण हेतु प्रस्तुत करता है ।

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के विचार पारेधि के अन्तः स्थल तक पहुँचने के लिए उसके रेखांकन का एक दूसरा प्रयास भी संभव है । यदि डॉ0 लोहिया के संम्पूर्ण साहित्य पर दृष्टिपात किया जाय तथा उस सम्पूर्णता में विचार पक्ष को ढूँढ़ने का प्रयास किया जाय और तत्पश्चात् उन्हें शीर्षकबद्ध कर क्रमिक रूप में रक्खा जाये तो लोहिया की विचार परिधि का समस्या पक्षीय रूप मालूम हो सकता है । दूसरे शब्दों में वे समस्याएँ क्या हैं जिन पर लोहिया ने विचार किया है तथा जो विचार कुल मिलाकर उनके विचार जगत का सृजन

करते हैं इस दिशा में किया जाने वाला प्रयास उनके विचार परिधि की समस्या पक्षीय रेखांकन का प्रयास माना जा सकता है । इस प्रयास के अन्तर्गत निम्नलिखित पक्ष निहित है ।[1]

(क) 1. राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम

2. राष्ट्रवाद एवं आत्म निर्णय का सिद्धान्त

3. साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और जनतंत्र

4. साम्यवाद, समाजवाद और क्रान्ति

5. क्रान्ति के तकनीक - सिविल नाफरमानी

6. चौखम्भा राज्य

7. वाणी स्वतंत्रता और कर्म नियंत्रण

8. व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंध

(ख) 1. सम्प्रदायिकता (हिन्दू और मुसलमान)

2. जाति प्रथा एवं अशपृश्यता

3. धर्म एवं संस्कृति

4. शिक्षा एवं भाषा

5. नर-नारी समानता

लोहिया के विचारों की परिधि उनके द्वारा लिखित पुस्तकों के आधार पर अंकित किया जा सकता है । विशेष जानकारी के लिए देखिए :-

1. इन्दूमति केलकर, लोहिया: सिद्धान्त और कर्म
2. लोहिया: समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, हैदराबाद, 1963, ओंकार शरद लोहिया: 1972
3. लोहिया: भारत चीन और उत्तरी सीमाएँ, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ-204
4. लाहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, हैदराबाद, 1963
5. लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 316

(ग) समाजवादी विचारधारा की पृष्ठभूमि एवं समाजवादी आन्दोलनः-

(1) वर्ग उन्मूलन

(2) मूल्यनीति

(3) आय नीति

(4) भूमिका पुर्नवितरण

(5) आर्थिक विकेन्द्रीकरण

(6) अन्न सेन और भू सेना

(7) समाजीकरण

(8) खर्च की सीमा

(घ) विदेश नीतिः-

(1) पड़ोसी राष्ट्रों के साथ-सम्बन्ध

(2) तृतीय खेमा

(3) विश्व-शान्ति (निःशस्त्रीकरण)

(4) विश्व सरकार और विश्व नागरिकता

(5) विश्व विकास संबंधी विचार

(5) अन्तर्राष्ट्रीय जाति-प्रथा

---

(1) विशेष जानकारी हेतु देखिए:
लोहियाः मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म पृष्ठ - 403
लोहियाः फारेन पालिसीः विश्वविद्यालय प्रेस, इलाहाबाद, 1950
लोहियाः मार्क्स-गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 179-198
लोहिया. आसपेक्ट्स ऑफ सोशलिस्ट पालिसीः बम्बई, जुलाई 1952, पृष्ठ - 74

(ङ) प्रकृति, अध्यात्म एवं दर्शन:-

उपर्युक्त विचार परिधि जिसके अन्तर्गत पक्षीय विषय का रेखांकन किया गया है लोहिया के विशाल चिन्तन के आधार को प्रतिबिम्बत करता है । यह ज्ञात होता है कि लोहिया ने सम्पूर्ण विश्व के समस्त पक्षों का वृहद अध्ययन एवं चिन्तन किया है तथापि उन समस्त अध्ययनों का प्रयोजन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उनकी उपयोगिता को ढूँढ़ना है । यह कहना असंगत नहीं है कि लोहिया ने विश्वेत्तर विषयों को भी अपने अध्ययन चिन्तन में समाया है उदाहरणार्थ ईश्वर सम्बन्धी उनकी अवधारणा उनके विचार की परिधि की अन्तिम श्रृंखला को लिपिबद्ध करने के पूर्व यह अपेक्षित जान पड़ता है कि उपर्युक्त समस्त विषयों पक्षों को एकीकृत कर उनके प्रतिमान (Pattern) निर्धारण का प्रयास किया जाये । इस प्रतिमान निर्धारण के प्रयास में यह आभास मिलता है कि लोहिया ने सर्वप्रथम समाज के वर्तमान रूप को अतीत में झाँकने का प्रयास किया है । दूसरे शब्दों में समाज के वर्तमान रूप की बुनियाद को इतिहास के द्वारा ही समझा जा सकता है । अतएव उनके विचारों को समझने हेतु सर्वप्रथम उनके इतिहास संबंधी दृष्टिकोण का अध्ययन आवश्यक है । पुनः उस इतिहास के पीछे सबसे मौलिक बुनियाद में समाज का दर्शन छुपा हुआ होता है जिसका अन्वेषन पुनः इतिहास को समझने तथा वर्तमान समाज में समाहित त्रुटियों के कारणों को जानने एवं आदर्श मूल्य निर्धारित करने में सहायक होता है । इस प्रकार लोहिया के विचारों के प्रतिमान निर्धारण में सर्वप्रथम दर्शन, पुन. इतिहास, और तत्पश्चात् वर्तमान एवं भावी समाज की रूपरेखा आती है । उनकी सामाजिक विश्लेषण की श्रृंखला के अन्तर्गत परिवर्तन की तकनीकियों का प्रसंग उपस्थित हुआ है । स्वभावतः इस प्रसंग के पीछे एक आदर्श

छिपा हुआ होता है जो साध्य के रूप में निर्धारित किया जाता है अथवा जो निर्धारण की प्रकिया के मार्ग की ओर अभिमुख होता है । यह समस्त पक्ष लोहिया की चिन्तन श्रृंखला में आदर्शात्मक भावाभिव्यक्ति के रूप में प्रकट हुआ है । संक्षेप में इन पहलुओं का स्थान निरूपण हम इस प्रकार कर सकते हैं:- समाज का अतीत, समाज का वर्तमान एवं समाज का भविष्य । इनके बीच परिवर्तन प्रक्रिया का मार्ग भी अपना स्थान सुरक्षित रखता है । दूसरे शब्दों में सामाजिक विसंगतियों को दूर करने के लिए किन मार्गों का अनुसरण किया जाय यह एक महत्वपूर्ण प्रसंग उनके चिन्तन प्रवाह का भाग है ।[1] लोहिया का अथाह विचार समुद्र इन्हीं आयामों के सहारे पाठकों, अन्वेषकों तथा अनुयायियों तक पहुँच पाता है । संभवत. इन्हीं आयामों से प्रस्तुत शोध सन्दर्भ लोहिया के विचार समुद्र तक पहुँचने का एक प्रयास है ।

लोहिया की विचार परिधि का सारगर्भित विवेचन हमें उनकी दो महत्वपूर्ण विशेषताओं की जानकारी प्रदान करता है । प्रथम, यह कि उनकी विचारधारा का एक रूप देशीय है तथा दूसरा रूप सर्वदेशीय । द्वितीय यह विभाजन एक दूसरी विचारधारा के प्रतिकूल नहीं अपितु अनुकूल एवं अन्योन्याश्रित है। विचारों का देशीय स्वरूप स्थानीय एवं तात्कालिक परिधि के मध्य स्थित है तथा सर्वदेशीय स्वरूप स्थान काल रहित सम्पूर्ण मानव जाति की अमूल्य चिन्तन निधि है जिसका प्रयोग प्रत्येक काल का समाज अपने साध्य की पूर्ति के लिए कर

---

1. डॉ0 लोहिया: इतिहास चक्र, पृष्ठ - 17

सकता है । इस प्रकार देशीय विचार सर्वदेशीय विचार का विरोधी अथवा प्रतिपक्षी नहीं वरन् विचार के उस सर्वव्यापी स्वरूप की एक अभिव्यक्ति है । लोहिया के विचार दर्शन की यह दिशा सचमुच में एक अनुपम उदाहरण है जो शायद ही समकालीन चिन्तकों के विचारों में मिलता हो ।

अतएव लोहिया की विचार परिधि की सर्वव्यापी आयाम को समझना उनके चिन्तन परिधि के अन्य वर्गों को समझने के पूर्व एक आवश्यक दशा प्रतीत होती है । इस दशा का प्रथम प्रासंगिक आधार भूत सिद्धान्त इतिहास के परिप्रेक्ष्य में समाज को समझना है । यहाँ इस बात का उल्लेख करना सर्वथा उपयुक्त मालूम होता है कि यह आधारभूत ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की यथार्थता को मार्क्सवादी चिन्तकों ने भी स्वीकारा है । लेकिन मार्क्सवादी ऐतिहासिक दृष्टिकोण लोहियावादी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भिन्न है । मार्क्सवादी इतिहास की व्याख्या आर्थिक आधार पर की जाती रही है तथा समस्त ऐतिहासिक बदलाव के पीछे आर्थिक कारण माना जाता रहा है । लोहिया मार्क्सवादी इतिहास की इस अवधारणा को भारत के सन्दर्भ में युक्ति संगत नहीं पाते ।[1] उनकी दृष्टि में भारतीय समाज ने इतिहास के काल क्रम में जो दिशा अथवा विभिन्न समयों में अपना स्वरूप पाया है उसके पीछे आर्थिक पहलुओं के अतिरिक्त अन्य सामाजिक सांस्कृतिक पहलू हैं जिसने समाज की संरचना को अत्यधिक प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ सामाजिक, सांस्कृतिक पहलुओं में जाति प्रथा, भाषा, धर्म आदि की

---

1. डॉ0 लोहिया: इतिहास चक्र, पृष्ठ - 26

सामाजिक संरचना में महत् भूमिका को अनदेखी करना समाज के बदलाव की प्रक्रिया को समझने का भ्रामक अथवा अपूर्ण प्रयास होगा ।

लोहिया की दृष्टि में भारतीय समाज के इतिहास को समझने हेतु (देशीय पक्ष) इतिहास के व्यापक अर्थ (इतिहास का सार्वदेशीय सिद्धान्त) को समझना अनिवार्य है । यह अनिवार्यता स्वभावत: लोहिया के उस मूल वैचारिक स्रोत की ओर गमन करने के लिए प्रेरित करता है जो उनकी इतिहास संबंधी अवधारणा का मूल स्रोत है । यह मूल स्रोत है उनके द्वारा लिखित इतिहास चर्क ।[1]

इतिहास चक्र का सिद्धान्तः-

डॉ0 लोहिया ने इतिहास चक्र सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए अपनी विचार श्रृंक्षला को कुल बारह अध्यायों में विकसित किया है । प्रथम अध्याय इतिहास चक्र सिद्धान्त का आमुख [2] है । दूसरा अध्याय इतिहास और उद्देश्य के अर्थ और दोनों के बीच के सामीप्य को समझने का प्रयास करता[3] है । पुनः चक्र सिद्धान्त क्या है इसका सृजन[4] तीसरे अध्याय में हुआ है । चौथा अध्याय

---

1. इतिहास चक्र का मूल रूप है व्हील ऑफ हिस्ट्री, जिसका हिन्दी अनुवाद कई वर्ष बाद हुआ है । प्रस्तुत शोध प्रबंध में उपर्युक्त मूल पुस्तक में अनुवाद दोनों का संदर्भन हुआ है ।
2. वही पृष्ठ - 1-7
3. वही पृष्ठ - 9-14
4. वही पृष्ठ 15-24 इस सिद्धान्त का विस्तारण निम्नलिखित अध्यायों में हुआ है ।

इतिहास के भौतिकवादी व्याख्या की समीक्षा प्रस्तुत करता[1] है तथा इतिहास के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण की त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट करता है। मार्क्स की आलोचना एवं यह प्रश्न उपस्थित करना कि इतिहास का आर्थिक संचालन क्यों नहीं संभल पाता ? इस प्रश्न का उत्तर एवं विवेचन चक्र सिद्धान्त विषय सामग्री के पंचम अध्याय में हुआ है।[2] लोहिया का मत है कि इतिहास को तथा विशेषकर भारतीय इतिहास को समझने के सन्दर्भ में वर्ग और वर्ण को समझना अनिवार्य है।[3] इस विषय वस्तु का प्रतिपादन षष्ठम् अध्याय में हुआ है। इसी सन्दर्भ में लोहिया का कथन है कि भारतीय इतिहास के प्राचीन पन्ने मानवीय विचार एवं कृतियों से रंगा है। इस प्रसंग का उल्लेख लोहिया ने आधुनिक समाज के इतिहास में उत्पन्न मानवता की समस्या को दृष्टिगत रखते हुए किया है। इतिहास चक्र के सिद्धान्त का विस्तरण अष्टम अध्याय में हुआ है[4] जिसकी पूर्व कड़ी भौगोलिक परिवर्तन से सम्बन्धित सप्तम अध्याय है। लोहिया के विचार में भौगोलिक परिवर्तन को समझना किसी भी देश के इतिहास चक्र को समझने के लिए अनिवार्य दशा है।[5] लोहिया का कथन है कि दो और अधिक राष्ट्रों के बीच बाहरी समीपता के अलावा एक राष्ट्र के भीतर आन्तरिक समीपता भी हुई है। उनका विचार है कि इतिहास के प्रारम्भ से ही असमानता रही है

---

1. इतिहास चक्र, पृष्ठ - 25-33
2. वही, पृष्ठ - 34-37
3. वही, पृष्ठ - 38-50
4. वही, पृष्ठ - 60-68
5. वही, पृष्ठ - 51-59

परन्तु समानता प्राप्त करने की मानव की चाह उतनी ही पुरानी है । एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के समान अथवा स्त्रियों का पुरुषों के समान स्तर एवं स्थान पाने की चाह आन्तरिक समीपता का उदाहरण है ।[1] यह समस्त चिन्तन नवम् अध्याय में संयोजित है । अन्त में विश्व सरकार के संबंध में उनकी कल्पना,[2] आधुनिक सभ्यता का[3] अर्थ क्रमशः दसम् एवं एकादश अध्याय में हुआ है । समस्त चिन्तन का पूर्ण सम्पादन सम्पूर्ण कौशल शीर्षक के द्वादस अध्याय में हुआ है ।[4]

उपर्युक्त इतिहास चक्र के विषय वस्तु को चार मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है । (1) इतिहास के अनुसार मनुष्य के जीवन का ध्येय, (2) ऐतिहासिक परिवर्तनों के कारण एवं क्रम, (3) आधुनिक सभ्यता की परिभाषा, उसके मूल तत्व और उसकी संभावनाएँ, (4) भविष्य की सभ्यता की रूपरेखा और उसकी अनिवार्यताएँ ।

इतिहास के अनुसार मनुष्य के जीवन का ध्येय सिर्फ भौतिक अथवा आर्थिक ही नहीं है । आर्थिक एवं भौतिक सुविधाओं की प्राप्ति के लिए नये-नये औजारों के बनाने वाले के रूप में मनुष्यों की परिभाषा पर्याप्त नहीं है । वह चिन्तनशील प्राणी भी है और उसका चिन्तन अपने तथा दूसरों के साथ अथवा

---

1. देखिए इतिहास चक्र, पृष्ठ - 69-72
2. वही, पृष्ठ - 73-80
3. वही, पृष्ठ - 81-92
4. वही, पृष्ठ - 93-102

ये कहें कि असीम के साथ संबंधों से बँधा हुआ है । जब मनुष्य अपने अतिरिक्त दूसरों[1] की भी चिन्ता करने लगता है तब उसके जीवन का ध्येय आरम्भ होता है । लोहिया के अनुसार मनुष्य ने पिछले युगों में ईश्वर के संबंध में चिन्तन एवं उसके विषय में कुछ जान लेने के लिए प्रयत्न किया था । अपने को एक असीम सत्ता का अंश मानकर उसने दूसरों के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया था । सम्भवतः इतिहास से मनुष्य के जीवन का यही ध्येय प्रमाणित होता है- असीम के साथ क्षुद्र के संबंध का पता लगाना । यद्यपि समय-समय पर मनुष्यों का यह भेद छिप जाता है और अन्य सारी वस्तुएँ ऊपर आ जाती हैं, फिर भी जैसा लोहिया ने कहा है वह जाने या अनजाने बराबर इन प्रश्नों का उत्तर पाना चाहता है - मैं कहाँ से आया हूँ ? कहाँ जाऊँगा ? मेरी स्थिति क्यों और कैसे है ?[2] इन्हीं आधारभूत प्रश्नों के उत्तर पाने के क्रम में मनुष्य ने प्रत्येक युग में विशिष्ट संस्थाओं का निर्माण किया, युद्ध और शान्ति की बातें की और इस तरह इतिहास निर्माण करता गया । उसके सारे क्रियाकलापों के पीछे इन्हीं शाश्वत प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ने की जिज्ञासा काम करती रही है ।

ऐतिहासिक परिवर्तन के संबंध में मतों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है । एक मत के अनुसार ऐतिहासिक परिवर्तन एक निश्चित परिधि में चक्राकार चलता रहता है । समयानुसार सफलता - विफलता में और

---

1. अन्य में ईश्वर और मनुष्य दोनों सम्मिलित हैं ।
2. डॉ0 लोहियाः इतिहास चक्र - पृष्ठ-12

विफलता - सफलता में परिणत होती रहती है । सतयुग से त्रेता से द्वापर से कलयुग - इस तरह हिन्दू दार्शनिकों के अनुसार काल चक्र बदलता रहता है। हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य दार्शनिकों ने भी इस मत को माना है और इतिहास के विभिन्न युगों को युग विशेष की मुख्य प्रवृत्ति के अनुसार विभिन्न नामों से पुकारा है । किन्तु आधुनिक यूरोपीय सभ्यता के अभ्युदय और विकास के साथ ही चक्रवत परिवर्तन का सिद्धान्त शक्तिहीन हो गया । नवीन सिद्धान्त के अनुरूप विकास चक्रवत नहीं होते वरन् एक पिछले स्तर से उच्चतर स्तर पर विकास क्रम चलता रहता है । यह निष्कर्ष निकाला गया कि इतिहास का परिवर्तन विकासोन्मुख है चक्रवत नहीं । लेकिन लोहिया ने इस मत को संकुचित और भ्रामक माना है ।[1]

ऐतिहासिक परिवर्तनों के संबंध में उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे प्रभावशाली सिद्धान्त मार्क्स का है । मार्क्स के अनुसार मानव इतिहास चार स्तरों से होकर गुजरा है - आदिम साम्यवाद, निरंकुशतापूर्ण दासयुग, सामन्ती युग और आधुनिक पूँजीवादी युग । इन सभी युगों में इतिहास की गति का एक नियम रहा है - उत्पादन के साधनों तथा संबंधों में संघर्ष । इनके बीच संघर्षों का प्रादुर्भाव होता

---

1. अनेक पाश्चात्य दार्शनिक भी बिकासोन्मुख परिवर्तन के इस सिद्धान्त को संशययात्मक दृष्टि से देखने लगे हैं इनमें नौथ्रोप, सोरोकिन, स्पेंगलर, टैयनबी प्रमुख हैं । उदाहरणार्थ स्पेंगलर ने सभ्यता के स्तर को बसन्त, ग्रीष्म, शरद और हेमन्त में बाँटकर उसके पतन को आवश्यम्भावी बताया है और दूसरी ओर टौयनबी ने यह आशा व्यक्त की है कि पतनोन्मुख होने पर भी विज्ञान पर आधारित आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता ईसाईयत की सहायता प्राप्त कर मानव मन को अपने वातावरण के साथ सामंजस्य एवं शान्ति प्रदान करती हुई शीघ्र ही विश्व-जनीन सभ्यता में परिवर्तन हो जायेगा । लेकिन लोहिया के अनुसार आध्यात्म और विज्ञान का यह सम्मिश्रण बहुत उत्साह-वर्धक नहीं है । देखिए, इतिहास चक्र, पृष्ठ - 17-23

है । यह वर्ग संघर्ष सभी युगों में रहा है और इसी से इतिहास को गति मिलती रही है । मानव इतिहास में इस संघर्ष का विभिन्न रूप रहा है, जिसका ध्येय उत्पादन की उन शक्तियों को उन्मुक्त करना है जो विशेष प्रकार की सभ्यता में विशेष प्रकार के जायदादी हकों के कारण दबी पड़ी रहती है - जैसे सामन्ती युग में भूमिपतियों का आधिपत्य होने के कारण उत्पादन एक सीमा से आगे नहीं बढ़ सका जिसके विरोध में एक वर्ग उठ खड़ा हुआ जिसने सामन्त शाही को समाप्त किया । इसी तरह पूँजीवादी युग में जायदादी मिल्कियत संबंधी विशिष्ट नियमों के कारण उद्योग एवं कृषि के उत्पादन में विज्ञान का पूर्ण रूप से व्यवहार नहीं हो पाता । फलस्वरूप उत्पादन की शक्तियाँ तब तक दबी पड़ी रहती हैं जब तक कि श्रमिक वर्ग इतना संगठित और शक्तिशाली नहीं हो जाता कि जायदाद संबंधी प्रचलित नियमों को तोड़कर उत्पादन की शक्तियों को उन्मुक्त कर सके । ऐसा होने में सचेत मानवीय चेष्टा का बहुत कम हाथ रहता है।

लेकिन लोहिया ने बतलाया कि आर्थिक नियतिवाद के सिद्धान्त पर आधारित मार्क्स के विचार दोषपूर्ण है ।[1] सर्व प्रथम, इतिहास को चार युगों में विभाजित करना यथेष्ट नहीं है । दूसरे मार्क्स का यह कथन गलत हो चुका है कि पूँजी के केन्द्रीयकरण और बढ़ते हुए दैन्य के कारण श्रमिकों का सामाजीकरण हो जाने से पूँजीवाद के विरूद्ध स्वचालित संघर्ष आरम्भ हो जाता है जिससे पूँजीवाद का विनाश निश्चित है । यूरोप के जिन देशों में औद्योगीकरण के

---

1. देखिए, इतिहास चक्र, पृष्ठ - 26-28

अबाध विकास के कारण पूँजीवाद का केन्द्रीकरण एवं श्रमिकों का समाजीकरण हुआ (जैसे इंग्लैण्ड और जर्मनी) वहाँ ऐसी कोई क्रान्ति नहीं हुई जो मार्क्स के सिद्धान्त को पुष्ट करती । क्रान्ति हुई तो रूस में और चीन में जहाँ औद्योगीकरण और तज्जनित पूँजी का केन्द्रीयकरण और श्रमिकों का समाजीकरण नहीं हो सका इसके उत्तर में नव मार्क्सवादी यह कह सकते हैं कि श्रमिकों का समाजीकरण यूरोपीय देशों में तो हुआ, लेकिन एशिया और अफ्रीका के देशों में उनकी गरीबी बढ़ी अतएव यह नियम यूरोपीय देशों में लागू नहीं हो सका । इसका अर्थ यह हुआ कि यह नियम उन अविकसित देशों में ही लागू हो सकेगा जहाँ उत्पादन का विकास सामन्ती युग से आगे नहीं बढ़ सका है । अर्थात् औद्योगिक दृष्टि से यूरोप के विकसित देशों में नहीं वरन् एशिया और अफ्रीका के अविकसित देशों में साम्यवादी क्रान्ति होगी । इससे तो लोहिया की दृष्टि में मार्क्स का नियम गलत प्रमाणित हो जाता है । साथ ही यह कहना भी कि जायदादी संबंधों में परिवर्तन होने के साथ ही उत्पादन की शक्तियाँ स्वयं उन्मुक्त हो जाती हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि ऐतिहासिक परिवर्तनों के संबंध में मार्क्स ने ऐसा नियम बनाया क्यों ? लोहिया का इस प्रश्न का उत्तर मौलिक है और विश्वसनीय भी ।

मार्क्स का भौतिकवादी विश्लेषण उन्हीं देशों में क्रान्ति की संभावना बताता है, जहाँ पूँजीवाद अति विकसित है और जहाँ सिर्फ मिल्कियत संबंधी नियमों को परिवर्तित कर और पूँजीवादी व्यवस्था की फैक्ट्री, मशीन और वैज्ञानिक कृषि को अपनाकर, उत्पादन को इस तरह विकसित किया जा सकेगा कि संसार

में बहुलता का युग आ जायेगा । पूँजीवाद की दृष्टि से यूरोप के देश ही विकसित है अतः जैसा कि मार्क्स ने सोचा था, अगर यूरोपीय देशों में साम्यवादी क्रान्ति होती तो यूरोप ही इस नवीन युग का भी सृष्टा होता और इतिहास के उच्चतम शिखर पर उसकी स्थिति आस्वस्थ हो जाती । डॉ0 लोहिया के अनुसार ऐतिहासिक परिवर्तनों के संबंध में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित भौतिक विश्लेषण का यह नियम एक यूरोपीय विचारक द्वारा इतिहास में यूरोप की गौरवपूर्ण स्थिति को बनाये रखने का मात्र एक प्रयास था ।[1] मार्क्स ने ही नहीं हीगल ने भी स्पष्ट कहा है कि इतिहास के विकासोन्मुख परिवर्तन में स्वतन्त्रता का जो अमूर्त सिद्धान्त काम करता है उसका ठोस और अन्तिम रूप प्रशा का राज्य है । हीगल और मार्क्स के सिद्धान्तों में अन्तर है, पर बुनियादी नतीजा एक ही है - यूरोप को आने वाली नई सभ्यता का सिरमौर बनाना । लेकिन लोहिया के अनुसार यह प्रयास व्यर्थ है, क्योंकि इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ कि पुरानी सभ्यता वालों ने किसी नई सभ्यता को जन्म दिया हो । सोचने - समझने और उत्पादन के जिन नियमों के साथ वे चिपटे होते हैं उनका पूर्ण त्याग उनके लिए संभव नहीं है, इस ऐतिहासिक प्रमाण के अतिरिक्त और भी बाते हैं जो यूरोप को भविष्य निर्माता के रूप में मानने से बाधा पहुँचाती है । अगर पश्चिमी यूरोप के देश नये युग के सृष्टा हो जायें और इतिहास की गति को आदिम साम्यवाद से लेकर आधुनिक पूँजीवाद तक मान लिया जाय (जैसा कि यूरोप में हुआ), अन्य राष्ट्रों के उदय और विकास का कोई मूल्य नहीं रह जाता और इतिहास

---

1. डॉ0 लोहिया: व्हील ऑफ हिस्ट्री: पृष्ठ - 20

का अर्थ सिर्फ यूरोप का इतिहास रह जाता है ।

इस विश्लेषण से लोहिया ने यह प्रमाणित किया है कि इतिहास चक्र न तो विकास के सिद्धान्त से और न मात्र भौतिकवादी सिद्धान्त से चलित होता है । इतिहास में परिवर्तन अवश्य होते हैं, शायद चक्रवत, और उनके कारण न केवल देशों के आंतरिक द्वन्द्वों में पाये जाते हैं, वरन् राष्ट्रो के बीच होने वाले द्वन्द्वों में भी । प्रत्येक सभ्यता के अन्तर्गत विशिष्ट युगों में वर्ग संघर्ष का होना, लोहिया को मान्य है लेकिन सिर्फ आन्तरिक वर्ग संघर्ष ही, जैसा कि मार्क्स का कथन है परिवर्तन का कारण नहीं हो सकता । राष्ट्रों के बीच होने वाले संघर्ष भी इसके लिए उत्तरदायी हैं ।[1] अतएव आन्तरिक और वाह्य दोनों प्रकार के संघर्ष ऐतिहासिक परिवर्तनों के लिए आवश्यक हैं ।

लोहिया के तर्कों से क्या यह प्रमाणित होता है कि ऐतिहासकि परिवर्तनों को लाने में आर्थिक तत्व अवहेलनीय है ? इसका लोहिया ने नकारात्मक उत्तर दिया है । उनके अनुसार अर्थ और चिन्तन, भौतिकता एवं आध्यात्मिकता दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती हैं ।[2] ऐतिहासिक मनुष्यों के लिए भौतिकता का अर्थ सामाजिक संगठन एवं उसके लिए आर्थिक ध्येय है, तथा आध्यात्मिकता का अर्थ समाज की मानसिक प्रवृत्ति एवं सामान्य ध्येय है । अब तक इन दोनों का अध्ययन एक दूसरे से पृथक होता रहा है । मार्क्स एवं उसके समान अन्य

---

1. लोहिया: व्हील ऑफ हिस्ट्री: पृष्ठ - 21

2. डॉ0 लोहिया: व्हील ऑफ हिस्ट्री: पृष्ठ - 25-26

विचारक यह समझते हैं कि आर्थिक ध्येय की सामाजिक प्रवृत्तियों एवं सामान्य ध्येय को निर्धारित करते हैं, दूसरी ओर गाँधीवादी सामान्य ध्येय को आर्थिक ध्येय का निर्धारक मानते हैं । वस्तुतः दोनों विचार अपूर्ण हैं । लोहिया के कथनानुसार भौतिक और आध्यात्मिक ध्येयों के बीच स्वचालित संबंध होना चाहिए। इसके संबंध में उन्होंने यह तर्क दिया है ?

"इतिहास से यह मालूम पड़ता है कि अब तक के सारे समाज किसी एक ही दिशा में अपने संगठन एवं तकनीकी क्षमता को विकसित कर सके हैं, जिसकी आध्यात्मिक प्रक्रिया दो तरह की हुई है । कुछ लोग तो ऐसी तकनीकी प्रगति को अस्वीकार कर देते हैं और दूसरे इसे ही सब कुछ मानकर इसके साथ सहयोग देने लगते हैं । प्रथम वर्ग की प्रतिक्रिया तो बहुत शक्तिशाली नहीं होगी लेकिन दूसरे वर्ग की सहायता पाकर यह समाज अपने प्रथमतः निर्धारित मार्ग पर तीव्रगति से अग्रसर होने लगता है । फलस्वरूप ऐसी सभ्यता अपने ही भार से दब जाती है और जब दूसरी दिशा में विकासशील अन्य सभ्यताओं से इसका टकराव होता है,, तो यह नष्ट हो जाती है । किसी एक ही दिशा में प्रगति करने का एक दूसरा प्रभाव भी पड़ता है । जब सभ्यता प्रगति के चरम बिन्दु पर पहुँच जाती है तब आन्तरिक वर्ग संघर्ष असहनीय हो जाता है और न्यायोचित सामाजिक संगठन की खोज शुरू हो जाती है । आर्थिक वर्ग जाति में परिवर्तित हो जाते हैं । अगर यह जाति व्यवस्था सचमुच न्याय पर आधारित हुई, तो हो सकता है कि सभ्यता का ह्रास कुछ दिनों के लिए रूक जाये, पर

जाति - व्यवस्था एक प्रकार की शिथिलता पैदा करती है और इस शिथिलता और बाहरी दबाव के कारण इस सभ्यता या समाज का पतन आवश्यम्भावी हो जाता है । अब तक के इतिहास से यही प्रमाणित होता है"।[1] ?

इस तर्क की पुष्टि के लिए लोहिया ने वर्ग और जाति का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि जाति-व्यवस्था सिर्फ भारत तक ही सीमित नहीं है, अन्य जगहों पर भी पायी जाती है, केवल उसका रूप भिन्न है । वर्ग परिवर्तनशील जाति है, और जाति अपरिवर्तनशील वर्ग है । वर्ग जाति में और जाति वर्ग में परिवर्तित होती रहती है ।[2] वर्ग और जाति के परिवर्तन ही किसी भी देश के आन्तरिक आन्दोलन के मूल में रहते हैं । जब आरम्भिक प्रगति के युग में सभ्यता स्वस्थ तथा आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न रहती है, तो वर्ग संघर्ष तीव्र रहता है, निम्न वर्ग के लोग ऊपर उठने की चेष्टा करते हैं । यह समय उस सभ्यता के विकास का रहता है जब अपनी भौगोलिक सीमा के बाहर भी उसका प्रभाव फैलता है लेकिन जब उसका विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर रूक जाता है तब समाज वर्ग संघर्ष की तीव्रता सहन नहीं कर पाता और अपनी उपलब्धियों की रक्षा हेतु वर्ग संघर्ष से मुक्ति पाना चाहता है और सामाजिक न्याय के नाम पर जाति-व्यवस्था का सृजन करता है । इस व्यवस्था की स्थापना के

---

1. डॉ0 लोहिया: व्हील ऑफ हिस्ट्री, पृष्ठ - 21
2. लोहिया: व्हील ऑफ हिस्ट्री: पृष्ठ - 28
   लोहिया: जाति प्रथा; नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1964, पृष्ठ - 41

साथ ही शिथिलता भी आ जाती है और वह सभ्यता दूसरे देशों के आक्रमण से अपनी रक्षा नहीं कर पाती ।

यही बात भारत की जाति - व्यवस्था के संबंध में भी हुई । भारतीय सभ्यता भी एक ही दिशा में विकास करती रही जिसका आधार आध्यात्मिक था ।[1] जब आध्यात्मिक विकास एक बिन्दु पर पहुँच कर रूक गया तब जाति-व्यवस्था स्थापित होने लगी लेकिन कुछ समय तक इस सभ्यता का जीवन स्रोत शुष्क न हो सका और बौद्ध युग में जाति-व्यवस्था के विरूद्ध आन्दोलन चल पड़ा । जाति व्यवस्था शिथिल पड़ गई और भारत का राजनीतिक, आर्थिक आर सांस्कृति विकास हुआ । समय की गति के साथ जाति-व्यवस्था स्थापित होने लगी लेकिन बुद्ध के प्रायः चार सौ वर्षों के बाद वर्ण व्यवस्था के विरूद्ध फिर आन्दोलन चला और भारत की आंतरिक एवं वाह्य उन्नति हुई । धीरे-धीरे 13वीं - 14वीं शताब्दी तक एक ही दिश - आध्यात्मिकता - में प्रगति के अंतिम शिखर पर पहुँच कर यहाँ वर्ग संघर्ष रोक दिया गया और कठोर जाति-व्यवस्था स्थापित हो गई जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज में शिथिलता आ गई । विदेशी आक्रमण इसे रोकने में असमर्थ रहा परिणामतः इसकी सभ्यता का पतन हो गया । आधुनिक युग में महात्मा गाँधी के प्रयासों से जाति-व्यवस्था फिर टूटने लगी थी ।

वर्ग और वर्ण की यह आँख मिचौनी प्राचीन सभ्यताओं तक ही

---

1. लोहिया: इतिहास चक्र: पृष्ठ - 39-42

सीमित नहीं है । आधुनिक सभ्यता में भी इसके लक्षण प्रकट होने लगे हैं । संयुक्त राज्य अमेरिका के संबंध में अगर यह कहा जाये कि वहाँ भी जाति-व्यवस्था पनप रही है, तो आम लोगों को जल्दी विश्वास नहीं होगा क्योंकि यूरोपीय समाज की अपेक्षा अमरीकी समाज बहुत स्वतंत्र है, वहाँ तकनीकी प्रगति भी द्रुतगति से हो रही है, उसकी सम्भावनाएँ अभी लुप्त नहीं हुई है । ऊपर से देखने पर नीग्रो जाति के एवं बोस्टन के उन परिवारों को छोड़कर, जो इंग्लैण्ड से सर्व प्रथम आये थे और इस आधार पर अपने को उच्च वर्ण मानते हैं, अन्य जातियाँ नजर नहीं आतीं । पर सत्य यह है, कि विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित वहाँ के मजदूर संघ सिर्फ अपनी ही जाति के लोगों के हकों की रक्षा में संलग्न हैं और उनकी सभाओं में दिये जाने वाले भाषणों से उनकी यह जाति गत प्रवृत्ति स्पष्ट झलकती है ।

इसी प्रकार पाश्चात्य यूरोपीय सभ्यता तर्क और तकनीकी क्षमता पर आधारित है । इसने सात सौ वर्ष पुरानी जाति व्यवस्था, जिसका परिचय मध्य युगीन आर्थिक और व्यापारिक श्रेणियों (गिल्डों) एवं सामन्ती युग के बधुँआ मजदूर एवं भूपतियों से मिलता है, को तोड़ कर एक ऐसे राजनीतिक, आर्थिक सांस्कृतिक संगठन को जन्म दिया, जिसका आधार मानवीय गौरव, तर्क, उत्पादन में विज्ञान का उपयोग और राजनीति में मानव समता पर आधारित गणतांत्रिक व्यवस्था रही है । लेकिन इस सभ्यता का तकनीकी विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका है, जिसके फलस्वरूप वर्ग-संघर्ष वृथा और असहनीय होने लगा है । लोग एक ऐसे सामाजिक संगठन को ढूँढ़ रहे हैं जिसका आधार वर्ग संघर्ष

न होकर स्थायी वर्ण व्यवस्था हो । इसी स्थायी वर्ण-व्यवस्था के अनुसन्धान में हिटलर ने एक ऐसा संगठन स्थापित किया, जिसमें सभी सामाजिक वर्गों की आय एवं स्थिति निश्चित कर दी गई थी । दूसरी ओर रूस की मौजूदा व्यवस्था भी अन्ततोगत्वा इसी सामाजिक स्थायित्व की खोज है ।[1] इसमें संदेह नहीं कि रूस ने भी उत्पादन के क्षेत्र में पूँजीवादी तकनीक को अपना लिया है और कम जनसंख्या एवं विशाल साधनों के कारण अभी उसके विकास की संभावनाएँ काफी हैं । लेकिन वहाँ भी वर्ग संघर्ष पर रोक लगा दी गई है । वहाँ पूर्ण साम्यवाद की स्थापना नहीं हो सकी है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को न केवल कार्य कुशलता बल्कि आवश्यकता के आधार पर पारिश्रमिक मिलें । फिर भी वहाँ वर्ग-संघर्ष नहीं है, न हो सकता है । शासक वर्ग ने देश के तीव्र औद्योगीकरण के हेतु वर्ग संघर्ष को रोक दिया है, जिसके फलस्वरूप समाज में जाति-व्यवस्था धीरे-धीरे स्थायी बनती जा रही है । इस नई जाति-व्यवस्था के उच्चतम सदस्य कम्युनिस्ट पार्टी के नेता, फैक्टरियों के मैनेजर एवं उच्च पदस्थ तकनीक चातुर्य वाले व्यक्ति हैं, शेष निम्न वर्ग के लोग हैं । अतएव हिटलरी व्यवस्था और रूस की साम्यवादी व्यवस्था - दोनों ही यूरोप द्वारा तकनीकी सभ्यता के विकास की आखिरी मंजिल पर पहुँच कर वर्ग संघर्ष को रोकने एवं जाति - व्यवस्था पर एक स्थायी सामाजिक संगठन को स्थापित करने का प्रयास है ।[2]

लोहिया द्वारा वर्ग तथा जाति का यह विश्लेषण और आधुनिक

---

1. डॉ0 लोहिया: व्हील ऑफ हिस्ट्री: पृष्ठ - 35-36
2. डॉ0 लोहिया: व्हील ऑफ हिस्ट्री, पृष्ठ - 36-37

सभ्यता में वर्ग - वर्ण की मीमांसा निश्चय ही उनके नये दृष्टिकोण का परिचायक है । इस दृष्टिकोण से पाश्चात्य यूरोप के विद्वान न तो अपनी सभ्यता और न रूसी साम्यवादी व्यवस्था का विश्लेषण करते हैं क्योंकि यह दोनों सभ्यताएँ सिर्फ जायदादी हकों के आधार को छोड़कर, अन्ततोगत्वा एक समान ही है । दोनों की संभावनाएँ और खतरे भी एक ही तरह के हैं, अतएव वे इस कष्टदायक सत्य से मुँख मोड़ना चाहते हैं कि उनकी सभ्यताएँ इतिहास चक्र में बुरी तरह फँस चुकी हैं, जिसके कारण उनका ह्रास भी निश्चित है ।

वर्ग और वर्ण का यह सिद्धान्त निरूपित कर लोहिया यह नहीं चाहते थे कि आर्थिक वर्गों का विनाश न हो उनका उद्देश्य सिर्फ भारत के समाजवादियों को केवल यह चेतावनी देना था कि आर्थिक वर्गों को नष्ट करने की प्रक्रिया में किसी नई जाति-व्यवस्था का न जन्म हो जाये ।[1] किसी भी सभ्यता के आंतरिक इतिहास में वर्ग और वर्ण के बीच होने वाले परिवर्तनों के साथ वाह्य परिवर्तन सम्बद्ध है । अतएव उत्थान और पतन प्रत्येक जाति एवं सभ्यता के इतिहास में अंकित है । अब तक के मानव इतिहास में यह दो मुख्य प्रवृत्तियाँ रही हैं - आन्तरिक दृष्टि से वर्ग और वर्ण का परिवर्तन तथा वाह्य दृष्टि से राजनीतिक बल और आर्थिक सम्पदा का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रत्यावर्तन।इन दोनों प्रवृत्तियों के बीच गहरा संबंध रहा है । जब कभी कोई ऐतिहासिक जाति राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से उत्थान की स्थिति में

---

1. डॉ0 लोहियाः व्हील ऑफ हिस्ट्रीः पृष्ठ - 41

रहती है तो वहाँ जाति व्यवस्था ढीली पड़ जाती है । लेकिन समाज के पतन के साथ-साथ वर्ग संघर्ष असहनीय और विस्फोटक बन जाता है और तब न्याय पर आधारित जाति - व्यवस्था अधिक उपयोगी मालूम पड़ती है । जाति-व्यवस्था से समाज में शिथिलता आ जाती है । तब देर अथवा सबेर उसका पतन हो जाता है । वाह्य शक्ति में वृद्धि के साथ-साथ आन्तरिक समता आती है और उसके ह्रास के साथ असमता । दूसरी ओर जब तक कोई जाति अपनी निर्दिष्ट दिशा में अधिकतम क्षमता प्राप्त करने की ओर बढ़ती रहती है तब तक दूसरी सभ्यताओं पर इसका दब-दबा कायम रहता है । लेकिन जब यह अपनी क्षमता के विकास के चरम बिन्दु पर पहुँच कर रूक जाती है, तब इसका पतन आरम्भ हो जाता है और दूसरी जातियाँ या तो इसे विजित कर लेती हैं या वह इतिहास की पृष्ठभूमि में पड़ जाती है । इस तरह वर्ग संघर्ष, जाति-व्यवस्था और वाह्य स्थितियों का सभ्यता के उत्थान-पतन के साथ गहरा सम्पर्क है ।

विगत सभ्यताओं का आंतरिक इतिहास यह बतलाता है कि परिवर्तन चक्र, वर्ग संघर्ष, तज्जनित समानता, सामाजिक विस्फोट परिणामस्वरूप न्याय पर आधारित जाति-व्यवस्था, तज्जनित शिथिलता, फिर वर्ग संघर्ष - इसी परिधि में घूमता रहता है । मनुष्य का भाग्य समता और न्याय के बीच घूमता रहता है । उसके भाग्य का यह नाटक विश्व इतिहास के उसी मंच पर खेला जाता है जिस पर सभ्यताओं के उदय और ह्रास का इतिहास अंकित होता है । दोनों के बीच अटूट संबंध भी है । उदय होती हुई सभ्यता आंतरिक वर्गों के बीच

समता का भाव लाती है, जो उस सभ्यता को पुष्ट भी करता है । इसी तरह वर्ग - संघर्ष की भयानकता विस्फोट उत्पन्न कर सभ्यता को पतन की ओर ले जाती है और पतन्नोन्मुख सभ्यता वर्ग-संघर्ष को रोककर जाति-व्यवस्था स्थापित करती है यही इतिहास चक्र है ।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या मनुष्य इसी तरह भाग्य के हाथों का खिलौना बना रहेगा ? वह इतिहास चक्र की परिधि में असहाय, निरूपाय घूमता रहेगा या कभी काल चक्र से नियति के इस विधान से अपने को मुक्त भी कर सकेगा ? मुक्ति का यह प्रश्न इसलिए आवश्यक है कि अब तक के सारे परिवर्तनों के बावजूद भी मानवता की आधारभूत समस्याएँ नही सुलझ सकी हैं । इतिहास चक्र के कठोर नियमों के अनुसार तो ऐसी कोई आशा नजर नहीं आती सदा ही आंतरिक और वाह्य कलह के कारण सभ्यताओं का उदय और पतन होता रहा है । इतिहास के साधारण नियमों से कोई मार्ग दर्शन नहीं हो सकता अतएव इन नियमों से परे जाना आवश्यक है । लोहिया के अनुसार अब तक की सारी सभ्यताएँ किसी एक निर्दिष्ट मार्ग पर बढ़ती रही हैं, केवल किसी एक ही दिशा में क्षमता प्राप्त करने को प्रयत्नशील रही हैं, इसीलिए लोहिया ने कहा है कि अगर इतिहास की मरूस्थली में हरे-भरे सुगन्धित दूर्वा-स्थलों को खोजना है तो आंशिक क्षमता के स्थान पर बहुमुखी क्षमता के सिद्धान्त को अपनाना होगा ।[1]

---

1. लोहियाः इतिहास चक्रः पृष्ठ - 58

अपने तर्क को आगे बढ़ाते हुए लोहिया ने कहा है कि उत्थान-पतन के क्रम में अनेक सभ्यताओं ने मानव जाति के कुछ भाग को एकता के सूत्र में बाँधा है, यद्यपि यह एकता सुनियोजित नहीं थी और अधिकतर सैनिक विजय पर आधारित थी । इसके अतिरिक्त सारी मानव जाति अभी एक परिधि में आई भी नहीं, क्योंकि ऐसा प्रयास करने वाली प्रत्येक सभ्यता इस प्रवृत्ति को पूर्णता तक पहुँचाने के पहले ही अपनी शक्ति खो बैठी । लेकिन चाहे यह एकता अपूर्ण रही, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि जाति मिश्रण, भाषा - विचार, धर्म, उत्पादन के तरीके एवं रहन-सहन के स्तरों के संबंध में विभिन्न जातियों ने न केवल एक दूसरे को प्रभावित ही किया है, वरन् एक दूसरे के बीच काफी समानता भी लाई है । भौतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में आज विभिन्न देशों के बीच काफी समता पाई जाती है । इन बातों से यह आशा बँधती है कि अगर सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न जातियों के बीच साम्य स्थापित करने की सचेष्ट चेष्टा की जाय, ऐसा साम्य जिसमें कोई जाति किसी के अधीन नहीं, तब मानव जाति की बहुरंगी एकता स्थापित हो सकती है ।

राष्ट्रों के बीच उपरोक्त साम्य के अतिरिक्त उनके आंतरिक जीवन में भी समता स्थापित होती जा रही है । किन्तु ऐसी समता अभी सिर्फ गोरे देशों में पाई जाती है, रंगीन देशों में इसका अभाव है । फिर भी इस दिशा में प्रयत्न तो किया ही जा सकता है कि राष्ट्रों और आंतरिक वर्गों के बीच साम्य

स्थापित हो । ऐसा हो सकने की संभावनाऐं हैं, साधन भी हैं । सिर्फ आवश्यकता है सचेत और निर्णयात्मक चेष्टा की । तभी इतिहास चक्र की गति रूक सकती है और एक ऐसी विश्व सभ्यता की स्थापना हो सकती है जिसमें सभी के चेहरे पर मुस्कान हो और आँसू किसी के नहीं ।

*****

अध्याय - तृतीय

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विचार

डॉ0 राम मनोहर लोहिया की चिन्तन परिधि का केन्द्रस्थ बिन्दु इतिहास चक्र है । यह पूर्व अध्याय में सर्वविदित हो चुका है कि लोहिया की चिन्तन पराकाष्ठा में जातिपरक सामाजिक दृष्टिकोण मार्क्सवादी समाज की व्याख्या से पूर्णतः भिन्न है । अतएव बहुचर्चित मार्क्सवादी समाजवादी दृष्टिकोण की भ्रामकता का अनावरण लोहिया के उक्त अनार्थिक, सामाजिक पक्ष में दृष्टिगोचर होता है । लोहिया के विचार की यथार्थता को समझने के लिए विज्ञानपरक दृष्टिकोण के आधार पर उन समस्त चिन्तनों के अनार्थिक पक्ष के विश्लेषण की जिज्ञासा स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है ।[1]

अतएव प्रस्तुत अध्याय उपर्युक्त प्रयोजनार्थ इतिहास चक्र के मूल सिद्धान्त का भारतीय सामाजिक संरचना के विशेष सन्दर्भ में तथा विश्व के अन्य राष्ट्रों की सामाजिक संरचना के सामान्य सन्दर्भ में तथा विश्व के अन्य राष्ट्रों की सामाजिक संरचना के सामान्य सन्दर्भ में परीक्षण एवं विश्लेषण में है ।

---

1. जाति समस्या पर समाजशास्त्रियों द्वारा कई अध्ययन हुए हैं उनमें से कुछ महत्वपूर्ण कार्य इस प्रकार हैं; आन्द्रबेतिल्ले, कास्ट, क्लास एण्ड पावर आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966,
   डी0एन0 मजूमदार, रेसेज एण्ड कल्चरस् ऑफ इण्डिया,
   नर्मदेश्वर प्रसाद, द मिथ्स ऑफ द कास्ट सिस्टम,
   नर्मदेश्वर प्रसाद, जाति व्यवस्था, 1965
   जे0एच0 हट्टन, कास्ट इन इण्डिया, के अलावे अन्य विद्वानों के कार्यों में-
   आर0एस0 शर्मा, शूद्रइन एनसिएंट इण्डिया,
   एस0एस0 डांगे, इण्डिया: फ्राम प्रीमिटिव कम्युनिज्म टू स्लेबरी,
   आर0के0 मुखर्जी, कास्ट एण्ड सोशल चेंज इन इण्डिया ।

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययन विषय-वस्तु मुख्य रूपेण सामाजिक संरचना एवं संस्कृति है । डॉ0 लोहिया के सामाजिक एवं सांस्कृतिक चिन्तन के निम्न तत्व हैं:- जाति प्रथा, हरिजन समस्या, भारतीय नारी, हिन्दू-मुस्लिम संबंध, शिक्षा, भाषा और संस्कृति ।

जाति प्रथा:-

जातिवाद इतिहास विकृति धरोहर है । इसने समाज के पतन में अहम भूमिका निभायी है । मानव समाज का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि उसके संकट की शुरुआत जाति प्रथा संरचना के अभ्युदय के साथ-साथ हुई है । जाति व्यवस्था की व्यापकता के बारे में डॉ0 लोहिया ने स्पष्टतः कहा है, "भारतीय जीवन में जाति सर्वाधिक प्रभावशाली तत्व है । वे लोग जो इसे सिद्धान्त में नहीं मानते उसे व्यवहार में स्वीकार करते हैं । जीवन जाति की सीमाओं में बँधा हुआ रहता है और सुसंस्कृत लोग मुलायम आवाजों में जाति व्यवस्था के विरूद्ध बोलते हैं पर अपनी क्रिया में वे उसे अस्वीकार नहीं कर पाते ।"[1]

डॉ0 लोहिया ने वर्ण तथा जाति में कोई भेद नहीं किया । उन्होंने यह नहीं माना कि वर्ण या जाति का आधार स्वभाव तथा कर्त्तव्य विभाजन है। वह मानते थे कि वर्ण व्यवस्था बल द्वारा निर्मित की गई एक व्यवस्था है जिसमें

---

1. डॉ0 लोहिया: द कास्ट सिस्टम, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1964, पृष्ठ - 78

गुण कर्म का कोई मूल्य नहीं है । डॉ0 लोहिया चाहते थे कि सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार कर्म होना चाहिए न कि जन्म । जाति प्रथा एक जड़ वर्ग का द्योतक है जिसके कारण भारत का समग्र जीवन निष्प्राण हो गया है । उसी के कारण भारत दासता एवं परतंत्रता का शिकार हुआ ।[1] उनके विचारानुसार जब भी किसी देश में जाति के बन्धन ढीले होते हैं, तब वह देश विदेशी आक्रमण के समक्ष नत-मस्तक नहीं होता । भारत वर्ष में जाति के बन्धन सदैव से जकड़े रहे हैं । जाति-प्रथा निम्न जातियों को सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक, राजनीतिक आदि दृष्टियों से पतित कर देती है । वे सार्वजनिक जीवन से लगभग बहिष्कृत रहती हैं और उनमें से किसी नेतृत्व की सृष्टि नहीं हो पाती । केवल उच्च जाति से ही देश के नेता और कर्णधार बनते हैं । डॉ0 लोहिया जाति प्रथा के कुप्रभाव के विषय में यह कहते हैं कि जाति अवसर को सीमित करती हैं, सीमित अवसर योग्यता को संकुचित कर देता है, संकुचित योग्यता अवसर को और आगे रोकती है । जहाँ जाति का प्रभुत्व है वहाँ अवसर और योग्यता लोगों के संकुचित दायरों में और अधिक सीमित होती चली जाती है ।[2]

लोहिया का जाति-उन्मूलन विचार:-

डॉ0 लोहिया ने जाति-व्यवस्था की आलोचना मूल रूप से चार दृष्टिकोणों से की है - आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक । इन्हीं चार

---

1. 16 दिसम्बर सन् 1959 को लखनऊ में डॉ0 लोहिया द्वारा दिये गये भाषण से।
2. डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, नव हिन्द हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 33

आधरों पर जाति-व्यवस्था के उन्मूलन के लिए विचार प्रस्तुत किये हैं । लोहिया के अनुसार ब्रह्म ज्ञान और अद्वैतवाद जाति प्रथा का समर्थन नहीं करता । अद्वैतवाद एवं ब्रह्म ज्ञान व्यक्तियों को बाँटकर उन्हें, अमानवीय बनने के लिए प्रेरित नहीं करता । ब्रह्म ज्ञान एक ज्ञान है जो समस्त सृष्टि को और उसमें अन्तर्निहित समस्त प्राणी जिनमें मानव भी सम्मिलित हैं को तुच्छ वृत्ति एवं अधोगमन से विमुख रहने की सीख देता है । किन्तु जाति प्रथा ने इससे विमुख होकर न केवल ब्रह्म ज्ञान की उपेक्षा की है वरन् छिन्न-भिन्न होकर समाज को विनाश के मार्ग पर चलने के लिए बाध्य किया है ।[1]

डॉ0 लोहिया ने जाति प्रथा के उन्मूलन के लिए सामाजिक आधार का भी सहारा लिया है । उन्होंने दो तरह से सामाजिक कार्यों का अवलोकन एवं उसमें निहित त्रुटि की आलोचना की है । प्रथम आधार है, लोगों के रहन-सहन एवं खान-पान संबंधी व्यवहार एवं कार्य तथा द्वितीय आधार है विवाह प्रणाली की जातीय परम्परा । गाँवों में जाति स्तर पर खान-पान का आयोजन जातियों को निरर्थक जातिगत मनोभावों में ग्रसित रखता है । अतएव लोहिया का सुझाव है कि अन्तर्जातीय खान-पान के आयोजन को प्रश्रय देकर लोगों को जातीय विषाक्त मनोभाव से मुक्त पाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्तर्जातीय विवाह भी जातीय विभाजन की सीमा को समाप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है ।[2]

---

1. डॉ0 लोहिया: धर्म पर एक दृष्टि, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1966, पृष्ठ - 16
2. देखिए, जाति विनाश सम्मेलन के प्रस्ताव, 31 मार्च - 2 अप्रैल 1961, पटना में आयोजित समाजवादी दल का सम्मेलन, परिशिष्ट, जाति प्रथा, पृ0-183-84
   लोहिया: जाति प्रथा, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1964, पृष्ठ - 4

आर्थिक दृष्टिकोण से लोहिया का कथन है कि पिछड़ी जातियों में आत्म-सम्मान के उन्नयन के लिए उन्हें आर्थिक आधार की उपलब्धता कराना अनिवार्य है । डॉ0 लोहिया ने सुझाया कि सभी भूमिहीन मजदूरों को साढ़े छः एकड़ जमीन मिले, खेतिहर मजदूरों की मजदूरी बढ़ाई जाएं, ऊँची से ऊँची आमदनी या नीची से नीची आमदनी के बीच में एक मर्यादा बाँधने वाली बात लागू की जाए ।[1] उन्होंने स्पष्टतः कहा कि "चरम दरिद्रता की अवस्था में सामाजिक चेतना मर जाती है, या कम से कम क्षीण हो जाती है । समृद्धि और सुख में रहने वाले व्यक्ति अपने और दरिद्र जनता के बीच निर्ममता की प्राचीरें खड़ी कर देते हैं । सामाजिक चेतना का पुनर्जागरण तभी संभव है, जब इन प्राचीरों को ढहाया जाये और ये प्राचीरें तभी गिर सकती हैं जबकि आमदनियों का परस्पर अन्तर निश्चित सीमा के अन्दर रखा जाये ।"[2] डॉ0 लोहिया के अनुसार सामान्यतः छोटी जाति के ही व्यक्ति खेतिहर मजदूर हैं वही भूमिहीन हैं, उन्हीं को आय मर्यादा की सीमा से आर्थिक दृष्टि से उन्नत किया जा सकता है । इस प्रकार डॉ0 लोहिया ने जातिगत प्रथा के दोषों में आर्थिक विषमता को भी सन्निहित किया । इस आर्थिक विषमता का शिकार समाज का पिछड़ा वर्ग ही हुआ है। अतएव पिछड़े वर्ग को विशेष सुविधा देने के पक्ष में लोहिया ने अपना विचार व्यक्त किया है । पिछड़ी जातियों में लोहिया ने औरत, शूद्र, हरिजन, अल्पसंख्यकों में विशेष दबे मुसलमान और ईसाई तथा आदिवासी देश की पिछड़ी जातियों को

---

1. डॉ0 लोहियाः निराशा के कर्त्तव्य, समता विद्यालय न्यास हैदराबाद, 1970, पृष्ठ - 28
2. डॉ0 लोहियाः कांचन-मुक्ति, नवहिन्द, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ - 32

सम्मिलित किया है ।[1]

डॉ0 लोहिया ने जाति प्रथा के दोषों का विवेचन राजनीतिक दृष्टि से भी किया है । उनके अनुसार जाति प्रथा के कारण लोगों में राजनीतिक उदासीनता बढ़ी है यह उदासीनता विशेषकर पिछड़े वर्गों में बढ़ी है जो पिछड़ा वर्ग समाज का बहुसंख्यक वर्ग है । अपनी दबी हुई स्थिति के कारण वे अपने मताधिकार का प्रयोग नहीं कर पाते । इसके फलस्वरूप राजनीतिक व्यवस्था में उनकी भागीदारी बहुत कम है । साथ ही उनमें नेतृत्व गुण का विकास नहीं हो पा रहा है । डॉ0 लोहिया ने जाति-प्रथा के तोड़ने में वयस्क मताधिकार और प्रत्यक्ष चुनाव की भूमिका पर भी बल दिया । उनका विचार था कि "जैसे - जैसे यह वयस्क मताधिकार चलता रहेगा, चुनाव चलते रहेंगे, वैसे - वैसे जाति का ढीलापन बढ़ता रहेगा ।"[2] संक्षेप में डॉ0 लोहिया ने आम लोगों में राजनीतिक चेतना भरने और राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिए जाति-प्रथा की समाप्ति की दिशा में प्रत्यक्ष चुनाव वयस्क मताधिकार और विशेष अवसर के सिद्धान्त की आवश्यकता पर बल दिया । अपने सुझाव के पक्ष में लोहिया ने कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण बाते भी कहीं है । उदाहरणार्थ उन्होंने विशेष अवसर का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।[3]

---

1. डॉ0 लोहियाः निराशाके कर्त्तव्य, 1970, पृष्ठ - 28
2. डॉ0 लोहियाः निराशा के कर्त्तव्य, पृष्ठ - 29
3. विशेष अवसर के सिद्धान्त के अन्तर्गत लोहिया ने पिछड़ी जाति को 60% स्थान उच्च सरकारी पदों पर तथा राजनीतिक नेतृत्व में दिये जाने के पक्ष में विचार प्रस्तुत किया था ।

जिसके अनुसार व्यक्तियों की क्षमता अथवा गुण के आधार पर नहीं अपितु बाध्यकारी रूप में समस्त पिछड़ी जाति के लोगों को सुविधाएँ प्रदान की जायें । उन्हें अनिवार्य रूप से राजकीय सेवाओं में तथा शासन में सम्मिलित होने का अवसर प्रदान किया जाये, चाहे वे उन पदों के योग्य हों या नहीं । उनका तर्क था कि जब तक पिछड़ी जातियों को जबर्दस्ती राजनीतिक एवं अन्य सुविधाएँ नहीं दी जाती, जाति-प्रथा का विभाजन बना रहेगा और समाज सदा ही शोषण एवं सर्वनाश की चक्की में पिसता रहेगा । उनके अनुसार "अवसर देने के लिए जब तक योग्यता की कसौटी होगी हिन्दुस्तानी जनता अपनी योग्यता से वंचित रहेगी ।"[1] डॉ0 लोहिया ने संरक्षण की नीति के संबंध में कहा कि यह उस समय तक केवल कागज पर ही रहेगा जब तक कि उन्हें उनकी योग्यता का लिहाज किये बिना सभी अवसर प्रदान नहीं किये जाते ।

निष्कर्ष रूप में लोहिया के उपर्युक्त विचार की समीक्षात्मक विवरण का सार निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है ।

(1) जाति-व्यवस्था योग्यताओं और अवसरों को कुंठित एवं बाधित करती है ।

(2) इसके परिणाम स्वरूप समाज का सम्पूर्ण एवं संतुलित विकास अवरुद्ध हो जाता है ।

---

1. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 142

(3) इस अवरुद्ध स्थिति से निवारण का उपाय विशेष अवसर का सिद्धान्त है ।

(4) विशेष अवसर का सिद्धान्त पिछड़े वर्ग को उनकी योग्यता का ध्यान रक्खे बिना अवश्यम्भावी रूप से शासकीय, प्रशासकीय तथा राजनीतिक नेतृत्व के अवसर उपलब्ध कराने का सिद्धान्त है ।

(5) विशेष अवसर का सिद्धान्त सर्वप्रथम जाति संघर्ष को और तीव्र करेगा[1] तथा कुशलता एवं निपुर्णता की मात्रा को भी भरसक कम करेगा।

(6) लोहिया ने जातिगत दोषों को दूर करने के लिए तर्क की जगह भावावेश का विशेष सहारा लिया है जिसके कारण उनके सुझाव की युक्तिसंगतता संदेहास्पद प्रतीत होती है ।[2]

हरिजनः-

राम मनोहर लोहिया के जाति-प्रथा रूपी चक्र का मुख्य चिन्तनीय पक्ष पिछड़ी जाति है । लोहिया की पिछड़ी जाति की संरचना को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे सभी पिछड़ी जातियाँ

---

1. वर्तमान में मण्डल आयोग की सिफारिश को लागू करने के प्रस्ताव पर जो देश-व्यापी जाति संघर्ष का विनाशकारी नृत्य शुरू हुआ वह भारत के इतिहास का एक कलंकपूर्ण पक्ष है । ऐसी अवस्था में लोहिया के सुझाव के कार्यान्वयन का प्रतिफल का अनुमान करना कठिन नहीं है ।
2. संभवतः लोहिया ने अपने तर्क की अतिश्योक्ति का अनुभव किया हो, ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि उन्होंने अन्ततोगत्वा केवल कुछ दशकों तक ही पिछड़ी जातियों को विशेष अवसर प्रदान करने की बात कही है । देखिये जाति प्रथा, पृष्ठ - 98

हैं जो हरिजन तथा नारी वर्ग को सम्मिलित नहीं करतीं जैसे जनजाति-मुस्लिम वर्ग की दबी हुई जाति, इसाई तथा अन्य अनेक पिछड़ी जातियाँ । द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत मूल रूप से हरिजन जातियाँ आती हैं तथा तृतीय वर्ग में नारी । इन तीन समस्त पिछड़े वर्ग की श्रेणियों पर लोहिया ने वृहद विचार किया तथा उनके पिछड़े पन को दूर करने के लिए अनेक सुझाव दिये हैं । यह ऊपर स्पष्ट हो चुका है कि लोहिया ने किस प्रकार से दबी हुई जाति संरचना पर प्रहार किया है तथा उनके शोषकों के विरूद्ध अभियान छेड़ने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया है । उनके इस अभियान का दूसरा महत्वपूर्ण भाग अस्पृश्यता निवारण संबंधी विचार एवं योजनाएँ हैं । हरिजन कही जाने वाली जातियों में आत्म सम्मान एवं आत्म-बल की भावना को जागृति करने के लिए लोहिया ने गाँधी सादृश्य विचार प्रस्तुत किये । हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश,[1] सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश, सार्वजनिक कुएँ आदि के प्रयोग के लिए प्रोत्साहन एवं नियम का निर्माण, तथा अन्य अनेक प्रयासों को कार्य रूप देने के लिए उन्होंने सशक्त विचार प्रस्तुत किये ।

लोहिया ने हरिजनों में आत्म-सम्मान जगाने के लिए उन्हें ऊँची जातियों के समान धार्मिक कृत्य करने के सुझाव दिये । इसका यह आशय है

---

1. डॉ0 लोहिया ने "अस्पृश्यता अपराध कानून" की निष्फलता पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा कि उक्त कानून के बावजूद हरिजनों को विश्वनाथ मन्दिर में प्रवेश नहीं दिया गया । इसी क्रम में उन्होंने हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन चलाया । उनके आन्दोलन के घोर विरोध के बाद उत्तर प्रदेश सरकार को मन्दिर प्रवेश अधिकार घोषणा विधेयक पारित करना पड़ा ।

कि लोहिया हरिजनों को पूजा-पाठ आदि के समान अवसर दिलाकर उनके निकृष्ट व्यक्तित्व मनोभाव को समाप्त करना चाहते थे । अशिक्षा के कारण एवं जाति प्रथा के दुष्प्रभाव से हरिजनों की अस्वास्थ्यकर पेशाएँ जैसे (पाखाना धोना आदि) निरन्तर उन्हें अद्योगमन दिशा में भेजता रहा । अतएव इस पक्ष के समाधान हेतु उन्होंने हरिजनों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बल दिया । लोहिया यह भी मानते थे कि उनके साथ मानवोचित व्यवहार किया जाना आवश्यक है क्योंकि राष्ट्र के सर्वांगीण उत्थान के लिए हरिजनों का उत्थान अत्यन्त आवश्यक है ।

डॉ0 लोहिया अन्तर्जातीय ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय विवाह के भी प्रबल समर्थक थे । उन्होंने 'समान प्रसवः जाति' के सूत्र को केवल समझने के लिए नहीं अपितु स्थायी मानसिक दशा के रूप में अपनाने के लिए विश्व-नागरिकों को जागृत किया ।[1] हरिजन कल्याण के लिए सह भोज को वे अचूक अस्त्र मानते थे । उनका कहना था कि "एक पंक्ति में बैठकर और एक हड़िया का पका हुआ भोजन हो तो इससे कुछ असर पड़ेगा ।"[2] उनके मतानुसार शासकीय सेवा के लिए अन्तर्जातीय विवाह एक योग्यता और सहभोज को अस्वीकार करना एक अयोग्यता मानी जानी चाहिए । केवल तभी जाति और अस्पृश्यता की समाप्ति संभव होगी ।

---

1. डॉ0 लोहियाः जाति प्रथा, पृष्ठ - 19
2. डॉ0 लोहियाः देश-विदेश नीतिः कुछ पहलू, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, पृष्ठ - 91

निष्कर्ष में लोहिया ने हरिजनों की दयनीय स्थिति और उसके दुष्परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत की धूमिल छवि का एक कारण माना है । उन्हीं के शब्दों में "अगर वे अपने देश में चमार, भंगी और शूद्र लोगों को बनाये रखेंगे तो दुनिया की पंचायत में वे भी शूद्र बने रहेंगे । अत· विश्व पंचायत में बराबरी हासिल करने का सपना साकार करने के लिए द्विजों को अपने 22 करोड़ भाइयों को व्यक्तित्ववान् बनाना आवश्यक है ।"[1] अतएव लोहिया का यह सुझाव है कि "इनके पुराने संस्कार, परम्परा, परिपाटियों को बदल करके, आदतों को बदलकर नई आदतें और नये संस्कार इनमें आयें, इनको नया मौका मिले इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं रह गया है ।"[2] लोहिया हरिजन-उत्थान के लिए राजनीति में उनको नेतृत्व के उच्च पदों पर आसीन करना चाहते थे। उन्होंने हरिजनों में से नेता निकालने के लिए उनके संरक्षण की आवश्यकता अनुभव की । उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "मैं चाहता हूँ कि पिछड़ी जातियों में से नेता निकले जो चापलूस भी न हों और नफरत फैलाने वाले भी न हों और मध्यम तथा स्वाभिमानी मार्ग पर चलकर सारे हिन्दुस्तान और देश के सभी लोगों के नेता बनें ।"[3] प्रायः यह देखा जाता है कि जब हरिजनों अथवा शूद्रों में से कोई नेता बन जाता है तो वह उच्च जाति की बुराइयों को स्वयं अपना लेता है । लोहिया का कहना था कि इस वृत्ति से हरिजन नेताओं को बचना चाहिए तभी वे अपने वर्ग एवं राष्ट्र का उत्थान कर सकेगें ।

---

1. डॉ0 लोहियाः जाति प्रथा, पृष्ठ - 35
2. डॉ0 लोहियाः वही, पृष्ठ - 113
3. डॉ0 लोहियाः वही, पृष्ठ -

भारतीय नारीः-

डॉ0 राम मनोहर लोहिया ने नारी को भी एक जाति माना है । राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जगत में नारी की दुर्दशा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण उसका पिछड़ापन है । इतिहास इस बात का प्रमाण है कि पूरे विश्व में सदियों से नारियों के प्रति जो एक उदासीन दृष्टिकोण रक्खा गया उसके कारण आज मानव जाति की निस्सहाय एवं दयनीय स्थिति दृष्टिगोचर हो रही है ।[1] नारी के प्रति दुर्व्यव्यवहार अशिक्षा, तथा अधिकारों से वंचित रखने की सदियों पूर्व से चली आ रही लम्बी कहानी ने न केवल नारियों की दयनीय स्थिति को सृजित किया है वरन् मानव सभ्यता को कंलक के धब्बे से आच्छादित कर दिया है । अलटेकर का यह कथन कि किसी भी देश की सभ्यता एवं संस्कृति का यथार्थ प्रतिबिम्ब वहाँ की स्त्रियों में देखा जा सकता है, पूर्णतः सत्य है । नारियों की विवशता और उन पर हो रहे सदियों से अत्याचार ने लोहिया को इस दिशा में सोचने एवं नारी मुक्ति आन्दोलन को तेज करने के लिए बाध्य किया । उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक नारियों को पुरुषों के समान दर्जा नहीं दिलाया जाता तब तक मानव समाज का उत्थान एवं विकास असम्भव है ।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में लोहिया ने नारी संबंधी जो विचार प्रस्तुत किये उनके कई पक्ष हैं । उदाहरणार्थ नर-नारी समता, विवाह, दहेज, परिवार नियोजन,

---

1. नारी की दुर्दशा एवं उसके दुष्परिणाम के ऐतिहासिक, चित्रण के लिए देखिए ए0एस0 अलटेकर "द पोजिशन ऑफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन", मोती लाल बनारसी दास, पटना प्रथम संस्करण -

नारियों की शारीरिक संरचना एवं प्रकृति के अनुकूल उन्हें विशेष अवसर सुलभ कराना, नारी स्वतन्त्रता आदि ।

लोहिया ने अपने समकालीन भारतीय समाज की नारियों की स्थिति को निकट से देखा एवं समझा । नारी की स्थिति का एक वास्तविक चित्रण उन्होंने इन शब्दों में किया है, "नारी की रसोई की गुलामी, विभत्स है, और चूल्हों का धुआँ तो भयंकर है ।"[1] हिन्दुस्तानी औरत के परम्परागत संस्कार ऐसे हैं कि भूख और अभाव की चोट सबसे पहले और सबसे ज्यादा उसी पर पड़ती है । वह सारे घर को खिलाने के बाद खाती है और इसलिए अक्सर भूखी या अध पेटी सोती है ।"[2] पुरुषों की अपेक्षा औरतों की बेजान स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करते हुए लोहिया ने लिखा है, "औरत ! हिन्दुस्तान की औरत। दुनियाँ के दुःखी लोगों में सबसे ज्यादा, दुःखी भूखी, मुर्झाई और बीमार है । हिन्दुस्तान का मर्द भी दुःखी है - पर हिन्दुस्तानी औरत, मर्द के मुकाबले कई गुना ज्यादा भूखी और बीमार है ।"[3]

भातीय संस्कृति में नर-नारी जन्म में भी असमानता है । नर का जन्म सुखद और नारी का दुःखद माना जाता है । इसका मुख्य कारण भारत

---

1. जाति-प्रथा, पृष्ठ - 4
2. जन, नई दिल्ली सितम्बर 1966, पृष्ठ - 61
3. उदधृत, रजनीकांत वर्मा, 'लोहिया और औरत' लोहिया वादी साहित्य विभाग श्री विष्णु आर्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1969, पृष्ठ - 27

में व्याप्त दहेज-प्रथा है । वधू की योग्यता, शिक्षा, सुन्दरता आदि तो गौण हैं। वधु-विवाह में वर-पक्ष दहेज की अधिक मात्रा से प्रभावित होता है । जिस प्रकार गाय दूध की मात्रा से नहीं, उसके बछड़ा नीचे होने से क्रेता के लिए मूल्यवान होती है, उसी प्रकार वधू योग्यता से नहीं, दहेज से ही अच्छे घर में विवाहित होती है । लोहिया ने उचित ही कहा है, "बिना दहेज के लड़की किसी मसरफ की नहीं होती, जैसे बिना बछड़े वाली गाय ।"[1] इसके अलावे विवाह की निमन्त्रण की सुन्दरता, दी जाने वाली वस्तुओं का मूल्य, कण्ठियों की कीमत तथा अन्य तड़क-भड़क वर-वधू के आत्म-मिलन से अपेक्षाकृत अधिक महत्व की समझी जाती है । लोहिया ठीक ही कहते हैं कि "उनकी शदियों का वैभव आत्मा के मिलन में नहीं है, जिसे प्राप्त करने का नवदम्पति प्रयत्न करते, बल्कि बीस लाख की कण्ठियों और पचास हजार से भी ज्यादा कीमती साड़ियों में है।"[2] दहेज की इस घृणित प्रथा की भर्त्सना के लिए शक्तिशाली लोकमत तैयार किया जाना चाहिए और जो युवक इस क्षुद्र तरीके से दहेज लेते हैं, उन्हें समाज से बहिष्कृत किया जाना चाहिए ।

लोहिया बहु पत्नी-प्रथा के घोर विरोधी थे । उनका मत था कि यदि पत्नी एक पति रख सकती है तो पति को भी केवल एक ही पत्नी रखने का अधिकार होना चाहिए । उन्होंने मुस्लिम धर्म की इस स्वतंत्रता की कटु

---

1. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 5

2. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा - पृष्ठ - 7

आलोचना की है जिसके अनुसार एक मुसलमान को चार पत्नी तक रखने का अधिकार दिया गया है । उनका विश्वास था कि जब सर्वगुण - सम्पन्न द्रौपदी अपने पाँच पतियों के साथ सम-व्यवहार न कर सकी तो साधारण मानव के लिए पत्नियों के साथ सम-व्यवहार कर सकना असंभव और अस्वाभाविक है । उनका विचार था कि "जो औरत को भी चार पति करने की इजाजत नहीं देता है, वह जब कहता है किसी भी आधार पर धर्म हो, कि चार औरते करने का हक होना चाहिए तो बड़ा गन्दा मर्द है ।"[1] लोहिया नर-नारी के बीच इस सम्बन्ध में समता चाहते थे । एक पत्नी एक पति का सिद्धान्त ही उनके लिए आदर्श था । घर के कार्यों के सम्बन्ध में भी वे समता का प्रतिपादन करते हैं । उनका कहना था कि अगर औरत की जगह रसोई घर में हो तो आदमी की जगह पालने के पास होना चाहिए ।[2]

नारी स्वतन्त्रा का प्रतिपादन करते हुए लोहिया ने कहा कि आधुनिक पुरुष अपनी स्त्री को एक ओर सजीव, क्रान्तिपूर्ण एवं ज्ञानी चाहता है, दूसरी ओर अधीनस्थ भी । पुरुष की यह परस्पर विरोधी भावनाएँ बहुत ही काल्पनिक, अवास्तविक एवं यथार्थता से परे हैं क्योंकि परतन्त्रता की स्थिति में ज्ञान, सजीवता एवं तेज का प्रादुर्भाव कैसे हो सकता है ? लोहिया ने नर के इस प्रकार के भरे हुए मस्तिष्क को जगाया और कहा "या तो औरत को बनाओ परतन्त्र, तब मोह छोड़ दो औरत को बढ़िया बनाने का । या फिर, बनाओ उसको स्वतन्त्र।

---

1. डॉ0 लोहियाः जाति प्रथा, पृष्ठ - 174

2. वही : पृष्ठ - 137

तब वह बढ़िया होगी, जिस तरह से मर्द बढ़िया होगा ।"[1] लोहिया के उपर्युक्त दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि नर-नारी समता के प्रतिपादन में उनका प्रमुख उद्देश्य था नारी को बुद्धिमान, विवेकी, क्रान्तिपूर्ण और ज्ञानी बनाना ।

डॉ0 लोहिया नारी को आर्थिक - दृष्टि से भी स्वतन्त्र करना चाहते थे । वे नारी को समान कार्य के लिए समान वेतन ही नहीं, अवसर और विधि की समानता ही नहीं, अपितु नारी की प्राकृतिक कमजोरी की क्षति पूर्ति के लिए विशेष अवसर के पक्षपाती थे । "प्रथम योग्यता फिर अवसर" उनका सिद्धान्त न था, बिल्क "प्रथम अवसर और फिर योग्यता" को ही वे उचित समझते थे । इस हेतु उनका तर्क था कि "शरीर संगठन के मामले में मर्द के मुकाबिले में औरत कमजोर है और मालूम होता है कि कुदरती तौर पर कमजोर है । इसलिए उसे कुछ स्वाभाविक तौर पर ज्यादा स्थान देना ही पड़ेगा ।"[2]

लोहिया के अनुसार नारी के सक्रिय सहयोग के बिना राजनीति अपूर्ण है । अतः राजनीति में नारी को नर के समान हिस्सा बँटाना चाहिए । वे तलाक के सिद्धान्त को विवाह के क्षेत्र में स्वीकार करते हैं, राजनीति के क्षेत्र में नहीं अर्थात् राजनीति में नारी को नर के समान सक्रिय भाग लेना चाहिए। उसे राजनीति से तलाक नहीं लेना चाहिए । लोहिया नारियों को केवल गुड़िया या उपभोग की निर्जीव वस्तु नहीं मानते । वे कहा करते थे कि "नारी को गठरी के समान नहीं बनाना है, परन्तु नारी इतनी शक्तिशाली होनी चाहिए कि वक्त

---

1. 1962 जून, 22, नैनीताल, लोहिया-भाषण, समाजवादी युवजन समाज शिक्षण शिविर ।
2. डॉ0 लोहिया: सात क्रान्तियाँ, पृष्ठ - 19

पर पुरुष को गठरी बनाकर अपने साथ ले चलें ।"[1] इस प्रकार उन्होंने स्त्री पुरुष की समानता पर अत्यधिक जोर दिया है ।

लोहिया ने नारियों की स्थिति के संबंध में जो अनुभव किया उसके कारणों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है :-

(1) नारी पर दोहरा अत्याचार होता है, प्रथम समाज की रचना एवं नारी विरोधी संस्कृति ने नारी को इस भयावह अवस्था तक पहुँचाया है ।

(2) परिवार में पति एवं परिवार के अंकुश एवं दुर्व्यव्यवहार ने उसे पशुवत बना दिया है ।

(3) नारियों को घर के चार दिवारियों के भीतर रखने एवं कार्य करने की प्रथा एवं आदत को बढ़ावा दिये जाने के कारण उनकी स्वतन्त्रता समाप्त हो गई है और इस प्रकार वह गुलामी की जंजीर में जकड़ गई है ।

(4) उपर्युक्त कुप्रथाओं ने एक ऐसी विषैली वातावरण का निर्माण किया जो निरन्तर नारियों की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति को विनाश की ओर ले जा रहा है ।

---

1. डॉ0 लोहिया: जाति-प्रथा, पृष्ठ - 141

संक्षेप में, डॉ0 लोहिया ने नर-नारी के बीच व्याप्त बहुरूपी असमानताओं को सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया, उन पर गंभीरता से विचार किया और भविष्य के लिए पथ निश्चित किया । अन्त में उनका कहना है कि यदि वास्तव में समाजवाद की स्थापना करनी है तो हिन्दू नर के पक्षपाती "दिमाग को ठोकर मार-मार करके बदलना है । नर-नारी के बीच में बराबरी कायम करना है।"[1]

हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धः-

हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों की समस्या भारतीय इतिहास की एक मुख्य समस्या है । पिछले आठ सौ बरसों के आपसी सम्बन्धों में, अलगाव और मेल के उतार-चढ़ाव से 'हिन्दू और मुसलमान लगातार पीड़ित रहे और अलगाव पर ही कुछ ज्यादा जोर रहा । इससे एक राष्ट्र के अन्दर इनकी भावात्मक एकता अब तक नहीं हो सकी । अंग्रेजों का शासन स्थापित होने से पूर्व भारत में उस तरह के हिन्दू - मुस्लिम झगड़े कभी नहीं दिखाई दिए जैसे झगड़े अंग्रेजी शासन-काल में और विशेषकर अंतिम दिनों में देखने को मिले । किसी एक रियासत का किसी दूसरी रियासत के साथ संघर्ष भी हुआ और कभी - कभी यह भी देखने में आया कि एक रियासत का राजा हिन्दू है और दूसरी रियासत का मुसलमान लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ कि इन संघर्षों ने हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का रूप लिया है । आज भी हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच एक स्थायी तनाव

---

1. डॉ0 लोहियाः जाति प्रथा, पृष्ठ - 165

बना हुआ है, जो कभी भी, किसी भी कारण से साम्प्रदायिक दंगों का रूप ले लेता है । हिन्दू-मुस्लिम स्थिति पर गंभीर चिन्ता व्यक्त करते हुए लोहिया कहते हैं "आज हिन्दू और मुसलमान दिमाग दोनों के अन्दर कम या ज्यादा कूड़ा भरा हुआ है । दिमाग में भी झाड़ू देनी पड़ती है ।"[1]

डॉ0 लोहिया के विचारानुसार हिन्दू के मन में एक गलत धारणा है कि मुसलमानों ने उन पर 700-800 वर्ष तक शासन किया और उनके तन-मन-धन को विनष्ट किया इसी प्रकार मुसलमान भी कुछ थोथे विचारों के शिकार हैं । आधुनिक भारत में उनके गिरे हुए दिन उनको हिन्दुओं के प्रति ईर्ष्यालु बनाते रहते हैं । हिन्दू और मुसलमानों के इन विद्वेष पूर्ण मनोभावों की विवेचना करते हुए लोहिया कहते हैं" आमतौर से जो भ्रम हिन्दू और मुसलमान दोनों के मन में हैं, वह यह कि हिन्दू सोचता है पिछले 700-800 वर्ष तो मुसलमानों का राज्य रहा, मुसलमानों ने जुल्म किया और अत्याचार किया, और मुसलमान सोचता है, चाहे वह गरीब से गरीब क्यों न हो, कि 700-800 वर्ष तक हमारा राज था, अब हमको बुरे दिन देखने पड़ रहे हैं ।"[2]

हिन्दू और मुसलमान के बीच मन-मुटाव और मिथ्या धारणा का कारण इतिहास की गलत व्याख्या है । लोहिया की दृष्टि में इतिहास के गलत लिखे जाने और उसे गलत समझे जाने के बहुत ही भयंकर परिणाम होते हैं।

---

1. डॉ0 लोहियाः देश गरमाओ - राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद - 1970, पृष्ठ - 79
2. लोहिया-भाषण, 1963, अक्टूबर 3, हैदराबाद ।

उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया, "इतिहास है क्या ? इतिहास है अतीत का बोध और अतीत का बोध भविष्य और वर्तमान का निर्माता । अगर गलत समझते हैं तो गलत ढंग से वर्तमान और भविष्य बनता है ।"[1] लोहिया के विचारानुसार इतिहासकारों ने इतिहास को इतने खराब ढंग से गढ़ा है कि वह हिन्दू और मुसलमान में द्वेष और घृणा का भाव भरता है । इतिहास ने गजनी, गोरी और बाबर जैसे-हमलावरों और लुटेरों की पंक्ति में रजिया, शेरशाह और जायसी जैसे देश रक्षकों को रखकर महान भूल की है । इस गलत इतिहास ने भारतीय मन पर 'हिन्दू बनाम मुसलमान' की दुखद छाप डाली है ।

भारत में इस साम्प्रदायिक बीज को पालने का श्रेय अंग्रेजों पर कम नहीं है । पृथक निर्वाचन, भेदात्मक और असमान नीति, साम्प्रदायिकतापूर्ण मिथ्या आश्वासन आदि ऐसे अचूक अस्त्रों से अंग्रेजी शासन ने हिन्दू-मुसलमानों के संयुक्त जीवन को भेद डाला । भारत विभाजन भी अंग्रेजों की आखिरी साजिश का ही परिणाम है ।

डॉ0 लोहिया के मतानुसार साम्प्रदायिकता का कारण बहुत कुछ देश की वर्तमान राजनीति भी है । स्वतन्त्रता के बाद भी मुसलमान को हिन्दू के समीप लाने के लिए उनके मन से अलगाव के बीज समाप्त करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया । भारतीय राजनीतिज्ञ साधारणतः सभाएँ नहीं करते

---

1. 26 अप्रैल सन् 1966 ई0 को लोक सभा में डॉ0 लोहिया द्वारा दिये गये भाषण से ।

और न ही सत्य-सिद्धान्तों का प्रचार कर साम्प्रदायिकता समाप्त करना चाहते हैं । चुनावों के समय मत और समर्थन की आशा में उन्हें भाषण देना पड़ता है किन्तु उन भाषणों में भी वे हिन्दू - मुसलमान की असंतुष्टि के भय से सत्य कहने से कतराते हैं । लोहिया के स्वयं के शब्दों में, "हिन्दुस्तान में जितनी भी पार्टियाँ हैं, वे हिन्दू-मुसलमान को बदलने की बात बिल्कुल नहीं करती हैं । मन में जो पुराना कूड़ा पड़ा हुआ है, जो गलतफहमी है, जो भ्रम है, उन्हीं को तसल्ली दे-दिलाकर वोट ले लेना चाहते हैं । यह है आज हमारे राजनीतिक जीवन की सबसे बड़ी खराबी कि हम लोग वोट के राज में, नेता लोग खास तौर से सच्ची बात कहने से घबड़ा जाते हैं । इसका नतीजा है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों का मन खराब रह जाता है, बदल नहीं पाता ।"[1]

जब तक इस कटु साम्प्रदायिकता का अन्त नहीं होता समाज में समता, सम्पन्नता और सहयोग की स्थिति नहीं आ सकती । इसलिए साम्प्रदायिकता समाप्ति के प्रयास निरन्तर और निष्ठा के साथ होने चाहिए ।

सुधार हेतु सुझावः-

डॉ0 लोहिया के मत में मुख्यतः पाँच प्रकार के सुधार इस दिशा में किये जा सकते हैं :- (1) हृदय परिवर्तन, (2) इतिहास की सही व्याख्या, (3) धार्मिक एवं सामाजिक प्रयास, (4) राजनीति में सुधार, (5) भाषा संबंधी उदारनीति।

---

1. डॉ0 लोहियाः हिन्दू और मुसलमान, नवहिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार, हैदराबाद, दिसम्बर, 1963, पृष्ठ - 8

साम्प्रदायिकता - समाप्ति हेतु हृदय-परिवर्तन का प्रयास बहुत महत्व का होता है । सन् 1946 ई0 में हिन्दू - मुसलमान के बीच भयानक दंगे हुए उस समय महात्मा गाँधी, डॉ0 लोहिया आदि ने हृदय परिवर्तन के प्रयास किये । हिन्दू मुस्लिम एकता और साम्प्रदायिकता का दमन ही लोहिया का उस समय प्रमुख कार्यक्रम बना । कलकत्ते में लोहिया ने दल के सदस्यों के साथ "गणफौज" नामक एक स्वयं सेवक संगठन भी बनाया । काशीपुर में एक राहत केन्द्र भी खोला ।[1] यद्यपि उन्हें उस भीषण मारकाट की स्थिति में केवल आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई, परन्तु इस तथ्य से मुख नहीं मोड़ा जा सकता कि सामान्य स्थिति में हृदय परिवर्तन के प्रयत्न बहुत ही प्रभावशाली होते हैं । जैसा कि लोहिया कहते हैं कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों को सच्चे दिल से देश-भक्त बनाना है "और उन्हें भक्त बनाने के लिए मन बदलना होगा, दोनों का, हिन्दू का भी और मुसलमान का ।"[2]

डॉ0 लोहिया हिन्दू और मुसलमान दोनों के मन को बदलने और उनमें साम्प्रदायिकता का भाव समाप्त करने के लिए इतिहास का सही ढंग से लिखा और समझा जाना आवश्यक मानते थे । उन्होंने इतिहास का सूक्ष्म अवलोकन और विवेचन कर यह स्पष्ट किया कि इतिहास हिन्दू-मुसलमान एकता से पूर्ण

---

1. ओंकार शरदः लोहिया, पृष्ठ - 187
2. डॉ0 लोहियाः वशिष्ठ और बाल्मीकि, समाजवादी, प्रकाशन, बेगमबाजार, हैदराबाद, जनवरी - 1958, पृष्ठ - 9

है । उसमें कहीं कोई साम्प्रदायिकता नहीं है । इतिहास पर सही दृष्टि रखकर ही हम इस सत्य को समझ सकते हैं कि पिछले 700-800 वर्ष के युद्धों में मुसलमान ने हिन्दू को नहीं, अपितु विदेशी मुसलमान ने देशी मुसलमान को भी मौत के घाट उतारा है । उन्होंने यह सिद्ध किया कि ये युद्ध हिन्दू और मुसलमान के बीच नहीं अपितु देशी और विदेशी के बीच हुए । लोहिया का कहना है कि पिछले 700-800 वर्ष में मुसलमान ने मुसलमान को मारा है । मारा है, कोई रूहानी अर्थ में नहीं, जिस्मानी अर्थ में मारा है । तैमूरलंग आता है जब 5 लाख आदमियों को कत्ल करता है, तो उनमें से तीन लाख तो मुसलमान थे, पठान मुसलमान थे, जिनका कत्ल किया । कत्ल करने वाला मुगल मुसलमान था । यह चीज अगर मुसलमानों के घर-घर में पहुँच जाय कि कभी मुगल मुसलमान ने पठान मुसलमान का कत्ल किया और कभी अफ्रीकी मुसलमान ने मुगल मुसलमान को मारा तो पिछले 700 वर्ष का वाकया लोगों के सामने अच्छी तरह से आने लग जाएगा कि यह हिन्दू मुसलमान का मामला नहीं है, यह तो देशी-पर देशी का है ।"[1]

डॉ0 लोहिया का कहना था कि जो मुसलमान गजनी, गोरी और बाबर को हमलावर नहीं मानता और अशोक, तुलसी और कबीर को अपना पुरखा नहीं मानता वह इस देश की आजादी की रखवाली नहीं कर सकता है । वह हिन्दू भी जो रजिया, अकबर और रहीम को अपना पुरखा नहीं समझता है वह

---

1. डॉ0 लोहिया: हिन्दू और मुसलमान: पृष्ठ - 2

इस देश की आजादी का मतलब नहीं समझता और न तो वह आजादी की रखवाली ही कर सकता है । इसीलिए डॉ० लोहिया ने इतिहास से व्याप्त साम्प्रदायिक कटुता को दूर करने के लिए इतिहास के अध्ययन और लेखन की पद्धति में परिवर्तन की विशेष आवश्यकता समझी थी । उन्हीं के शब्दों में "सिल्यूकस विदेशी और कनिष्क देशी, गजनी विदेशी और शेरशाह देशी, हूण विदेशी राणा साँगा देशी, बाबर विदेशी बहादुरशाह देशी, इस तरह से हिन्दुस्तान का इतिहास पढ़ना होगा ।"[1] हिन्दू - मुस्लिम दोनों को सत्यता से परिचित कराने के लिए डॉ० लोहिया चाहते थे कि "हर एक बच्चे को सिखाया जाय, हर एक स्कूल में घर-घर में, क्या हिन्दू क्या मुसलमान बच्ची-बच्चे को कि रजिया, शेरशाह, जायसी वगैरह हम सबके पुरखे हैं, हिन्दू मुसलमान दोनों के - लेकिन, उसके साथ-साथ मैं चाहता हूँ कि हम में से हर एक आदमी, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, यह कहना सीख जाये कि गजनी, गोरी और बाबर लुटेरे थे और हमलावर थे।"[2] केवल तब ही हिन्दू और मुसलमान विदेशी और आक्रामक के प्रति घृणा तथा देशी और रक्षक के प्रति प्रेम रखकर राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बँध सकेंगे ।

डॉ० लोहिया का मानना था कि हिन्दू-मुस्लिम में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाने एवं साम्प्रदायिकता समाप्त करने के लिए धर्मान्धता और धार्मिक कट्टरता

---

1. डॉ० लोहियाः वशिष्ठ और बाल्मीकि, पृष्ठ - 6
2. डॉ० लोहियाः हिन्दू और मुसलमान, पृष्ठ - 3

   डॉ० लोहियाः आजाद हिन्दुस्तान में नये रूझहानः नवहिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1968, पृष्ठ - 5

का भी अन्त करना आवश्यक है । "यही आदमी के दिल और दिमाग को कड़वा बनाते हैं ।"[1] प्रयास इस बात का करना चाहिए कि दूसरे के धर्म के प्रति आदर और समझबूझ पैदा हो । इसके लिए लोहिया का विचार है कि "इन्हें पैदा करने के लिए धर्मों का ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन बेहतरीन तरीका है ।"[2]

हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक दूसरे की धार्मिक भावनाओं का आदर करना चाहिए । फिर भी जैसा कि लोहिया कहते हैं कि "हिन्दू चाहे जितना उदार हो जाये, लेकिन राम - कृष्ण को मोहम्मद से कुछ थोड़ा अच्छा समझेगा ही, और मुसलमान चाहे जितना उदार हो जाये, अपने मोहम्मद को राम और कृष्ण से कुछ अधिक आदर देगा । परन्तु 19-20 से ज्यादा का फर्क न रहे तो दोनों का मन ठीक हो सकता है ।"[3]

डॉ० लोहिया का विचार था कि भेद प्रकट करने वाले ऊपरी चिन्ह जैसे मुसलमानों की दाढ़ी और हिन्दुओं की चोटी-जनेऊ समाप्त होने चाहिए । इसके साथ ही यह भेद भी समाप्त हो कि हिन्दू एक खास तरह की पोशाक पहने और मुसलमान दूसरे तरह की । धार्मिक विश्वासों और उपासना पद्धतियों को छोड़कर रहन-सहन और सामाजिक जीवन में हिन्दू मुसलमान के बीच कोई

---

1. डॉ० लोहिया: भारत विभाजन के अपराधी - भूमिका से
2. डॉ० लोहिया: वही - वही
3. डॉ० लोहिया: हिन्दू और मुसलमान, पृष्ठ - ।

भेद न रहे । ऐसे ही कदम सान्निध्यता और अपनत्व की तरफ ले जा सकते हैं । ये पहले काम हैं, मगर उनका करना भी लगभग असंभव है, जब तक मनः स्थिति में साथ-साथ कोई उपयुक्त परिवर्तन नहीं होता । किसी आदमी का वाह्य दर्शन बड़ी मात्रा में उसकी आन्तरिक स्थिति से जुड़ा रहता है ।"[1] डॉ0 लोहिया ने अन्तर्जातीय और अन्तर धार्मिक विवाहों को राज्य की ओर से प्रोत्साहन दिये जाने पर बल दिया है । इसके संबंध में उनका विचार था कि 'जब तक देश में होने वाला सौ में एक विवाह हिन्दू और मुसलमान के बीच न होगा, तब तक यह समस्या पूरी तौर पर नहीं सुलझेगी ।"[2] लोहिया का विचार था कि देश के सभी नागरिकों के लिए एक ही सिविल कानून होना चाहिए तथा भारत में मुसलमान अपने को उतना ही सुरक्षित अनुभव करे जितना कोई हिन्दू करता है ।

साम्प्रदायिकता का उन्मूलन करने के लिए लोहिया आधुनिक राजनीति में भी परिवर्तन चाहते थे । उन्होंने जीवन के प्रत्येक पहलू में 'हिन्दू बनाम मुसलमान' के स्थान पर 'हिन्दू और मुसलमान' का सिद्धान्त स्थापित किया । वे राजनीति को 'हिन्दू बनाम मुसलमान' के परिवेश में देखना सबसे अधिक हानिप्रद मानते थे । इस संबंध में उनका स्पष्ट विचार था कि 'साफ सी बात

---

1. डॉ0 लोहिया: भारत विभाजन के अपराधी, भूमिका से
2. डॉ0 लोहिया: भारत विभाजन के अपराधी, पृष्ठ - 88

है कि मुसलमान जैसी चीज नहीं रहनी चाहिए राजनीति में । टूट जाना चाहिए । जैसे हिन्दू टूटते हैं, अलग-अलग पार्टियों में, वैसे मुसलमानों को भी टूटना चाहिए।"[1] लोहिया ने बड़े दुःख के साथ यह अनुभव किया कि जहाँ तक मुसलमान से बन सका है, वह हमेशा एक टुकड़ी में चला है । आज भी वह लगभग एक साथ जाता है । इसलिए उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक जूलूस में चलने, जगह-जगह समता का प्रचार करने और सम्पूर्ण देश में एकता की बिजली दौड़ाने के लिए आह्वान किया । उनके विचार में साम्प्रदायिकता का अन्त केवल उस समय हो सकता है 'जब लोग हिन्दू और मुसलमान की हैसियत से इकट्ठा नहीं होंगे, बल्कि अपनी नजर से कि हमको कौन सी राजनीति करनी है ।"[2]

साम्प्रदायिकता समाप्ति के लिए डॉ0 लोहिया चाहते थे कि मुसलमानों के भाषा-भय को भी दूर किया जाय । हिन्दी के नाम से मुसलमानों को सन्देह हो सकता है कि शायद उनकी भाषा उर्दू की उपेक्षा की जा रही है । इसके लिए उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'उर्दू जबान हिन्दुस्तान की जबान है और उसका वही रूतबा होना चाहिए जो हिन्दुस्तान की किसी जबान का ।"[3] डॉ0 लोहिया का कहना था कि यदि फिर से देश एक हुआ तो उसकी भाषा चालू भाषा होगी जो कि "पाली और संस्कृत की औलाद है, लेकिन वह अपभ्रंश वाली, जो

---

1. लोहिया - भाषण, सन् 1963 ई0 अक्टूबर 3, हैदराबाद ।
2. डॉ0 लोहिया भाषण सन् 1963 ई0, अक्टूबर 3, हैदराबाद ।
3. डॉ0 लोहियाः भाषा, पृष्ठ - 6

जनता में टूट-टाट गयी । अपभ्रंश में तो फारसी के भी शब्द आ जाते हैं, अरबी के भी आ जाते हैं ।"

डॉ0 लोहिया ने यदि एक ओर साम्प्रदायिकता समाप्ति की चर्चा की तो दूसरी ओर हिन्द-पाक एका का भी प्रश्न उठाया । भारत विभाजन के वे सशक्त विरोधी थे । वे भारत-विभाजन को जीवन पर्यन्त नकली मानते रहे। उन्होंने स्पष्ट लिखा है "इन दोनों राज्यों में इतने अधिक तादाद में हिन्दू और मुसलमान बसे हुए हैं कि भारत-पाक रिश्ते को विदेश नीति के स्तर पर समझना बिल्कुल असंभव है । यह कहना कि पाकिस्तान में जो कुछ भी घटे पाकिस्तान का अन्दरूनी मामला है और भारत को इस मामले में कोई दखल अन्दाजी नहीं करनी है (और यही बात उतनी ही भारत के साथ लागू है) इन दो भू-खण्डों में स्थित जन समूह के सम्बन्धों को नकारना होगा .... भारत में स्थित अल्पसंख्यकों के प्रति अगर बुरा व्यवहार होता हो तो पाकिस्तान का वह उतना ही मामला बन जाता है जितना पाकिस्तान में स्थित अल्पसंख्यकों के प्रति बुरा व्यवहार भारत का ।"[1] लोहिया के इस कथन की सार्थकता पूर्व पाकिस्तान (अब बाँगलादेश) से आये शरणार्थियों के माध्यम से सिद्ध हो गई है ।

डॉ0 लोहिया ने उपर्युक्त कारणों से हिन्द-पाक महासंघ की कल्पना की थी । उनके मत में महासंघ की स्थापना के बिना कश्मीर अथवा अन्य समस्याओं

---

1. डॉ0 लोहिया: फारेन पॉलिसी - विश्वविद्यालय प्रेस, इलाहाबाद, 1952, पृष्ठ - 107-108

का हल निरर्थक होगा । महासंघ की अनुपस्थिति में कोई न कोई समस्या सदैव रहेगी । इसलिए महासंघ की स्थापना द्वारा ही प्रत्येक समस्या का हल किया जा सकता है और बेहिचक किया जाना चाहिए ।[1] डॉ0 लोहिया ने महासंघ की रूपरेखा भी तैयार की थी । इस योजना के अनुसार महासंघ की पाँच इकाइयाँ होगी:- बंगाल, काश्मीर, पख्तूनिस्तान, पाकिस्तान, हिन्दुस्तान । महासंघ में निवास करने वाले नागरिकों की नागरिकता एक होगी । उसकी विदेश नीति भी एक होगी । यातायात और सैनिक नीति पर भी किसी सीमा तक महासंघ का अधिकार होगा ।[2] हिन्दू और मुसलमान दोनों एक जरूर या तो राष्ट्रपति बनेगा या प्रधानमंत्री यद्यपि सदैव के लिए ऐसा संविधान में लिखा जाना आवश्यक नहीं है ।[3]

महासंघ के निर्माण के कुछ साधन भी डॉ0 लोहिया ने सुझाए थे। उनके मत में दोनों देशों की सरकारें इसमें बाधा उत्पन्न करती हैं । इसलिए दोनों देशों की जनता को अपनी-अपनी सरकारे उलटनी चाहिए । दोनों देशों की सरकारों को यूरोप और अमरीका की महाशक्तियों से समझौते और सहायता भी बन्द करना चाहिए क्योंकि ये शक्तियाँ ही दोनों देशों को संघर्ष के लिए प्रोत्साहित करती हैं ।[4] इस हेतु हिन्दू-मुसलमान को आत्मत्याग के लिए तत्पर

---

1. डॉ0 लोहिया: भारत, चीन और उत्तरी सीमाएँ, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 324
2. डॉ0 लोहिया, वही, पृष्ठ - 324
3. डॉ0 लोहिया: आजाद हिन्दुस्तान में नए रूझान, पृष्ठ - 9
4. डॉ0 लोहिया: समाजवादी चिन्तन, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ - 91

रहना चाहिए । डॉ0 लोहिया द्वारा बताये गये उपर्युक्त साधन तो उचित है किन्तु इन साधनों के लिए भी जब तक ठोस साधन न हों तब तक महासंघ एक कल्पना रहेगा । उन्हें स्वयं भी कभी-कभी इस कल्पना की सार्थकता पर सन्देह होता था, तभी तो वे कहने लगते थे कि कम से कम महासंघ निर्माण पर बहस तो चले, महासंघ अस्थायी होगा या कुछ समय में एक संघ बन जायेगा अथवा समाप्त हो जायगा ।[1]

शिक्षा संबंधी विचारः-

शिक्षा जहाँ एक ओर मनुष्य को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करती है वहीं दूसरी ओर यह पुरानी परम्परा पर भी प्रहार करती है । शिक्षा से जो आकाक्षाँए पैदा हो जाती है, वे जब सन्तुष्ट नहीं होती तो समाज में निराशा का वातावरण बढ़ता है और परिवर्तन की माँग उठती है ।

डॉ0 लोहिया मानते थे कि व्यक्ति की शिक्षा पहले परिवार में तत्पश्चात स्कूल में प्रारम्भ होती है । मनुष्य के जो संस्कार बचपन में पड़ जाते हैं वे स्थायी होते हैं । मनुष्य की शिक्षा की विशेष जगहें स्कूल, परिवार और राजनीतिक दल है । परिवार का उसकी शिक्षा में विशेष महत्व है । व्यक्ति को परिवार, समाज व स्कूल में जितनी अच्छी शिक्षा दी जायेगी व्यक्ति

---

1. डॉ0 लोहियाः देश, विदेश नीतिः कुछ पहलू, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970, पृष्ठ - 13

उतना ही महान बनेगा । वे मानते थे कि अच्छे गुण और शील को उपजाने के लिए स्कूल एक शक्तिशाली माध्यम है, लेकिन तभी जब समाज उसको स्पष्ट उद्‌देश्य दे ।

डॉ0 लोहिया के शिक्षा संबंधी विचारों के साराश को निम्नवत लिखा जा सकता है । प्रथम् उनके अनुसार शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप ऐसा हो जो व्यक्ति, परिवार समाज और राष्ट्र को एक सूत्र में बाँध सके । उनका यह मानना था कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था इस उद्‌देश्य को पूरा नहीं करती है क्योंकि शिक्षा का स्वरूप समाज को बाँटने वाली है ।[1]

द्वितीय, इस सन्दर्भ में डॉ0 लोहिया ने शिक्षा के माध्यम की उपयुक्तता पर भी बल दिया है । शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए । इसी उद्‌देश्य से उन्होंने अंग्रेजी का विरोध किया और इसके स्थान पर बहुमत की भाषा अर्थात् हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार किये जाने की बात कही ।[2]

---

1. डॉ0 लोहिया चाहते थे कि प्राथमिक स्कूल एक समानहों, अध्यापकों का एक तरह का वेतन, बच्चों को पढ़ाने की एक तरह की पुस्तकें, सब बच्चे एक ही तरह के स्कूल में जायें, चाहे वह राष्ट्रपति का बच्चा हो, चाहे भंगी का बच्चा हो, चाहे प्रधानमंत्री का हो, चाहे कोई हो ।" देखिएः डॉ0 लोहिया- समाजवादी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ, 90
   डॉ0 लोहिया के अनुसार "अधिक व्यय वाले विद्यालय समाप्त कर देना चाहिए और प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को स्थानीय परिषदों के अधीन कर देना चाहिये ।"
   विशेष जानकारी के लिए देखिए: डॉ0 लोहिया- "मार्क्स गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 383
   डॉ0 लोहिया- फ्रैगमेन्टस ऑफ ए वर्ल्ड माइन्ड, पृष्ठ - 95
   डॉ0 लोहियाः समाजवादी चिन्तन, पृष्ठ - 96
2. विशेष जानकारी के लिए देखिए डॉ0 लोहियाः भाषा :-

तृतीय, लोहिया शिक्षा को सरकारी तंत्र से मुक्त करना चाहते थे और इसे समाज को सौपना चाहते थे । दूसरे शब्दों में, शिक्षा का संचालन और नियंत्रण समाज का हो इस मत के प्रवर्तक थे ।

चतुर्थ, शिक्षा को वैज्ञानिक एवं तकनीकी बनाने के पक्ष में भी उन्होंने विचार व्यक्त किया ।[1] शिक्षा ऐसी हो जो औद्योगिक विकास कर सके अर्थात् उन्होंने औद्योगिक शिक्षा पर भी बल दिया है। इसका आशय यह है कि लोहियाजी का मन्तव्य शिक्षा को शोध परख बनाना था।

पंचम, संक्षेप में, शिक्षा को समाज से जोड़कर सामाजिक विषमता को दूर करना, तथा समाजवाद के लिए मार्ग प्रशस्त करना डा0 लोहिया के शिक्षा संबंधी विचारों के सार हैं।

यद्यपि लोहिया के उपर्युक्त विचार तर्कसंगत हैं किन्तु दो दृष्टिकोणों से यह आलोचना का विषय बन सकता है। प्रथम यह कि वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था में जहां शिक्षा का निजीकरण हो रहा है, क्या लोहिया के विचार अव्यवहारिक नहीं है।

द्वितीय जहाँ लोहिया ने अँग्रेजी को हटाने की बात कही है वहीं

---

1. देखिए: डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 383
   डॉ0 लोहिया: इण्टरवल डूयरिंग पालिटिक्स - पृष्ठ - 92

उन्होंने अपने कुछ एक महत्वपूर्ण पुस्तकों को अंग्रेजी भाषा में लिखा है ।[1] अतएव उनके सिद्धान्त एवं व्यवहार में कितना सामजस्य है यह एक विवादास्पद विषय है ।

भाषा संबंधी विचारः-

समाजवाद का उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास है जिसकी पूर्णता के लिए सांस्कृतिक और मानसिक विकास अत्यन्त आवश्यक है । मानव को मानसिक और सांस्कृतिक ढंग से विकसित करने के लिए भाषा का सर्वाधिक महत्व है । भाषा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति - व्यक्ति तक पहुँचता है, ज्ञान का आदान-प्रदान होता है और अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता है । मातृ-भाषा और सर्वज्ञात भाषा के प्रयोग से ही व्यक्ति का उत्थान होता है और व्यक्ति के उत्थान से राष्ट्र का उत्थान होता है । डॉ0 लोहिया ने इसीलिए यह कहा है "भाषा सामूहिक व्यक्तित्व का प्रकटीकरण है और केवल अत्याचारी ही ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो आम जनता की समझ से परे है ।"[2] वस्तुतः किसी भी राष्ट्र की मौलिकता का विकास तब तक संभव नहीं, जब तक वह आत्माभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपनी भाषा

---

1. डॉ0 लोहिया द्वारा अंग्रेजी भाषा में लिखित पुस्तक, मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, तथा व्हील ऑफ हिस्ट्री है ।

   इसके अलावे मासिक पत्रिका मैनकाइण्ड के लोहिया मुख्य सम्पादक थे । इस पत्रिका में अंग्रेजी के माध्यम से वह लेख लिखते थे ।

2. डॉ0 लोहियाः भाषा, नवहिन्द प्रकाशन बेगम बाजार, हैदराबाद, 1964, पृष्ठ - 28

का उपयोग न करें । जिस प्रकार श्रेष्ठ साहित्य अपनी भाषा में ही लिखा जा सकता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ चिन्तन और अनुसंधान अपनी भाषा के माध्यम से ही संभव है । दुर्भाग्य का विषय है कि भारत वर्ष में जनता की भाषा में काम काज न होकर एक विदेशी और चन्द लोगों की भाषा अंग्रेजी में होता है ।

डॉ0 लोहिया का मत है कि "माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग से आर्थिक विकास अवरूद्ध होता है और शिक्षा के क्षेत्र में शोध एवं ज्ञानार्जन बहुत कम होता है । प्रशासन की अक्षमता, विषमता और भ्रष्टाचार में भी अंग्रेजी का बहुत कुछ हाथ है ।"[1] मातृ-भाषा को त्याग कर विदेशी भाषा अंग्रेजी का सत्कार राष्ट्रीय स्वाभिमान के विरूद्ध है । लोहिया इसी आधार पर अंग्रेजी की अविलम्ब समाप्ति पर बल देते हैं । यह कहना गलत है कि अंग्रेजी विश्व भर के ज्ञान का दरवाजा है । बल्कि सच तो यह है कि "इसने इल्म का दरवाजा हमारे लिए बन्द कर दिया है" ।[2] अंग्रेजी के कारण हमारे यहाँ भाषा ज्ञान प्रमुख हो गया है और विषय ज्ञान गौण । अपेक्षा इस बात की है कि हम इन दोनों का अन्तर स्पष्ट रूप में समझें और यह अनुभव करें कि हमारे वैज्ञानिक और इंजीनियर भाषा ज्ञान के प्रति अति सर्तकता के कारण विषय-ज्ञान बढ़ाने में सफल नहीं रहे हैं । अभी उनका ध्यान भाषा शुद्धि की ओर अधिक रहता है क्योंकि विदेशी भाषा की अपनी जानकारी के प्रति वे कभी भी आश्वस्त नहीं

---

1. डॉ0 लोहिया: देश-विदेश नीतिः कुछ पहलू, पृष्ठ - 114
2. डॉ0 लोहिया: भाषा, पृष्ठ - 87

रह पाते । परिणाम यह होता है कि उनका विषय-ज्ञान सीमित रह जाता है। वे उसकी गहराइयों में प्रवेश नहीं कर पाते । यही कारण है कि हमारे विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि सभी विषय "अंग्रेजी की सस्ती नकल है । उनका कोई मौलिक गठन नहीं, भारतीय आवश्यकताओं और प्रश्नों को सुलझाने की चेष्टा नहीं ।"[1]

डॉ0 लोहिया के मतानुसार अंग्रेजी के स्थान में हिन्दी या प्रादेशिक भाषा के प्रयोग के आग्रह का केवल यही कारण नहीं है । अंग्रेजी समाप्त करने का सबसे बड़ा कारण इसका सामन्ती होना है । जिस प्रकार हमारे देश में कभी संस्कृत या फारसी सामन्ती भाषा थी, उसी प्रकार वर्तमान संदर्भ में अंग्रेजी वर्ग-स्वार्थ की भाषा बन गयी है । इसका प्रचलन सामान्य जन समुदाय में हीनता की भावना को दृढ़ करना है । करोड़ों सामान्य जन, जो अंग्रेजी नहीं जानते, यह सोचते हैं कि इस भाषा का ज्ञान नहीं होने के कारण वे अशिक्षित और अयोग्य हैं । देश के वे तीस-पैंतीस लाख व्यक्ति जो अंग्रेजी जानते हैं, इसी हीन भावना को उत्पन्न कर पचास करोड़ व्यक्तियों पर शासन करते जा रहे हैं । उनका सबसे प्रबुद्ध भाग, जो राजनेता या राज सेवक है, और इस रूप में जो राष्ट्र के शासनतंत्र को नियंत्रित करता है, अपने प्रभुत्व और ऐश्वर्य के लिए अंग्रेजी का समर्थन करता है । वह जानता है कि अंग्रेजी की अनिवार्यता समाप्त हो

---

1. डॉ0 लोहिया. भाषा, पृष्ठ - 32

जाने पर उसके पूरे कुल की, नेतृत्व और उच्च सरकारी नौकरियो के लिए प्रतिद्वन्द्विता चालीस-पचास करोड़ से होगी ।तब योग्यता हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के आधार पर निर्णीत होगी और उसका विशेषाधिकार समाप्त हो जायेगा ।[1] इसीलिए डॉ0 लोहिया का कहना है कि जब तक विशाल जन समुदाय का एक सीमित भाग एक विदेशी भाषा के द्वारा, कभी हिन्दी के विरोध और कभी राष्ट्रीय अखण्डता के तर्क का उपयोग कर, राष्ट्र का भाग्य-विधाता बना रहेगा, तब तक सरकार से ईमानदारी और योग्यता की अपेक्षा करना गलत है । अंग्रेजी के कारण जन सामान्य के लिए पूरा सरकारी यंत्र अपारदर्शी और अबोधगम्य हो गया है ।

डॉ0 लोहिया की मान्यता है कि अंग्रेजियत और सामन्ती प्रभाव के कारण सामान्य नागरिक के लिए राष्ट्र के कानून और अफसरों की कार्यवाही को समझना कठिन है । इससे अन्याय और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि इससे जनता द्वारा शासन में सहयोग असम्भव हो जाता है । इससे अयोग्यता को प्रश्रय मिलता है क्योंकि एक विशेष समुदाय के लोग और उसके सम्बन्धी राज्य करते हैं और वे स्वभावतः एक दूसरे की गलतियाँ छिपाते हैं। यदि डॉ0 लोहिया अंग्रेजी को सामन्ती भाषा कहते हैं और इसे जनतांत्रिक चेतना के विरूद्ध घोषित करते हैं, तो इसी अभिप्रायः से ।

---

1. डॉ0 लोहिया· भाषा, पृष्ठ - 11

ऐसी विषम स्थिति में निश्चित ही अंग्रेजी दासता की प्रतीक है । सांस्कृतिक एवं मानसिक विकास की प्रतीक मातृ-भाषा की अनुपस्थिति में आर्थिक समृद्धि अर्थहीन ही नहीं, असम्भव भी होती है । क्योंकि सांस्कृतिक और आर्थिक समृद्धि, संस्कृति और रोटी अथवा मन और पेट एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जैसा कि लोहिया ने स्वयं कहा है कि: "आर्थिक और भाषिक प्रश्न अलग नहीं हैं, दोनों सवाल एक दूसरे से जुड़े हुए हैं ।"[1]

जिस दिन अंग्रेजी भाषा समाप्त हो जायेगी, उस दिन वह सामन्त वर्ग भी टूट जायेगा, जो इसके कारण ही देश का शासक बना हुआ है । जिस दिन लोक भाषाओं के माध्यम से सारा कारबार होने लगेगा, उस दिन मजदूरों का नेता मजदूर होगा, न कि अंग्रेजी का जानकार कोई भी व्यक्ति । अभी तो मजदूरों के पेट के सवाल उनकी समझ में आने वाली भाषा में नहीं, अंग्रेजी में लिखे जाते हैं और उनके नेताओं को उनके स्वार्थों की सौदेबाजी की सुविधा मिल जाती है । डॉ0 लोहिया की धारणा है हि "अंग्रेजी के कारण मालिक - कम्पनी, मजदूर नेता तथा सरकार का एक त्रिकोण चल रहा है ।"[2] वृहत्तर संदर्भ में यही स्थिति पूरे राजनैतिक नेतृत्व की है । इसीलिए डॉ0 लोहिया यह कहते हैं कि अंग्रेजी के द्वारा समाजवादी राजनीति चल ही नहीं सकती ।[3] तो उनके

---

1. डॉ0 लोहिया: भाषा, पृष्ठ - 29
2. डॉ0 लोहिया: भाषा, पृष्ठ - 29
3. डॉ0 लोहिया: भाषा, पृष्ठ - 3

"अंग्रेजी हटाओ" आन्दोलन को न तो उत्तरदायित्वहीन माना जाना चाहिए और न प्रतिगामी ।

डॉ0 लोहिया ज्ञान-विज्ञान के विकास या अन्य भाषिक साहित्य से परिचय के साधन के रूप में अंग्रेजी के अध्ययन का विरोध नहीं करते, हालांकि यह उनके विरूद्ध बहुप्रचारित आरोपों में से एक है । लेकिन वे यह नहीं स्वीकार करते कि विश्व भर का सारा ज्ञान इसी भाषा में है और कि यह विश्व भाषा है । "विश्व भाषा तो कोई है ही नहीं, न कभी हुई, न कभी हो सकती है ।"[1]

डॉ0 लोहिया के मतानुसार भारत अंग्रेजी भाषा के कारण गणित, इन्जीनियरिंग विज्ञान, नक्षत्र-ज्ञान आदि को सीमित कर रहा है, जबकि चीन, जापान और रूस आदि देश अपनी निजी भाषाओं के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं । भाषा भेद के कारण देश की राजनीति वर्ग राजनीति का गन्दा रूप धारण कर लेती है, जिसको समाप्त करना समाजवादियों का प्रथम उद्देश्य है । लोहिया अंग्रेजी को समाप्त करना चाहते थे किन्तु उसके स्थान पर हिन्दी ही प्रतिष्ठित हो, ऐसा उनका आग्रह न था । वे बहुधा कहा करते थे कि भाषा की समस्या को "हिन्दी बनाम अंग्रेजी" के संदर्भ में नहीं अपितु "देशी भाषाएँ बनाम अंग्रेजी" के सन्दर्भ में देखना चाहिए ।

---

1. डॉ0 लोहिया: भाषा, पृष्ठ - 178

डॉ0 लोहिया का कहना था कि समस्या हिन्दी की प्रतिष्ठा की नहीं, अंग्रेजी समाप्ति की है । अंग्रेजी का द्वन्द केवल हिन्दी भाषा से ही नहीं, अपितु बंगाली, मराठी, तेलगू, उर्दू आदि सभी देशी भाषाओं से है । अंग्रेजी के कारण केवल हिन्दी का ही नहीं, अपितु उपर्युक्त सभी देशी भाषाओं का विकास अवरूद्ध होता है ।

डॉ0 लोहिया ने अपने भाषणों और लेखों में बार-बार इस बात का उल्लेख किया है कि हिन्दी, तेलगू, उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगाली आदि देशी भाषाओं को गरीब और असमृद्ध भाषा कहना उचित नहीं । अंग्रेजी में लगभग दो या ढाई लाख शब्द हैं जबकि हिन्दी और दूसरी भाषाओं में 6-7 लाख शब्द हैं । यद्यपि ये 6 लाख शब्द अपेक्षाकृत मँजे हुए नहीं हैं, तथापि डॉ0 लोहिया की दृष्टि में, इन शब्दों का दैनिक प्रयोग प्रत्येक कार्य में तुरन्त आरम्भ होना चाहिए । क्योंकि "शब्द बर्तनों की तरह प्रयोग के द्वारा ही चमकीले और आकर्षक बनते हैं अन्यथा उनमें जंक लग जाती है । कोई भी भाषा तब तक समृद्ध नहीं हो सकती, जब तक उसे प्रयोग में नहीं लाया जाय ।"[1] यह कार्य शब्दों के वास्तविक व्यवहार द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है । भाषा, वैज्ञानिक, जज, वकील, इंजीनियर, अध्यापक के व्यवहार द्वारा ही बनती है । प्रयोगकर्त्ता के अभाव में प्रयुक्त अर्थों की कल्पना निरर्थक है । इसलिए उनका मत था कि

---

1. डॉ0 लोहिया: भाषा: पृष्ठ, 5, 10, 142, 148

यदि हिन्दुस्तानी भाषाओं का प्रत्येक क्षेत्र में अविलम्ब प्रयोग प्रारम्भ नहीं किया जाता, तो अंग्रेजी अधिक समृद्ध तथा विकसित होगी और हिन्दुस्तानी भाषाएँ गर्त में गिरती चली जायेगी ।

डॉ0 लोहिया का मत था कि अंग्रेजी की समाप्ति अवधि और शर्तें बाँधने से नहीं हो सकती । अंग्रेजी शनैः-शनैः नहीं, अपितु, तत्काल एक झटके में ही इस देश के सार्वजनिक जीवन से बहिष्कृत की जा सकती है । अंग्रेजी भाषा का बहिष्कार देशी भाषाओं की समृद्धता तक रोकना अस्वाभाविक एवं यथार्थता से परे है । अंग्रेजी को हटाये जाने के लिए समय की सीमा भी प्रभावी न होगी। संविधान में सन् 1965 ई0 तक अंग्रेजी हटाये जाने की सीमा डॉ0 लोहिया की भविष्यवाणी के अनुसार गलत निकली ।

डॉ0 लोहिया अंग्रेजी समाप्ति के समर्थक थे । उन्होंने सामान्य और विशेष व्यक्तियों के बालकों को अंग्रेजी पढ़ाये जाने का निषेध किया था । वे चाहते थे कि सभी प्राथमिक विद्यालयों से अंग्रेजी अनिवार्यतः समाप्त कर दी जाय और यह प्राथमिक शिक्षा पूर्णतः नगर पालिकाओं और जिला बोर्डों के अधीन कर दी जाय । जिससे विदेशी ढंग के अपव्ययी विद्यालय बन्द हों ।[1] इस विचार के पीछे डॉ0 लोहिया का तर्क था कि यदि अंग्रेजी बड़े लोगों के बालकों के विद्यालयों में चलती रहती है तो साधारण व्यक्तियों के बच्चे बड़े लोगों के बच्चों

---

1. डॉ0 लोहिया: समाजवादी चिन्तन, समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ - 96

के समक्ष प्रतियोगिता में नहीं ठहर पाते और "जनता के दिमाग पर हथौड़े की तरह असर पड़ता है कि बड़े लोग तो अपने बच्चों को अंग्रेजी पढ़ा लेते हैं और हमारे बच्चे नहीं पढ़ पाते हैं ।"[1]

उपर्युक्त कारणों से डॉ0 लोहिया ने विद्यार्थियों और विशेष रूप से असफल विद्यार्थियों, उनके पालकों और भारतीय जन मानस को सभाओं, जुलूसों तथा सविनय अवज्ञा द्वारा अंग्रेजी का बहिष्कार करने के लिए आह्वान किया।[2] इस हेतु उन्होंने स्वयं सेवकों की समितियों के गठन पर बल दिया । उनके मत में, इन समितियों का कार्य स्थान-स्थान पर अंग्रेजी के नाम-पटों को मिटाकर लोक भाषा के प्रचलन का एक मानसिक वातावरण निर्मित करना है । उनका कहना था कि अंग्रेजी की लिखावट का जवाब उसको मिटावट से देना चाहिए। अंग्रेजी हटाने और देशी भाषाओं की प्रतिष्ठा के लिए अंग्रेजी दैनिक पत्रों का पढ़ना बन्द होना चाहिए क्योंकि ये अंग्रेजी पत्र, हिन्दी-पत्रों को ग्रसित किए हुए हैं । इस ध्वंसात्मक पहलू के अतिरिक्त अपनी भाषाओं के उत्थान के लिए रचनात्मक कार्य कर भाषा के संकुचित क्षेत्र को व्यापक बनाना चाहिए क्योंकि अपनी भाषाओं की कमजोरियाँ भी अंग्रेजी हटाने के मार्ग में बाधक हैं ।

---

1. डॉ0 लोहिया: समलक्ष्य, समबोध समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969, पृष्ठ - 20
2. डॉ0 लोहिया: खोज, वर्णमाला, विषमता, एकता, समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1960, पृष्ठ - 17

डॉ0 लोहिया भाषा-समस्या के समाधान के रूप में निम्नलिखित विकल्प प्रस्तावित करते हैं ।

एक विकल्प बहुभाषी केन्द्र था । इस विकल्प के अन्तर्गत केन्द्र के सार्वजनिक कार्यों में सभी देशी भाषाओं का प्रयोग होगा ।

द्वितीय विकल्प के अनुसार अहिन्दी भाषियों की सुरक्षा के साथ केन्द्र में हिन्दी भाषा का प्रयोग होगा । अहिन्दी भाषियों को हिन्दी सीखने के लिए दस वर्ष तक नौकरी की सुरक्षा रहेगी और हिन्दी भाषियों को दस वर्ष तक सेना के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की नौकरी न मिलेगी । किन्तु अहिन्दी भाषियों को हिन्दी का अध्ययन अच्छी तरह करना होगा और हिन्दी में ही परीक्षा देनी होगी ।

तृतीय विकल्प में दो भाषी केन्द्र होगा, जिसमें मध्य देश के लिए हिन्दी और तट देश के लिए अंग्रेजी की व्यवस्था होगी ।[1]

चतुर्थ विकल्प में हिन्दी का केन्द्र में कोई स्थान न होगा बशर्ते कि अहिन्दी भाषी क्षेत्र तेलगू, बंगला आदि भाषाओं में से एक को केन्द्र की भाषा बनाने पर सहमत हों ।[2]

---

1. डॉ0 लोहिया: समलक्ष्य, समबोध, पृष्ठ - 18

2. डॉ0 लोहिया: हिन्दू और मुसलमान, पृष्ठ - 7

एक अन्य विकल्प के अनुसार केन्द्र की भाषा हिन्दी हो, किन्तु जनसंख्या के अनुपात से प्रत्येक राज्य को हमेशा के लिए नौकरियों की संख्या बाँध दी जाए । इस व्यवस्था का डॉ0 लोहिया उसी समय तक चाहते थे जबकि अहिन्दी भाषी दस वर्ष की नौकरी-सुरक्षा शर्त अस्वीकार करें । यद्यपि डॉ0 लोहिया भली भाँति जानते थे कि इस नीति के द्वारा जाति, क्षेत्रीयता आदि के विनाशकारी तत्व फैल सकते हैं, तथापि भाषा-संघर्ष की स्थिति में अंग्रेजी बहिर्गमन के लिए उन्हें यह नीति स्वीकार थी ।[1]

यद्यपि उपर्युक्त सभी विकल्प अंग्रेजी हटाने के लिए डॉ0 लोहिया को स्वीकार थे, तथापि उनकी भाषा संबंधी उचित और सही नीति यह थी कि केन्द्रीय सरकार की भाषा हिन्दी हो । हिन्दी की प्रतिष्ठा के बाद ठीक दस वर्ष तक केन्द्रीय शासन की "गजटेड सेवाएँ" अहिन्दी भाषियों के लिए सुरक्षित हों । केन्द्र का राज्यों के साथ व्यवहार हिन्दी में हो और अहिन्दी भाषी हिन्दी न जान लेने तक केन्द्र के साथ अपनी भाषा में व्यवहार करें । स्नातक कक्षाओं तक का अध्ययन अपनी-अपनी प्रादेशिक भाषाओं मं हो और स्नातकोत्तर अध्ययन हिन्दी में हो । मण्डल जिलों के न्यायालय अपनी-अपनी मातृ-भाषा में न्यायिक कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र हों, किन्तु उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों में न्यायिक कार्यवाही हिन्दी भाषा में हो ।

---

1. डॉ0 लोहिया: निज और सार्वजनिक क्षेत्र, पृष्ठ - 26-27

डॉ० लोहिया का मत था कि यदि उपर्युक्त सही भाषा नीति को कोई राज्य स्वीकार नहीं करता तो उसे अपनी मातृ-भाषा में कार्य करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए । लोहिया को विश्वास था कि अपनी-अपनी मातृ-भाषाओं में कार्य करने की अस्थायी, हठधर्मी, अन्ततोगत्वा हिन्दी के प्रति प्रेम में परिवर्तित होगी। इसलिए उनकी सलाह थी कि राष्ट्रीय हित की दृष्टि से भाषा-आन्दोलन का उद्देश्य "अंग्रेजी हटाना" होना चाहिए, न कि हिन्दी प्रतिष्ठित करना ।[1] उनका पूर्ण विश्वास था कि उपर्युक्त नीति के द्वारा अन्त में हिन्दी ही भारत की सार्वजनिक प्रयोग की भाषा होगी ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक विचारों के आदान-प्रदान का एक मात्र साधन सांस्कृतिक भाषा है । सांस्कृतिक भाषा में देश की भावात्मक एकता निवास करती है और भावात्मक एकता स्थापित होने पर ही समाजवादी विचारधारा पल्लवित, पुष्पित और फलित हो सकती है । लगभग 16 लोक भाषाएँ बोले जाने वाले इस देश में हिन्दी ही इस कार्य को कर सकने में समर्थ है । डॉ० लोहिया ने उक्त तथ्य को समझा और उन्होंने ऐसा विचार किया कि जब तक भारत की एक सर्व सम्मत भाषा नहीं होगी तब तक उनकी समाजवादी विचारधारा भारतीय जीवन के सन्दर्भ में निष्प्रयोजनीय है । यह भाषा हिन्दी ही हो सकती है ।

संस्कृति संबंधी विचारः-

भारतीय जनता की यह विशेषता रही है कि उसका प्रिय राजनेता वही होता रहा है जो राजनीति और संस्कृति को परस्पर समन्वित ढंग से जिये और दोनों के युगमत् सम्मिलन से ऐसे जीवन का आदर्श उपस्थित करें जिसमें राजनीति का दंश संस्कृति के मधु में तिरोहित हो जाय । नेहरू और गाँधी के व्यक्तित्व में इसी प्रकार का समन्वय था । गाँधी ऐसे राजनेता थे जिनके व्यक्तित्व में राजनीति और भारत की आध्यात्मिक संस्कृति का समन्वय था । नेहरू अपने व्यक्तित्व में राजनीति के साथ मानवतावादी संस्कृति को समेटे थे । लोहिया के व्यक्तित्व में राजनीति के साथ आधुनिक संस्कृति का समावेश था ।

डॉ0 लोहिया ने संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर बहुत सुगठित और विस्तृत विचार नहीं किया है इन पर उन्होंने अपने अनेक भाषणों में यत्र-तत्र ऐसे बहुत विचार दिए हैं जो उनके सांस्कृतिक मानस का संकेत देते हैं लोहिया ने संस्कृति के नाम पर भारत में जिस वातावरण को देखा और भोगा, उसे उन्होंने एक शब्द में नाम दिया "कीचड़" । यह "कीचड़" हजारों वर्षों की सड़ी हुई उस परम्परा ने पैदा किया है जिसके सभी जीवन्त तत्व या तो नष्ट हो गए हैं या भुला दिये गए हैं । आज की स्थिति नितान्त दारूण और असह है । सारा देश, जहालत, गरीबी, स्वार्थपरता में गर्क है । लोहिया के शब्दों में "मूल्यों का सारा निष्कर्ष ही गड़बड़ा दिया गया है । ऊँची जातियाँ सुसंस्कृत पर कपटी हैं, छोटी जातियाँ थमी हुई और बेजान हैं । देश में जिसे विद्वता के नाम से पुकारा जाता है वह ज्ञान के सार की अपेक्षा सिर्फ बोली और व्याकरण की एक

शैली है । शारीरिक काम करना भीख माँगने से ज्यादा लज्जास्पद समझा जाता है । साफ सीधी बात और बहादुरी के गुणों के बजाय चालबाजी, सामने जो हुकुम और पीठ पीछे अवहेलना राज्य के सफल व्यक्तियों की निशानी हो जाती है ।"[1] "धर्म, राजनीति, व्यापार और प्रचार सभी मिलकर उस कीचड़ को संजोकर रखने की साजिश कर रहे हैं, जिसे संस्कृति के नाम से पुकारा जाता है ।"[2]

लोहिया का मुख्य उद्देश्य इस "साजिश" का पर्दाफाश करना था। लोहिया न तो धर्म के विरोधी थे, न परम्परा के । वे सिर्फ इन तत्वों के नाम पर "कीचड़" की अभ्यर्थना करने को तैयार नहीं थे । उन्हें भारतीय परम्परा से बेहद प्रेम था । वे हिन्दुस्तान के "पुराने पौरूष" के प्रशंसक थे, इसीलिए वे पूर्ण आधुनिकता के आग्रही थे, क्योंकि वे जानते थे कि बिना आधुनिक हुए "पुराना पौरूष" लौटाया नहीं जा सकता । लोहिया कहते हैं "हिन्दुस्तान को अपना पुराना पौरूष प्राप्त करना होगा, यानी दूसरे शब्दों में यह कहना हुआ कि उसे आधुनिक बनना होगा ।"[3]

हिन्दुस्तान की इस सांस्कृतिक जकड़बन्दी से मुक्ति दिलाने के उनके अभियान के दो मोर्चे हैं, शूद्र और नारी । इसी को वे प्रतीक रूप में "सीता शंबूक"

---

1. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 85
2. डॉ0 लोहिया: वही, पृष्ठ - 8
3. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 6

धुरी भी कहते हैं । शूद्र हमारी सामाजिक स्थितिका बैरोमीटर है और नारी सम्पूर्ण अन्तवैयक्तिक सम्बन्धों का केन्द्र।शूद्र की मुक्ति जाति प्रथा के ध्वंस में ही निहित है । लोहिया ने जाति प्रथा पर तीव्र प्रहार ही नही किया वरन् एक संगठित बौद्धिक मोर्चे का निर्माण भी किया । उनकी पुस्तक जाति प्रथा उनके इन कार्यों का थोड़ा बहुत संकेत देती है । इस अभियान में उन्हें क्या कुछ सहना और भोगना पड़ा, यह उन्हीं के शब्दों में संकेतित है - "मुझे पूरा यकीन है कि मैंने जो कुछ लिखा है उसका और भी भयंकर बदला चुकाया जायेगा, चाहे वह लाजिमी तौर पर प्रत्यक्ष और तत्कालीन भले ही न हो । पर जब जवान मर्द और औरत अपनी ईमानदारी के लिए बदनामी झेलते हैं तो उन्हें याद रखना चाहिए कि पानी फिर से निर्बन्ध बह सके इसलिए कीचड़ साफ करने की उन्हें कीमत चुकानी पड़ती है ।"[1] इस पूर्ण आश्वस्ति के साथ लोहिया का निष्कर्ष सामने आता है - "भारत की आत्मा के इस पतन के लिए मुझे यकीन है जाति और औरत के दोनों कटघरे मुख्यतः जिम्मेदार है । इन कटघरों में इतनी शक्ति है कि साहसिकता और आनन्द की समूची क्षमता को ये खत्म कर देते हैं ।"[2]

इन दोनों ही समस्याओं पर उन्होंने अनेक दृष्टिकोणों से सोचा, विचार किया पर इस दिशा में लिखे उनके दो निबंध "वशिष्ठ और बाल्मीकि"[3] तथा

---

1. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 8
2. डॉ0 लोहिया: वही, पृष्ठ - 1
3. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 63

द्रोपदी और सावित्री"[1] अपने ढंग के अनूठे निबंध हैं । पहला लेख उन्होंने दिसम्बर 1957 में जिला जेल लखनऊ से उत्तर प्रदेश के जेल मंत्री के नाम भेजा । "मातृहन्ता परशुराम से राष्ट्रहन्ता नेहरू तक कट्टर न्याय की वशिष्ठी परम्परा है । विश्वामित्र से विश्वेश्वरैया तक उदारता की बाल्मीकि परम्परा है ।" यह वशिष्ठी परम्परा गिरोह स्वार्थ और कट्टरता पर कायम है, यह स्त्री और शूद्र के शोषण और शिरच्छेदन पर आधारित है । "परम्परा, निजी स्वार्थ और गिरोह-स्वार्थ से लथपथ सना मन वशिष्ठी ब्राह्मण का होता है । वह परम्परा के लिए मरना-मारना जानता है । गिरोह स्वार्थ के लिए सब कुछ टल सकता है ।"[2]

लोहिया भारतीय राजनीति की सड़ाँध और सांस्कृतिक पतन की मुर्दनी से तिलमिला कर कहते हैं "मेरा निश्चित मत है कि अब वही दल देश को सबल, सुखी और सच्चा बना सकेगा जिसमें औरत, शूद्र, हरिजन और मुसलमान का आधिक्य हो । सीता और शंबूक की धुरी को थोड़ा और बढ़ाना होगा ।"[3]

लोहिया के इस निबन्ध में आक्रोश का स्वर ज्यादा तीव्र है, इस कारण कहीं-कहीं भावुक आस्फालन भी दिखाई पड़ता है पर इससे लोहिया के

---

1. डॉ0 लोहिया द्वारा दिये गये समाजवादी युवजन सभा शिक्षण शिविर भाषण जून 22, 1962 से जाति प्रथा, पृष्ठ - 159
2. डॉ0 लोहियाः जाति-प्रथा, पृष्ठ - 67
3. डॉ0 लोहिया द्वारा जेल मंत्री उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ को लिखे पत्र से "वशिष्ठ और बाल्मीकि" से उद्धृत ।

मन के उस मन्थन और पीड़ा का पूरा बोध तो हो ही जाता है जो इन दो समस्याओं के साथ पूरी तरह तादात्म्य स्थापित कर चुका था । उनके मन में देश की तीन चौथाई जन संख्या के प्रति, जो शूद्र और नारी की सम्मिलित संख्या है, कितनी अगाध ममता और सहानुभूति थी । इसीलिए वह कहते हैं "जब तक शूद्रों, हरिजनों और औरतों की सोई हुई आत्मा का जगना देखकर उसी तरह खुशी न होगी जिस तरह किसान को बीज का अंकुर फूटते हुए देखकर होती है, और उसी तरह जतन तथा मेहनत से उसे फूलने-फलने और बढ़ाने की कोशिश न होगी तब तक हिन्दुस्तान में कोई भी वाद् किसी तरह की नयी जान, लाई न जा सकेगी ।"[1]

डॉ0 लोहिया का कहना था कि भारतीय नारी परम्परा के रेशमी बन्धन में इस तरह जकड़ी है कि उसे बँधे रहने और निर्बंध होने, दोनों ही अवस्थाओं में तकलीफ होती है और जब तक नारी अपना आदर्श, उद्देश्य और तरीका स्वयं न निश्चित करें समस्या का समाधान अधूरा ही रहेगा । लोहिया स्त्रियों के प्रति की गई अभद्रता और अत्याचार के सख्त विरोधी थे । वे सखा-सखी सम्बन्ध के हिमायती थे[2] किन्तु वे पुरुष के भीतर उस सामर्थ्य को भी आवश्यक मानते थे जो हमेशा नारी की प्रतिष्ठा की रक्षा कर सके । लोहिया के शब्दों में "मैं समझता हूँ कि नारी अगर कहीं नर के बराबर हुई है तो सिर्फ ब्रज में और

---

1. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 11

2. देखिए: ओंकार शरद: लोहिया के विचार, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद 1969, पृष्ठ - 32।

कान्हा के पास । शायद इसीलिए आज भी हिन्दुस्तान की औरतें वृन्दावन में जमुना के किनारे एक पेड़ में रूमाल जितनी चूनड़ी बाँधने का अभिनय करती हैं । कौन औरत नहीं चाहेगी कन्हैया से अपनी चुनड़ी हरवाना क्योंकि कौन औरत नहीं जानती कि दुष्ट जनों के द्वारा चीर-हरण के समय कृष्ण ही उनकी चुनड़ी अनन्त करेगा ।"[1]

इस सम्बन्ध की महत्ता, उसका स्वारस्य किसी भी संस्कृति को गत्वर और जीवन्त बनाए रखने के लिए अनिवार्य है । भारतीय संस्कृति की सड़ाँध और निष्प्राणता का बहुत बड़ा कारण है उसमें नारी शक्ति का असहयोग जो सामाजिक बन्धनों और अपनी व्यक्तिगत विवशता के कारण सांस्कृतिक विकास की अपनी भूमिका से अलग रह जाती है ।

लोहिया मानते हैं कि हमारी संस्कृति द्विश्रृंखलात्मक है । एक श्रृंखला है इतिहास की, अभिजात विचारधारा की और दूसरी श्रृंखला है लोक जीवन की, लोकतांत्रिक धारणाओं की । इतिहास की घटनाओं की एक लम्बी जंजीर होती है और उसको लेकर कोई सभ्यता और संस्कृति बना करती है । उनका दिमाग पर असर रहता है । लेकिन इससे अलग एक और जंजीर होती है, वह किस्से कहानियाँ वाली हितोपदेश और पंचतंत्र वाली ।[2] इसी बात को

---

1. डॉ0 लोहिया: कृष्ण, समता विद्यालय, हैदराबाद, 1979, पृष्ठ - 16
2. डॉ0 लोहिया: मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1962, पृष्ठ - 3

एक दूसरे निबन्ध में और भी अधिक स्पष्ट करते हुए लोहिया ने लिखा "इस समय संस्कृति के नाम पर जो चीज चलती है वास्तव में वह संस्कृति नहीं है। भाषा, भोजन, भवन और भूषा में भारत में 2000 सालों से सामन्ती और लोक संस्कृति रही है, सामन्ती और लोक का यह अन्तर अपनी संस्कृति में इतना गहरा है कि साँप के विष की तरह फैल रहा है । अथवा देश अन्य देशों के मुकाबले में इतना कमजोर क्यों है ? इसका कारण है कि फर्क पैदा हो गया है ।"[1]

लोक संस्कृति के समर्थन के पीछे शूद्र और नारी वाली समस्या को निरन्तर ध्यान में रखा गया है क्योंकि आज की भारतीय लोक संस्कृति तथाकथित निचली कही जाने वाली जातियों और औरतों के द्वारा ही पालित-पोषित हो रही है । उच्च वर्ग के लोग सामन्ती संस्कृति के भ्रष्ट रूप को विदेशी संस्कृति के फैशन मूलक अनुकरणात्मक तत्वों से मिला-जुला कर खोल की तरह ओढ़े हुए हैं । यह निर्जीव संस्कृति नाना प्रकार के माध्यमों से बेहतर संस्कृति के रूप में प्रचारित - प्रसारित होती रही है और पढ़ा लिखा वर्ग इसी के इर्द-गिर्द अपने घोसलें बनाता रहता है । लोहिया को इस संस्कृति के प्रति द्वेष नहीं है, पर वे उसके आक्रमण से लोक संस्कृति को पिसी जाती देखना भी नहीं चाहते । वे दोनों के जीवन्त तत्वों को मिलाकर एक स्वस्थ और निरन्तर विकासमान आधुनिक संस्कृति के निर्माण का स्वप्न देखते थे ।

---

1. एक संस्कृति, 26 मई 1958, ब्रह्मपुर का भाषण

लोहिया जिस लोक संस्कृति की बात करते हैं वह लोक तत्वों के मोह और आशक्ति पर आधारित नहीं है । उनका जोर अतीत की पुरा कथाओं और लोक संस्कृति के तत्वों के सही विश्लेषण पर था ताकि हम भारतीय मानस को ठीक-ठीक समझ सके । लोहिया कहते हैं "किसी भी समय सारी दुनिया अपने अतीत का ही फल होती है । हिन्दुस्तान तो मुख्य रूप से अपने अतीत का ही फल है किसी अन्य देश का वर्तमान जीवन अपने अतीत के सिद्धान्तों-स्मृतियों और पुराकथाओं से उतना ओत-प्रोत नहीं है जितना हिन्दुस्तान का । समकालीन बातों से ज्यादा, लोग अतीत की इन बातों को लेकर हँसते, रोते और झगड़ते हैं, फिर भी कोई सही अध्ययन नहीं होता ।"[1] किन्तु उसी के साथ-साथ वे निरन्तर भविष्योन्मुखीन रहने की चेतावनी भी देते हैं । "दक्षिण बिहार की तरफ देखो, उत्तर बिहार की तरह क्या देख रहे हो । पाटिलपुत्र और नालन्दा-वह जो होना था हो गया । उन्हें कभी फुरसत के मौके पर याद कर लिया करो । इतिहास के बोझ को हल्का करो, भूगोल को ज्यादा देखो ।"[2]

डॉ0 लोहिया के मन में आदिम जातियों, भूले-बिसरे कबीलों और आज की शूद्र कही जाने वाली अनेक जातियों के पुराने लोक सांस्कृतिक इतिहास के प्रति बड़ी जिज्ञासा थी । इसी से प्रेरित होकर कभी वे शबरी,[3] मेहर या

---

1. लोहियाः खोज, वर्णमाला, विषमता और एकता, पृष्ठ - 6
2. लोहिया उत्तर प्रदेश और बिहार के दौरे के कुछ अनुभव, पृष्ठ - 21
3. देखिएः ओंकार शरदः लोहिया के विचार, पृष्ठ - 275

मोहर,[1] बंघेरों, कड़प्पा[2] आदि शब्दों का इतिहास ढूँढ़ते हैं । कभी चित्तौड़ चित्तूर, मथुरा-मदुरा, देहली-कड़प्पा के बीच गोटी बिठाते हैं । क्योंकि उनका विश्वास था कि "हिन्दुस्तान का मामला इतना एक है कि मैं तो कई दफा दंग हो जाता हूँ कि यह क्या चीज है । जैसे कि कोई आदमी सोया हुआ है, सपना देख रहा हो, पात्र बदल रहे हों, जगहें बदल रही हों और चीजें वहीं-की-वही हो रही हो ।"[3] इसमें सन्देह नहीं कि अनेक स्थलों पर अनेक बार लोहिया का प्रयत्न हास्यास्पद जैसा लगता है, खास तौर से जब वे भारतीय वर्णमालाओं के बीच एकता और समता का निरूपण करते हुए अजीबोगरीब तर्क देते हैं, पर इन सारी बातों के पीछे भारतीय संस्कृति की एकता और लोकात्मक गरिमा के प्रति लोहिया की अनन्य जिज्ञासा और श्रद्धा का पता तो चलता ही है ।

प्राचीन भारतीय प्रतीक पुरुषों में लोहिया को कृष्ण सबसे अधिक आकृष्ट करते हैं । क्योंकि कृष्ण के व्यक्तित्व में उन्हें अपनी मन की उन्मुक्तता को एक आधार जैसा मिल जाता है । कृष्ण, राम या शिव या कोई दूसरा व्यक्ति, उनके सामने सिर्फ इतिहास का पात्र बनकर नहीं, किसी न किसी विचारधारा का प्रतीक बनकर आता है । वे कहते हैं "आखिर राम और कृष्ण हैं क्या ?

---

1. ओंकार शरद: लोहिया के विचार - भारतीय जन की एकता, पृष्ठ- 276
2. वही - पृष्ठ - 277
3. डॉ0 लोहिया: कृष्णा और गोदावरी के इलाके में, समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ - 12

आदमी के दिमाग के सगुण विचार ही तो जो कुछ चौड़ा - दिल बनाते हैं ।"[1]

लोहिया को कृष्ण के भीतर बहुत सी चीजें दीखती हैं । जैसे उनका प्रेम यानी "कृष्ण तत्व महान् प्रेम का नाम है जो मन को प्रदत्त सीमाओं से उलाँघता-उलाँघता सबसे मिला देता है, किसी को अलग नहीं रखता ।"[2] वास लेने वाले देवताओं से खाने वाले देवताओं तक की यात्रा ही कृष्ण लीला है ।[3] द्वापर का कृष्ण एक ऐसा देव है, जो निरन्तर मनुष्य बनने के लिए प्रयत्न करता रहा ।[4] जरासंघ भौतिकवादी एक रूप एकत्व का इच्छुक था । कृष्ण आदर्शवादी बहुरूप एकत्व का निर्माता था ।" लोहिया को आधुनिक भारत में आदर्शवाद और भौतिकवाद के बहुत रूप एकत्व की आवश्यकता अनुभव हुई थी जैसा कि वह स्वयं कहते हैं "पर अभी तक तो कृष्ण का प्रयास ही सर्वाधिक माननीय मालूम होता है ।[5]

ये सारी बातें मिलजुल कर कृष्ण को एक ऐसे प्रतीक-पुरुष की भूमिका में रखती हैं कि सहज ही वे लोहिया के आकर्षण केन्द्र हो जाते हैं, किन्तु कृष्ण की जो खूबी लोहिया को बहुत भाती है वह है उनकी "रसमय

---

1. देखिए: उत्तर प्रदेश और बिहार के दौरे के कुछ अनुभव, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, अगस्त 1962, पृष्ठ - 2
2. डॉ0 लोहिया: कृष्ण, पृष्ठ - 2
3. डॉ0 लोहिया: कृष्ण, पृष्ठ - 3
4. डॉ0 लोहिया: कृष्ण, पृष्ठ - 4
5. डॉ0 लोहिया: कृष्ण, पृष्ठ - 3

कर्त्तव्य की प्रवृत्ति ।" आज का हमारा जीवन सड़ इसलिए रहा है कि कर्त्तव्य और रस अलग-अलग हो गये हैं । कर्त्तव्य नीरस भार हो गया है और रस निराधार बहाव वृत्ति । लोहिया इन दोनों का समन्वय चाहते थे । "क्या इस भूमि पर कभी रसमय कर्त्तव्य का उदय होगा ? यही उनकी पुकार है । वे शोध की बात करेंगे तो रसमयता याद आयेगी । लोहिया कहते हैं "दिमाग और शरीर की रसमयता से ज्ञान के नये क्षेत्रों को उपयोग और सामान्य स्वास्थ्य में सुधार से राष्ट्र को लाभ पहुँचता है ।"[1]

संस्कृति की भी अपनी धारा होती है, क्या प्रत्येक धारा की भी अपनी कोई संस्कृति होती है ? लोहिया कहते हैं कि हर सांस्कृतिक समूह की, क्षेत्र की, अपनी एक नदी होती है । जहाँ राम, कृष्ण, शिव आदि पुरातात्विक प्रतीक हैं, वहीं नदी प्राकृतिक और भौगोलिक प्रतीक है । "हर एक कौम की कोई न कोई अपनी एक नदी है । इसमें शक नहीं कि सभी हिन्दुस्तानियों की अपनी नदी गंगा है .... इस हिसाब से मैंने पूछा कि तुम तेलगू लोगों के मन में कौन-सी नदी सबसे ज्यादा हिलोरें पैदा करती हैं, सब चीजों में राजनीति में, इतिहास में, धर्म में, लड़के - लड़की के सम्बन्ध में, क्योंकि आप यह न समझ लेना कि नदियाँ उनसे कोई ताल्लुक नहीं रखती ।"[2]

---

1. डॉ0 लोहिया: भारतीय विश्वविद्यालयों में खोज कार्य, पृष्ठ - 1
2. डॉ0 लोहिया: कृष्णा और गोदावरी के इलाके में, पृष्ठ - 10

लोहिया का यह नदी - प्रेम संस्कृति के एक बहुत बड़े रहस्य को खोलता है । नदी के प्रवाह, विस्तार सौन्दर्य का प्रभाव तटवासी प्रान्तों की संस्कृति को पूर्णतः प्रभावित करता है, उनके मन और स्वभाव का निर्माण करता है । भारतीय संस्कृति मूलतया नदी संस्कृति ही रही है । नदियों के नाम, रूप, पूजन, आदि की परम्पराएँ न जाने संस्कृति के कितने तत्वों को अपने में समेटे हुए हैं ।

और आज हमारी नदियाँ (संस्कृति) कीचड़ से पट गई हैं । लोहिया नारा देते हैं- "नदियाँ साफ करो" । जिस देश की अधिकांश सभ्यता नदियों के किनारे उपजी-पनपी जिसके अधिकांश बड़े नगर नदियों के किनारे अवस्थित हैं, "एक-दो करोड़ के बीच रोजाना किसी न किसी नदी में नहाते हैं, पचास साठ लाख पानी पीते हैं, जिनके मन और क्रीड़ाएँ नदियों से बँधे हैं" उन्हीं के देश में नदियाँ मैले से पट रही हैं । यह नारा देकर लोहिया ने नदी और तीर्थों की सफाई की ओर ध्यान आकृष्ट कराया । स्पष्ट है कि इन बातों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य से है, किन्तु क्या ये आन्दोलन हमारी संस्कृति से सम्बद्ध नहीं है ?

लोहिया का सांस्कृतिक मानस बहुत व्यापक और उदार था । उन्होंने निरन्तर चौड़ा दिल और उदार मानस की बात की । लोहिया यह मानते थे कि

---

1. देखिए· डॉ0 लोहिया: "नदियाँ साफ करो" पृष्ठ - 20
"मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला"

हमारे देश के प्राचीन महापुरुषों के किस्से, चाहे वे मर्यादित राम के हों, उन्मुक्त कृष्ण के हों, या असीमित शिव के, राष्ट्र की आत्मा को विराट् और व्यापक बनाते हैं । यह हमारे देश के मानस की हँसी और सपने के साक्षी हैं । हँसी और सपनों के बिना कोई देश महान नहीं होता । लोहिया कहते हैं "हँसी और सपने, इनसे और कोई चीज बड़ी दुनिया में हुआ नहीं करती । जब कोई राष्ट्र हँसा करता है, तो वह खुश होता है उसका दिल चौड़ा होता है और जब कोई राष्ट्र सपने देखता है तो वह अपने आदर्शों में रँग भर-भर कर किस्से बना लिया करता है ।"[1]

ऐसा था लोहिया का स्वप्न - ह्रास भरा मानस जो प्रत्येक व्यक्ति से समझदारी और उदारता की अपेक्षा करता था । उदारता और समझदारी सिर्फ इसलिए नहीं कि हमें निरन्तर किसी न किसी से संघर्ष करना है, बल्कि आत्म-निर्माण की दृष्टि से भी, ताकि हम एक बेहतर सांस्कृतिक मनुष्य बन सकें । संस्कृति तथाकथित बड़े-बड़े लोगों के भीतर नहीं, सामान्य जन की आत्मा में प्रकट हुआ करती है । लोहिया ने मामूली हिन्दुस्तानी व्यक्ति के भीतर की उच्चता और समझदारी की ओर बराबर ध्यान आकृष्ट कराया । उनके भाषणों और लेखों में अनेक प्रसंग और उदाहरण मिलेंगे । इस दृष्टि से "कृष्णा और गोदावरी के इलाके में" शीर्षक भाषण में उल्लिखित एक प्रसंग पर दृष्टिपात

---

1. डॉ0 लोहिया· मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व, पृष्ठ - 3

करना आवश्यक है । एक माँ और बेटी बहुत प्रसन्न मन किसी मंदिर में दर्शन को जा रही थीं कि सहसा लड़की के हाथ से पूजा का नारियल गिरा और टूट गया । माँ हँसी, लड़की भी हँसी । "कितना गंभीर शास्त्र उसके दिमाग में पड़ा हुआ होगा । हमारे सभी लोग उस माँ की तरह ही हो जायँ कि अगर नारियल गिर गया तो कोई बात नहीं । पानी जहाँ चढ़ना था चढ़ ही गया । उठा लो उसको और हँसते - हँसते फिर अपनी परिक्रमा करने लग जाओ ।"[1] संस्कृति को समझने वाला व्यक्ति मानव मन की इन भावनाओं को देखता है, उनसे अपनी शक्ति और प्रेरणा पाता है । लोहिया भारतीय संस्कृति के प्राणतत्व को पहचानते थे और उसे ही वे जीवित और विकसित बनाने के लिए सतत् प्रयत्न करते रहे । वे विदेशी नकल के सख्त विरोधी थे । "राजनीतिक व्यक्ति चाहे गद्दी पर हों, चाहे बाहर अपने दिमाग से नकली यूरोपीय हो गए हैं ।"[2] सिर्फ राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं, संस्कृति के सभी क्षेत्रों में भी इसी प्रकार की नकलची मनोवृत्तियाँ छापी हुई हैं । इन नकली प्रेरणा स्रोतों से भारतीय संस्कृति को कुछ मिलने-जुलने वाला नहीं । सिर्फ, मिथ्या और नकली इज्जत की कामना हम लोगों को आकाश वेलि की तरह जनता और उसकी लोक संस्कृति से कटकर जीने के लिए विवश कर रही है ।

---

1. डॉ0 लोहिया: कृष्णा और गोदावरी के इलाके में, पृष्ठ - 14-15

2. डॉ0 लोहिया: मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व, पृष्ठ - 21

अध्याय - चतुर्थ

डॉ0 लोहिया के आर्थिक विचार

डॉ0 लोहिया समाजवादी अर्थशास्त्रियों में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। बर्लिन विश्वविद्यालय में उनको समाजवादी अर्थशास्त्र का अध्ययन करने का अवसर मिला था । डॉ0 लोहिया के आर्थिक विचारों का अध्ययन करने से पूर्व यह ज्ञात कर लेना आवश्यक है कि समाजवाद में आर्थिक तत्व का महत्व सर्वाधिक है । वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता कार्ल मार्क्स ने आर्थिक तत्व को समाज का निर्णायक तत्व कहा है । उसके मतानुसार सामाजिक विकास की प्रगति और दिशा, उत्पादन और विनिमय की रीतियों पर निर्भर करती है । अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्धों में बँधते हैं जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतन्त्र होते हैं । उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुरूप होते हैं । इन्हीं उत्पादन सम्बन्धों के योग से समाज की आर्थिक प्रणाली बनती है जो कि वह वास्तविक आधार होती है जिस पर वैधानिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं का निर्माण होता है । मनुष्य की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती प्रत्युत इसके विपरीत उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है ।[1] फ्रेडरिक एंगेल्स ने भी इसी सिद्धान्त का संक्षिप्त वर्णन करते हुए लिखा है , "समस्त सामाजिक परिवर्तनों तथा राजनीतिक क्रान्तियों के अन्तिम कारण न तो मनुष्य के मस्तिष्क में और न उनके चरम सत्य और न्याय सम्बन्धी विशेष ज्ञान में पाये जाते हैं वरन् वे तो उत्पादन तथा विनिमय

---

1. कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्सः संकलित रचनाएँ (चार भागों में), भाग-2, पृष्ठ - 9

प्रणाली में होने वाले परिवर्तनों में निहित है"[1] स्पष्टतया सामाजिक उन्नति और विकास की दिशा उत्पादन तथा विनिमय की रीतियों पर निर्भर है । डॉ0 लोहिया मार्क्स के आर्थिक चिन्तन की अपरिहार्यता को स्वीकारते हुए अनार्थिक कारणों से पड़ने वाले प्रभुत्व को भी महत्व देते हैं ।[2] उनकी दृष्टि में धार्मिक महत्वाकांक्षाएँ शक्ति का मद, यश लिप्सा, स्त्री-पुरुष के बीच परस्पर आकर्षण आदि भी सामाजिक स्थिति के संयोजन में गंभीर भूमिका का निर्वाह करते हैं । इतिहास की केवल आर्थिक व्याख्या ही नहीं वरन् एक नैतिक सौन्दर्यमूलक, राजनीतिक, धार्मिक तथा वैज्ञानिक व्याख्या भी है । किन्तु फिर भी आर्थिक तत्व की विशेष महत्ता को ठुकराया नहीं जा सकता । सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल में विश्वास करने वाले डॉ0 लोहिया भी आर्थिक क्रान्ति की प्रधानता और अपरिहार्यता को स्वीकार करते हैं । यद्यपि मार्क्स और एंगेल्स ने आर्थिक तत्व पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है, तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनार्थिक कारणों से आर्थिक कारण समाज पर अधिक प्रभाव डालते हैं । डॉ0 लोहिया ने अमीरी गरीबी के अन्तर समग्र विषमताओं का मूल मानते हुए आठ आधारभूत आर्थिक सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं: (1) वर्ग उन्मूलन, (2) मूल्य-नीति, (3) आय नीति, (4) भूमि का पुर्नवितरण, (5) आर्थिक विकेन्द्रीकरण, (6) अन्न सेना व भू-सेना, (7) राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण, (8) खर्च पर सीमा।

डॉ0 लोहिया का आर्थिक चिन्तन उपर्युक्त आठ बिन्दुओं के अन्तर्गत

---

1. वही, भाग-3, पृष्ठ - 90
2. देखें: डॉ0 लोहिया: सात क्रांतियाँ, पृष्ठ - 2

विश्लेषणात्मक दृष्टि से अध्ययन करते हुए देखें तो सहज इस निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे कि उनकी दृष्टि में विशेषतया भारत या और भारत जैसे अन्य पिछड़े व अच्छे विकसित राष्ट्र थे । उनका समाजवादी आर्थिक चिन्तन विस्तृत, गहन और तर्क संगत था ।

॥1॥ वर्ग उन्मूलनः-

आर्थिक हितों की समानता का कारण वर्ग-निर्माण है, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण पर एकाधिकार रखने वाले अन्ततोगत्वा शोषक बन जाते हैं, साथ ही, दूसरा वर्ग शोषित बन जाता है । मार्क्स, एंगेल्स, बुखारिन आदि वर्गोत्पत्ति का कारण आर्थिक मानते हैं । डॉ0 लोहिया इस विचार को एकांगी सत्य मानते हुए वर्ग निर्माण के कारणों में सामाजिक तथा बौद्धिक कारण भी जोड़ते हैं "दौलत, बुद्धि, स्थान के हिसाब से समाज में गिरोह बनते हैं जिन्हें वर्ग कहते हैं ।[1] उनका ये मत सटीक तथा यथार्थ है । यही उनके चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक ॥बौद्धिक॥ व्यवस्थाओं को प्रत्येक समाज में भिन्न मानते हुए इस बात पर जोर देते हैं कि प्रत्येक समाज की वर्ग व्यवस्था का गहन अध्ययन होना चाहिए और तद्नुसार उस व्यवस्था में परिवर्तन हेतु अलग-अलग कदम एक साथ उठाने चाहिए । विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्ति उनकी दृष्टि में शोषक है । विशेषाधिकार जन्म से भी हासिल होते हैं और प्रयत्नों से भी प्राप्त किये जाते हैं । अपने देश में

---

1. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा: पृष्ठ - 6

लोहिया तीन प्रकार के विशेषाधिकार की बात करते थे - जाति[1] सम्पत्ति और भाषा[2] ।

भारत वर्ष में डॉ0 लोहिया ने वर्ग व्यवस्था का गहन अध्ययन कर उसे अत्यन्त मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया । उन्होंने स्पष्ट किया कि एक वर्ग समाज में मुख्य वस्तु है - शोषण । जो शोषण कर सकते हैं, वे अधिक लाभ का अर्जन करते हैं । जो शोषण नहीं कर सकते, उनका शोषण होता है । शोषण कर्त्ताओं का अस्त्र विशेषाधिकार होता है । विशेषाधिकार एक ऐसा अवसर है जो समाज में बहुत छोटे से हिस्से को मिलता है । भाषा सम्बन्धी विशेषाधिकार से डॉ0 लोहिया का तात्पर्य अंग्रेजी भाषा के ज्ञान से है । आज धन और प्रतिष्ठा अंग्रेजी से जुड़ी हुई है । करोड़ों लोग यह सोचते हैं कि वे तो अंग्रेजी नहीं जानते, शासन कैसे चलायेंगे । इस प्रकार इस प्रजातांत्रिक राज्य में करोड़ों लोग हीन भावना से ग्रस्त हो गये हैं । भाषा के आधार पर वर्तमान में ही अपितु 1500 वर्षों से शोषक और शोषित वर्ग निरन्तर अस्तित्व में रहे हैं । डॉ0 लोहिया ने स्पष्ट किया कि "बुनियादी बात यह है कि गत 1500 सालों से हिन्दुस्तान की संस्कृति में अजीब फूट चली आ रही है । एक तरफ तो कुछ लोगों की सामन्ती भाषा, सामन्ती-भूषा, सामन्ती भोजन और सामन्ती भवन रहा है, तो दूसरी तरफ करोड़ों लोगों की लोक-भाषा, लोक-भूषा, लोक-भोजन और लोक-भवन रहे हैं । उदाहरण

---

1. देखें डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 41

2. डॉ0 लोहिया: भाषा, पृष्ठ - 46

के लिए किसी जमाने में संस्कृत सामन्ती भाषा, प्राकृत, अपभ्रंश और पाली लोक भाषाएँ, अरबी और फारसी सामन्ती भाषा, हिन्दी, उर्दू, तमिल, बंगाली लोक भाषाएँ रही हैं । आज अंग्रेजी सामन्ती भाषा है और हिन्दी, हिन्दुस्तानी, तमिल, तेलगू, मराठी वगैरह लोक-भाषाएँ ।"[1]

वर्ग निर्माण का दूसरा कारण जाति सम्बन्धी विशेषाधिकार है । भारतीय ग्रन्थ इस बात के प्रमाण हैं कि जाति (वर्ण) का निर्माण कार्य विभाजन के लिए किया गया था । उसमें छोटे - बड़े और ऊँच - नीच का कोई भेद-भाव नहीं था । सहयोग के आधार पर सामाजिक विकास ही इस विभाजन का लक्ष्य था । किन्तु डॉ0 लोहिया की मान्यता इससे बिल्कुल भिन्न है । उनका मत था कि विश्व के इतिहास में सबल और निर्बल के बीच युद्ध हुए । सबलों ने निर्बलों को पराजित कर उन्हें तबाह कर डाला । किन्तु भारत वर्ष की विशेषता यह रही कि विजयी वर्ग ने पराजित वर्ग को नष्ट न कर केवल उनके अधिकारों को सीमित किया और अपने जीवन का एक अंग उन्हें बना लिया । इस प्रकार "हारे का नाश करने के बजाय उसकी आमदनी को बाँध रखने के प्रयास से जाति की उत्पत्ति हुई ।"[2] विजयी वर्ग द्विज और पराजित वर्ग शूद्र कहलाया । जैसे-जैसे समय बीतता गया द्विज अद्विज को अधिकाधिक व्यक्तित्वहीन बनाता गया । सारा का सारा शूद्र-समुदाय निर्जीव, व्यक्तित्वहीन और उदास बनता

---

1. डॉ0 लोहिया: भाषा: पृष्ठ - 46
2. डॉ0 लोहिया: जाति-प्रथा, पृष्ठ - 41

चला गया । डॉ0 लोहिया ने इस अन्तर पर विशेष ध्यान आकृष्ट करते हुए निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं कि "जाति देश को तोड़ रही है वह संतुष्टि, दर्द और निश्चलता के बहुसंख्यक छोटे-छोटे पोखरे बनाती है, हर एक पोखर को अपने छोटे से घेरे की भलाई में ही दिलचस्पी रहती है । मूल्यों की एक विषम सीढ़ी ने हर एक जाति को कुछ दूसरी जातियों के ऊपर खड़ा कर दिया है ।"[1]

वर्ग-निर्माण का अन्तिम विशेषाधिकार सम्पत्ति है । लोहिया आर्थिक विषमता को अन्य विषमताओं से अधिक महत्व देते थे क्योंकि वर्ग-उत्पत्ति का मुख्य कारण आर्थिक विषमता ही है । उन्होंनें यदि एक ओर आठ आने अथवा रुपया रोज कमाने वाले के परिश्रमी किन्तु कष्टमय जीवन को सहानुभूतिपूर्वक देखा था, तो दूसरी ओर धनिकों के विलासितापूर्ण एवं निष्क्रिय जीवन को घृणा-स्पद दृष्टि से अवलोकन किया था । लोहिया ने इस भयानक आर्थिक विषमता पर चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा था "सारे संसार में छोटे और बड़े आदमी के बीच अन्तर है, लेकिन भारत में यह अन्तर मारक है । गोरे देशों में चाहे वे पूँजीवादी अथवा साम्यवादी हों, लोगों की आय में दो, पाँच, सात गुने का अन्तर होता है । यह अन्तर भारत में 50, 100, 300 गुने का साधारण तौर पर होता है । परिणाम है कि एक तरफ भोजन और कपड़ा नहीं है और दूसरी तरफ आधुनिकता और शौकीनी का सदा बढ़ता परिहास है ।"[2]

---

1. डॉ0 लोहिया: भाषा, पृष्ठ - 113
2. डॉ0 लोहिया: देश गरमाओ, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970, पृष्ठ - 5

डॉ0 लोहिया द्वारा स्पष्ट किये गये उपर्युक्त, तीन विशेषाधिकारों से चार वर्गों का निर्माण होता है ।[1]

(1) शासक वर्गः-

जिनको जन्म से जाति, भाषा और सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त है- अर्थात् धनी, खासे मध्यम वित्त परिवार के लोग, आंग्ल-भाषा के अधिकारी वे उच्च जाति के व्यक्ति ।

(2) उच्च मध्यम वर्गः-

ये वर्ग शासक वर्ग से जुड़ा है, वह वर्ग इन्हीं पर आश्रित रहता है, ये लोग उच्च जाति व आँग्ल-भाषा भाषी वाले होते हैं इनमें ये दो गुण होते हैं :-

(3) निम्न मध्यम वर्गः-

इस वर्ग में सम्पत्ति, भाषा (अंग्रेजी) और उच्च जाति, इनमें से एक गुण ही होता है ।

(4) विशुद्ध सर्वहारा वर्गः-

इस वर्ग के पास न सम्पत्ति होती है, न भाषा और न जाति वर्ग

भेद की इस दीवार को गिराये बिना उनकी दृष्टि में कोई भी आर्थिक कार्यक्रम इस देश की उन्नति में सहायक नहीं हो सकता है । यही कारण है

---

1. विशेष जानकारी के लिए देखें: लोहिया: समाजवाद की अर्थनीति, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1968, पृष्ठ - 4
भाषा - पृष्ठ - 75-36

कि उन्होंने अंग्रेजी हटाओ, जाति या ऊँच-नीच की भाषा पर आश्रित वर्ग-उन्मूलन आय समता के लिए 1:10 का अनुपात आदि आन्दोलन शुरू किये थे और उनका विश्वास था कि सार्वजनिक क्षेत्र के मंत्री, कमिश्नर, जिलाधीश आदि के खर्चे और विलासिता पूर्ण जीवन का दमन उसी प्रकार से अनिवार्य है - जिस प्रकार से सेठ - साहूकारों आदि का क्योंकि वर्ग-विहीनता की स्थिति संस्थापित किये बिना समाजवाद एक विडम्बना होगी ।

(2) मूल्य नीतिः-

इस सम्बन्ध में डॉ० लोहिया की स्पष्ट धारणा यह थी कि "जिस्मानी अथवा माली बराबरी का अर्थ है कि जिन्दगी की जरूरी चीजों के दाम का रिश्ता आमदनी के साथ जुड़ा हुआ हो ।"[1] पूँजीपति वर्ग सदैव उपभोक्ता के लिए एक खतरा बना रहता है इससे छोटे उत्पादक भी शोषित होते हैं क्योंकि वह वर्ग कम कीमत में वस्तुएँ खरीदता है और कुछ समय उन वस्तुओं को रोककर फिर मन चाहे दाम में उनको बिकवाता है एक प्रकार से इस क्षेत्र में वह तानाशाह है बड़ी मशीनों से माल या उत्पादन होने में लागत मूल्य कम आता है अपेक्षाकृत छोटी मशीनों या हाथ से बनाये गये माल के दूसरी ओर कर्मचारी वर्ग 'मूल्य निर्धारण' की राष्ट्रीय ठोस नीति नहीं होने के कारण सदैव मंहगाई भत्ते की मांग करता रहता है सरकार उसकी माँग की किन्हीं अंशों में पूरा करने के लिए नोट छापती है, घाटे के बजट बनाती है । मुद्रा-प्रसार के कारण वस्तुओं का मूल्य-स्तर

---

1. डॉ० लोहियाः क्रान्ति के लिए संगठन, भाग - 1, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 185
   डॉ० लोहियाः काँचन मुक्ति,

और ऊँचा हो जाता है और कर्मचारियों तथा श्रमिकों की वास्तविक आय घट जाती है, जिस कारण वे पुनः मंहगाई भत्ते में वृद्धि की माँग करते हैं । मँहगाई-वृद्धि तथा मूल्य-वृद्धि का क्रम इसी प्रकार चलता रहता है ।

डॉ0 लोहिया चाहते थे कि प्रत्येक क्षेत्र में शोषण मुक्त मूल्य नीति का निर्धारण किया जाय । कच्चे माल और तैयार माल के बीच 'मूल्यों' का अन्तर कम हो, और दो फसलों के बीच सोलह प्रतिशत से अधिक तेजी मन्दी न रहे, विक्रय मूल्य लागत मूल्य से ड्योढ़ा हो, जिसमें सभी कर तथा लाभ सम्मिलित हों । उनके मत में सम्पूर्ण संसार में खेती और कारखाने की चीजों के मूल्यों में सन्तुलन और न्याय स्थापित किया जाना चाहिए: "सन्तुलन हो खेतिहर दाम में और कारखाने के दाम में और वह न सिर्फ राष्ट्रीय पैमाने पर बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर भी ।"[1] मकान किराये के विषय मूल्यों की समाप्ति हेतु डॉ0 लोहिया ने कहा कि औसत आय और मकान किराये के बीच सामंजस्यपूर्ण और संतुलित सम्बन्ध रहना चाहिए । इसके अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति का दो मकानों से अधिक पर स्वामित्व नहीं होना चाहिए ।"[2]

उपर्युक्त मूल्य-नीति की स्थापना हेतु डॉ0 लोहिया ने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव भी दिए । देश के विभिन्न समुदायों, संघों और व्यापारिक संगठनों को व्यापक दृष्टि रखना चाहिए । उन्हें "मँहगाई भत्ता वगैरह बढ़ाने के बजाय

---

1. डॉ0 लोहिया: समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ - 21
2. डॉ0 लोहिया: समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ - 21

चीजों के दाम को स्थिर करने की कोशिश करनी चाहिए ।[1] इसके अतिरिक्त मूल्यों को स्थिर करने के लिए मुहल्ले-मुहल्ले और गाँव-गाँव में सभाओं और प्रदर्शनों के द्वारा जनमत का निर्माण करना चाहिए । इस हेतु उन्होंने सरकारी लूट, पूँजीपति और बड़े किसान के अनपेक्षित लाभों पर कुठाराघात करना तथा सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति लाना भी अनिवार्य बताया । लोहिया स्पष्ट कहते हैं "मैं यह मानता हूँ कि दाम-नीति को हकीकत बनाने के लिए हमारे आर्थिक और सामाजिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने पड़ेंगे तथा सरकारी लूट, पूँजीपति-मुनाफों और बड़े किसानों के हितों पर जम कर हमला करना होगा ।"[2]

(3) आय-नीतिः-

आय-नीति द्वारा आर्थिक समता संस्थापित हो सकती है बिना आर्थिक समता के दूसरी प्रकार की समताएँ व्यर्थ हैं । डॉ0 लोहिया कहते हैं कि "चरम दारिद्रय की अवस्था में सामाजिक चेतना मर जाती हैं, या कम से कम क्षीण हो जाती है, समृद्धि और सुख में रहने वाले व्यक्ति अपने और दरिद्र जनता के बीच निर्ममता की प्राचीरें खड़ी कर लेते हैं सामाजिक चेतना का पुर्नजागरण तभी संभव है, जब इन प्राचीरों को ढहाया जाय, और ये प्राचीरें तभी गिर सकती हैं, जबकि आदमियों का परस्पर अन्तर निश्चित सीमा के अन्दर रखा जाय ।"[3]

---

1. डॉ0 लोहियाः समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ - 35
2. डॉ0 लोहियाः भाषा, पृष्ठ - 75-76
3. डॉ0 लोहियाः काँचन-मुक्ति, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ-32

भारतवर्ष में न्यूनतम और अधिकतम आमदनी में अधिक विषमता विद्यमान है । एक ओर तो उच्च पदाधिकारियों को अधिक वेतन मिलता है, दूसरी ओर ऐसे कर्मचारी हैं जो अपने वेतन से अपने परिवार का पेट भी नहीं भर सकते । एक ओर बड़े-बड़े उद्योगपति और पूँजीपति मजे से विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं तो दूसरी ओर बेकार और गरीब लोगों की कमी नहीं। केन्द्रीय राज्य के कर्मचारियों के वेतन राज्य के कर्मचारियों के वेतन की अपेक्षा अधिक होता है यद्यपि दोनों प्रकार के कर्मचारियों के लिए मँहगाई समान होती है परन्तु उनके मँहगाई भत्ते में अन्तर है । स्थायी और अस्थायी कर्मचारियों की मजदूरी में अच्छा खासा अन्तर होता है । स्थायी कर्मचारियों को अधिक और अस्थायी कर्मचारियों को बहुत कम मजदूरी प्राप्त होती है । डॉ0 लोहिया ने लोक सभा में कहा था कि निम्न वर्ग के लोगों की आय तीन आना प्रतिदिन है यद्यपि सरकार उनके इस कथन से सहमत नहीं हुई, परन्तु उसके अनुसार भी निम्न वर्ग के लोगों की आमदनी साढ़े सात आना प्रतिदिन से अधिक नहीं बतायी गई ।

देश में व्याप्त आय-विषमताओं का विश्लेषण करने में डॉ0 लोहिया ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि का प्रयोग किया था । ऊँचे-ऊँचे सरकारी पदाधिकारियों की सुविधाओं पर लोहिया के दृष्टिकोण से किसी ने भी विचार नहीं किया था। इन लोगों के बँगलों, नौकरों, आवागमन और संचार-साधनों पर जो खर्च होता है, उसे इन लोगों के वेतनों को बगल में रखकर देखना चाहिए । जब ये लोग ड्यूटी पर यात्रा करते हैं तो इनके स्वागत - सत्कार ठाट-बाट और आराम पर

बेहिसाब खर्च होता है । इसमें सन्देह नहीं कि इन सबका भार गरीब जनता को वहन करना पड़ता है । इन लोगों को मिलने वाली ये सुविधाएँ आय विषमता को और बढ़ा देती हैं । लोहिया की दृष्टि में आय और सम्मान की विषमताओं के कारण भारतीय समाज में दस लाख श्रेणियाँ बन गई हैं ।

डॉ0 लोहिया के अनुसार भारत वर्ष की वार्षिक राष्ट्रीय आय लगभग डेढ़ खरब होती है जिसमें से आधा खरब (पचास अरब रुपया) बड़े लोग ले लेते हैं, जिनकी संख्या 50 लाख है । शेष एक खरब (सौ अरब) रुपया छोटे लोग पाते हैं जिनकी संख्या 44 करोड़ है । इस प्रकार "44 करोड़ छोटे लोग बराबर हैं एक करोड़ बड़े लोगों के । । और 44 का औसत फर्क है । यूँ व्यक्तिगत फर्क तो और ज्यादा है - 30 हजार का, दस हजार का, एक हजार का, पच्चीस हजार का फर्क है ।"[1]

डॉ0 लोहिया की आय नीति और उसे प्राप्त करने के उपाय:-

आय नीति के सन्दर्भ में डॉ0 लोहिया ने ऐसा कभी नहीं कहा कि सब लोगों की आमदनी समान हो । निम्नतम और अधिकतम आय में क्या अनुपात हो, इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता । ऐसा अनुपात निर्धारित करने से पहले देश-काल और परिस्थिति पर ध्यान देना आवश्यक है । उनका कहना था कि "जो देश काल में संभव हो उससे कम को हासिल करने की

----

1. डॉ0 लोहिया: देश गरमाओ, पृष्ठ - 36

कोशिश तो अवसर वादिता है और उससे ज्यादा को हासिल करने की कोशिश पागलपन है ।"[1] समता का प्राचीन आदर्श आज के समता आदर्श से जिस प्रकार भिन्न है उसी प्रकार भविष्य का समता-आदर्श आज के समता-आदर्श से भिन्न हो सकता है ।

डॉ० लोहिया इस विषमता को पाटने के लिए 1:10 के अनुपात पर जोर देते हुए यह आशा करते थे कि एक समय ऐसा भी आ सकता है जबकि यह अन्तर 1:3 या 1:2 के अनुपात में ही रह जाय । वे आय के उच्च स्तर के लिए भी प्रयत्नशील थे क्योंकि जब तक तीन आने वाले वर्ग की आय इतनी नहीं बढ़ जाय कि वह सहज जीवन यापन कर सके तब तक परिश्रम करने के लिए उसे सक्षम नहीं बनाया जा सकता न्यूनतम आमदनी तय किये बिना काम नहीं चल सकता । डॉ० लोहिया चाहते थे कि केवल सरकारी कर्मचारियों की आय में सम्भव समता लाने से काम नहीं चलेगा । गैर सरकारी लोगों को भी इस अनुशासन में लाना पड़ेगा । उद्योगपतियों, सेठों, वकीलों, राजनीतिज्ञों, किसानों आदि सभी की आय नियंत्रित करनी होगी । लोहिया का कहना था "यह कभी हो नहीं सकता कि सारे समाज में तो लालच का समुद्र बहता रहे और बीच में सिर्फ सरकारी नौकरों के लिए फर्ज का टापू बना डाला जाये, यह नामुमकिन चीज है । लालच की लहरें लपेटा मारेंगी । अगर किसी तरह से सरकारी नौकरी के लिए कर्त्तव्य का द्वीप बना भी दिया, तो वह टापू लालच के समुद्र में बह

---

1. डॉ० लोहिया: समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ - 25

जायेगा । रोक लगानी है तो सभी आमदनियों पर, सरकारी नौकरों की कारखाने वालों की, वकील की, राजनीति करने वालों की ।"[1] निम्नतम व अधिकतम आय में अनिवार्य रूप से अनुपात तय करना होगा और ये अन्तर जितना कम होगा उतना ही राष्ट्रीय आय का स्तर ऊँचा उठेगा । इसके लिए उन्होंने कतिपय ठोस सुझाव प्रस्तुत किये हैं । सर्वप्रथम, धनिक वर्ग के खर्च पर सीमा बाँधनी चाहिए ताकि उनकी विलासिता पर खर्च होने वाले पैसे को बचाया जा सके । द्वितीय उच्च पदाधिकारी वर्ग की आय व सुविधाएँ कम की जाय तृतीय, देश में निर्मित वस्तुओं के प्रयोग पर जोर और आयात कम होना चाहिए । चतुर्थ, करोड़ पतियों के कारखानों का राष्ट्रीयकरण अनिवार्य रूप से किया जाय, पाँचवा सुझाव था कि अनावश्यक कर्मचारियों को रोजगार के दूसरे विकल्पों में खपाया जाय, डॉ0 लोहिया के मत में, उपर्युक्त साधनों से पैसा बचाकर इस "रुपये को पैदावार की आधुनिकीकरण में लगाओ, पूँजी के स्वरूप में लगाओ । इससे नए-नए कारखाने कायम करो ।"[2] इन कारखानों से जो आय हो उनको पूँजी की तरह पुनः प्रयोग कर दूसरे कारखाने खोलने, कृषि सुधारने आदि में लगाया जाय। केवल तभी प्रचुरता आयेगी और तीन आने वालों की आमदनी बढ़ेगी ।

[4] भूमि का पुनर्वितरणः-

लोहिया असमानता के मूल में भूमि के असमान वितरण को एक

---

1. डॉ0 लोहियाः सगुण और निर्गुण, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1968, पृष्ठ - 3
2. डॉ0 लोहियाः समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ - 12

प्रधान कारण मानते थे । बड़े-बड़े सामन्त भूमि के एक बड़े भाग पर अपना स्वामित्व रखते हैं । वे भूमिहीनों को अपनी जमीन में कार्य करने के लिए लगाते हैं और उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक न देकर उनका शोषण करते हैं । मालिक को 75 प्रतिशत और खेतिहर किसान को 25 प्रतिशत मिलता है । कभी-कभी उसे उपज का हिस्सा बहुत कम या कभी-कभी नहीं के बराबर मिलता है ।[1] डॉ0 लोहिया का विचार था कि जमीन-मालिक और बँटाईदार के बीच उपज का उचित वितरण होना चाहिए । उनके मत में 25 प्रतिशत उपज मालिक को और 75 प्रतिशत बँटाईदार को मिलनी चाहिए । उनकी जमीन संबंधी पुर्नवितरण की नीति थी, "कि अधिक से अधिक और कम से कम जमीन के स्वामित्व में एक और तीन का रिश्ता हो ।"[2]

इस सन्दर्भ में उनकी कल्पना अत्यन्त व्यापक थी और वे समूचे विश्व में भूमि-वितरण को समान (लगभग) स्तर पर लाना चाहते थे । वह अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी के अन्याय को समस्त मानवता पर धब्बा मानते हुए यह आवश्यक समझते थे कि कैनेडा, साइवेरिया व आस्ट्रेलिया आदि देशों में प्रति वर्ग मील पर एक या सात-आठ व्यक्ति का अधिकार है, जबकि उतनी जगह में भारत वर्ष में 350 व्यक्ति रहते हैं और पूर्वी उत्तर प्रदेश व केरल में यह संख्या एक हजार पर जा पहुँचती है । उनका विचार था कि विश्व के समस्त राष्ट्रों में

---

1. डॉ0 लोहिया: क्रान्ति के लिए संगठन (भाग-1) पृष्ठ - 209
2. डॉ0 लोहिया: क्रान्ति के लिए संगठन (भाग-1) पृष्ठ - 210

जमीन का लगभग समान वितरण होना चाहिए । हालांकि वर्तमान स्थिति को देखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर तो फिल-हाल ये बात संभव नहीं है कि भूमि का समान वितरण हो सके परन्तु वह अपने देश में जरूर संभव हो सकता है । आर्थिक प्रगति में इस क्रान्तिकारी कदम का बहुत बड़ा योगदान हो सकता है और कृषि प्रधान देश के लिए तो यह उसकी प्रगति का एक प्रकार से प्रजातंत्र ही है ।

(5) आर्थिक विकेन्द्रीकरण:-

सरकार की उच्च स्तरीय संस्थाओं में केन्द्रित शक्ति का निम्न स्तरीय संस्थाओं में वितरण ही विकेन्द्रीकरण है । यह न्यायिक, विधायिनी या प्रशासनिक आदि क्षेत्रों में शक्ति के बिखराव की प्रकिया है । डॉ0 लोहिया विकेन्द्रीकरण के प्रबल समर्थक थे ।[1] उनकी मान्यता थी कि आर्थिक विकेन्द्रीकरण के बिना प्रशासनिक, विधायिनी और न्यायिक विकेन्द्रीकरण व्यर्थ है । वे चाहते थे कि बड़े उद्योगपति समाप्त हों, लघु उद्योगों का देश में जाल-सा बिछ जाय क्योंकि बड़े पैमाने पर चल रहे उद्योग नैतिक पतन, मानसिक दौर्बल्य और शारीरिक क्षीणता उत्पन्न करते हैं । श्रमिक, गरीब और साधनहीन जनता शोषण का शिकार है । इसलिए डॉ0 लोहिया ने कहा था कि छोटी मशीनों पर आधारित उद्योग पद्धति "मुल्क के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से भी आवश्यक है ।"[2]

---

1. डॉ0 लोहिया: आसपिक्ट्स ऑफ सोशलिस्ट पालिसी: हमाम स्ट्रीट फोर्ट, बम्बई, जुलाई 1952, पृष्ठ - 37
2. इन्दूमति केलकर: लोहिया: सिद्धान्त और कर्म, पृष्ठ - 196

डॉ0 लोहिया के मतानुसार भारत को अन्य देशों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए । प्रत्येक देश की अपनी पृथक समस्याएँ होती है, जिनका समाधान वह अपनी परिस्थितियों और साधनों के अनुसार करता है । अन्य देशों से कुछ सीखने के उपरान्त ही हमें अपनी समस्याओं को अपने ही ढंग से हल करना चाहिए । भारत में छोटी मशीनों की उपादेयता निरूपित करते हुए उन्होंने कहा था कि यूरोप और अमरीकी जैसे धनी देशों के विपरीत भारत में कच्चे माल और मानव शक्ति का बाहुल्य तथा धन का अभाव है । ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय विकास के लिए छोटी मशीनें अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । इनके द्वारा ही आर्थिक विकेन्द्रीकरण और उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है । छोटी मशीनों की कल्पना का विवरण देते हुए लोहिया ने कहा था, "मैं उस जमाने का चित्र आँखों के सामने देख रहा हूँ जबकि देश के सभी गाँवों में और शहरों में विद्युत चालित छोटी मशीनों का एक बहुत बड़ा जाल बुनकर लोगों को काम दिया गया है और देश की सम्पत्ति बढ़ रही है ।"[1]

डॉ0 लोहिया न तो गान्धी के 'चरखा' जैसे सुस्त उपकरण के पक्ष में थे और न आधुनिक विशालकाय यन्त्रों के । उनका मत था कि गाँधी का अम्बर चर्खा नवीन छोटी मशीनों के लिए आधार हो सकता है, किन्तु केवल वही पर्याप्त नहीं । वे चाहते थे कि चर्खे जैसी हाथ की मशीनों का कुछ और आधुनिकीकरण होना चाहिए । उन्हें बिजली, पेट्रोल अथवा तेल आदि से परिचालित

---

1. इन्दूमति केलकर: लोहिया: सिद्धान्त और कर्म, पृष्ठ - 196

होना चाहिए ।[1] वे भारतीय वैज्ञानिकों को छोटी मशीनें निर्मित करने की ओर प्रोत्साहित करना चाहते थे । वे जानते थे कि विदेशी आविष्कारों के सहारे देश की आर्थिक व्यवस्था पुनर्जीवित नहीं की जा सकती । इसलिए वे भारतीय वैज्ञानिकों को ही कुशल और सक्षम बनाना चाहते थे । इस हेतु डॉ0 लोहिया की योजना थी कि भारतीय छात्रों की विदेशों में शिक्षा की व्यवस्था और राज्य द्वारा उसका नियन्त्रण होना चाहिए जिससे कि सार्वजनिक व निजी धन व्यर्थ नष्ट न होने पाये । इससे भी अधिक उन्हें यह पसन्द था कि विदेशों से शिक्षक, इन्जीनियर और फोरमैन शिक्षा देने के लिए भारत आमंत्रित किये जायें । केवल तभी छोटी मशीनों का निर्माण शीघ्रता से हो सकेगा ।

नवीन मशीनों के निर्माण के सम्बन्ध में लोहिया की ध्यान देने योग्य दूसरी बात यह है कि इन मशीनों का निर्माण निश्चित उद्देश्य के लिए होगा। अजीब और मनमाने विषय को लेकर शोध करना उनको पसन्द न था । उन्होंने स्पष्ट कहा था, "फिर आजकल की यह रफ्तार बदलनी पड़ेगी कि किसी भी अजीब और मनमाने विषय को लेकर खोज करने दी जाय । इसे छोड़ना पड़ेगा और उसके स्थान पर योजना बनाकर खोज करानी पड़ेगी ।"[2] इन मशीनों के निर्माण का उद्देश्य केवल आर्थिक विकास ही नहीं, अपितु समाज के सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति है । उद्योगों का अधिकाधिक मात्रा में सभी वर्गों और सभी

---

1. लोहिया: आसपेक्ट्स ऑफ सोशलिस्ट पालिसी: पृष्ठ - 38
   लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म: पृष्ठ - 326
2. लोहिया: भाषण, रीवां, 26 जनवरी, 1995

क्षेत्रों में वितरण ही आर्थिक विकेन्द्रीकरण है जिसकी प्राप्ति केवल छोटी मशीनों द्वारा ही हो सकती है । ये मशीनें कम पूँजी में निर्मित होने के कारण जनता के अधिकांश भाग को प्राप्त हो सकती हैं । लोहिया की मान्यता थी कि छोटी मशीनों की व्यवस्था से निर्धन भी अपने कुटीर और लघु उद्योग चला सकता है और भोजन, वस्त्र जैसे जीवन की आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है । बड़ी मशीनें भारत के सामान्यजन के लिए समझ और प्रबन्ध के परे हैं।

यद्यपि डॉ0 लोहिया छोटी मशीनों पर आधारित औद्योगिक व्यवस्था के समर्थक थे लेकिन इसका आशय यह लेना भी उपयुक्त नहीं होगा कि वे बड़ी मशीनों की उपादेयता को नकारते थे किन्हीं क्षेत्रों में जैसे स्टील निर्माण, बिजली उत्पादन आदि महत्वपूर्ण उद्योगों के लिए विदेशों से विशाल मशीनों को मँगाना आवश्यक मानते थे ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोहिया ने बड़ी और छोटी दोनों ही मशीनों के प्रयोग पर आवश्यकतानुसार बल दिया है । उन्होंने बड़े-बड़े और अनिवार्य उद्योगों में विशाल मशीनों का सहयोग चाहते हुए भी तेल, पेट्रोल, बिजली आदि से परिचालित छोटी मशीनों के विस्तार का सशक्त प्रतिपादन किया है । औद्योगीकरण की उनकी इस नीति से स्पष्ट होता है कि वे जहाँ केन्द्रीकरण आवश्यक है वहाँ केन्द्रीकरण और जहाँ विकेन्द्रीकरण आवश्यक है वहाँ विकेन्द्रीकरण चाहते थे । उनकी छोटी मशीनों की योजना से उनका यह विश्वास झलकता है कि समाजवादी समाज की रचना केवल आर्थिक विकेन्द्रीकरण द्वारा ही हो

सकती है और भारत वर्ष में आर्थिक विकेन्द्रीकरण छोटी मशीनों के बिना संभव नहीं है क्योंकि साधनहीन भारतीय जनता को एक ओर शोषक विशाल उद्योगों से मुक्ति चाहिए और दूसरी ओर स्वयं का विकास करने के लिए छोटे-छोटे नियंत्रित उपकरण चाहिए ।

(6) अन्न सेना व भू-सेना:-

न्याय, सार्थकता व प्रचुरता समाजवाद का लक्ष्य है । भारत में प्रचुरता कृषि व उद्योग पर निर्भर है । कृषि में यहाँ पिछड़ापन है । उस पिछड़ेपन को दूर किये बिना देश की प्रगति संभव नहीं है । दूसरे नम्बर पर मजदूर आते हैं वे भी जरूरत के मुताबिक मजदूरी न मिलने के कारण से लगातार गिरते जाते हैं । कृषि में तकाबी बाँटने की सरकार की नीति का कार्यान्वयन ढंग से नहीं होता फलतः वहाँ भी निर्धन कृषक का शोषण होता है ।

डॉ0 लोहिया ने भारतीय कृषि के पिछड़ेपन पर केवल चिन्ता ही व्यक्त नहीं की अपितु उसके निराकरण हेतु सुझाव भी प्रस्तुत किये । इस हेतु उन्होंने कहा था कि "व्यक्तिगत खेती, सामूहिक खेती और तीसरी चीज उद्योग भी, जो गाँव के लायक उद्योग हों, जो बनाये जा सकें, इन तीनों के समावेश से चीज होगी ।" वे सामूहिक खेती के पक्ष में थे, यद्यपि सहकारी खेती सफल नहीं हुई थी उनकी दृष्टि में उसका कारण था कि वह खेती भी ऐसी है जिसमें कुछ

---

1. डॉ0 लोहिया: समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ - 36

लोगों ने अपने सरकारी असर के द्वारा उसे अपनी आमदनी का कुछ साधन बनाया है । वह कोई ऐसी सहकारी खेती नहीं है जो किसानों वगैरह से चलायी गई हो । वे इस प्रकार की खेती में केवल उनको ही जोड़ना चाहते थे, जो कि हाथ से खेती करते हैं, चाहे वे प्रबन्ध के मामले में पिछड़े हुए हों । 18 करोड़ एकड़ भूमि जो परती पड़ी है, उसको भी सुधार करके काम में लाया जाना जरूरी है। चार करोड़ भूमि जलमग्न है जिसे वैज्ञानिकों की सहायता से खेती योग्य बनाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त गंगा - जमुना से कटने वाली जमीन भी लाखों एकड़ है । इस कटती हुई जमीन को बचाने के लिए भी उपाय किए जाने चाहिए ।"[1]

अन्न एवं भू-सेना की योजनाः-

लोहिया ने भूमि को कृषि योग्य बनाये जाने के सन्दर्भ में 'भू-सेना' की भौतिक कल्पना की थी[2] उनकी मान्यता थी कि 'जैसे बन्दूक वाली सेना वैसे ही हल वाली सेना मोटी तरह से सोंचे तो हल वाली सेना जो नई जमीन को तोड़े, आबाद करे ।'[3] वे सोचते थे कि यदि खाद्यान्न के आयात में होने वाले खर्च को भू-सेना पर लगाया जाय तो खाद्यान्न के मामले में भारत को आत्म-निर्भर होने में समय नहीं लगेगा । भू-सेना की योजना केवल कल्पना मात्र

---

1. डॉ0 लोहियाः समाजवाद की अर्थनीतिः पृष्ठ - 36-37
2. डॉ0 लोहियाः मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 403
3. डॉ0 लोहियाः भाषा, बम्बई, जनवरी 16 सन् 1964 ई0

नहीं है । ब्रिटेन ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय इस प्रकार की योजना द्वारा ही अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ किया था ।

डॉ0 लोहिया की योजना थी कि भारतीय कृषि व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए दस लाख व्यक्तियों की भू-सेना का निर्माण किया जाना चाहिए। इस अन्न-सेना के द्वारा 15 करोड़ एकड़ उपलब्ध परती जमीन में से प्रति वर्ष एक करोड़ एकड़ भूमि को कृषि योग्य बनाया जा सकता है । उन्होंने यह भी कहा कि शासन को भू-सेना के सदस्यों को भोजन, वस्त्र और निवास का व्यय वहन करना चाहिए । अन्न सेना के सैनिकों के लिए सामान्य वेतन भी दिया जाना चाहिए । यह अन्न सेना पहले परती भूमि को कृषि योग्य बनाकर उस पर खेती करेगी । इसके लिए डॉ0 लोहिया ने होने वाले खर्च व उससे प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए यह सिद्ध किया था कि यह योजना शनैः शनैः अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होगी और सामूहिक खेती का आदर्श बन सकेगी ।

डॉ0 लोहिया ने अन्न एवं भू-सेना को केवल आर्थिक विकास के लिए ही लाभदायक नहीं माना, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी उसके महत्वपूर्ण योगदान की ओर संकेत किया । उनके मतानुसार अन्न सेना 40-50 लाख व्यक्तियों की जीविका का केन्द्र बिन्दु होगी । इसके द्वारा आर्थिक विषमता तथा वर्ग और जाति के भेद समूल नष्ट होंगे । ग्रामीण व्यक्तियों के लिए यह सेना प्रोत्साहन और प्रेरणा का कार्य करेगी । इस योजना से उत्पादन में तो वृद्धि होगी ही, साथ ही व्यक्तियों के तकनीकी ज्ञान का विकास होगा।

यह सेना देश को अधिक सशक्त और सुरक्षित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेगी । इस प्रकार डॉ0 लोहिया ने अन्न-सेना एवं भू-सेना को भारत के सर्वांगीण विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है ।

इस योजना के पीछे डॉ0 लोहिया का चिन्तन आत्म-निर्भरता की प्राप्ति था । वे देश के समस्त उत्पादन साधनों द्वारा आर्थिक विकास की क्रान्ति को तेज करने के लिए अत्यन्त सजग और प्रयत्नशील थे । वह विदेशी सहायता को उपयुक्त नहीं मानते थे । उनका कहना था "विदेशी सहायता के प्रति मैं बहुत आशंकित हूँ । मेरा निश्चित मत है कि विदेशी सहायता चाहे ब्रिटेन, रूस अथवा अमरीका से मिले, केवल मशीन बनाने वाली बड़ी मशीनों के रूप में मिलने वाली सहायता को छोड़कर भ्रष्ट, बेकार, आलसी, घूसखोर और खूनी प्रशासन को बढ़ावा देती है ।"[1]

डॉ0 लोहिया की अन्न एवं भू-सेना की योजना बहुत ही वैज्ञानिक और व्यावहारिक है । इस योजना का कार्यान्वयन यदि न्याय-पूर्वक, कर्मठता और ईमानदारी के साथ किया जाये तो असफलता की कहीं कोई कल्पना नहीं की जा सकती । यह सेना डॉ0 लोहिया के मौलिक विचारों का सृजन है । उनकी इस योजना से स्पष्ट होता है कि उनमें आत्म - निर्भरता की भावना कूट-कूट कर भरी थी ।

---

1. डॉ0 लोहिया: अन्न समस्या, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 20

अन्न वितरण का अस्थायी हल:-

डॉ0 लोहिया अन्न समस्या का हल वैज्ञानिक प्रकृति से करना चाहते थे । अन्न समस्या अथवा भुखमरी की स्थिति को नियंत्रित करने के लिए उन्होंने कुछ प्रमुख कार्यक्रम दिये थे जिनमें 'घेरा डालो आन्दोलन' 'अन्न बाँटो आन्दोलन' प्रमुख हैं । 'घेरा डालो आन्दोलन' में भूखे लोग बड़ी संख्या में सरकारी दफ्तरों, सरकारी गोदामों या अनाज के बड़े व्यापारियों की गोदामों को घेर लेते हैं । यह घेरा वे उस समय तक डाले रहते हैं, जब तक उन्हें अन्न अथवा जेल नहीं मिल जाती । इस आन्दोलन का उद्देश्य 'रोटी दो या जेल दो' ही है । डॉ0 लोहिया के संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने इस प्रकार के घेरे बिहार के डाल्टनगंज तथा उत्तर-प्रदेश के बस्ती और देवरिया जिले में क्रमशः जून, जुलाई और अगस्त सन् 1958 ई0 में डाले जिसके परिणाम स्वरूप भूखे लोगों को राशन कार्ड बाँटे गये ।[1] डॉ0 लोहिया ने इस आन्दोलन की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए लिखा था "घेरा डालो आन्दोलन चुने हुए लोगों का सत्याग्रह नहीं है, जो कानून तोड़कर जेल जायें । यह भोजन के लिए लोगों का व्यापक जन आन्दोलन है ।"[2]

दूसरे तरह का आन्दोलन "अन्न बाटो आन्दोलन" है । इस प्रकार के आन्दोलन में लोग अनाज की गोदामों को घेर लेते हैं और उन पर शान्तिपूर्ण ढंग से कब्जा करके अनाज तौलकर बाँट लेते हैं और उसकी लिखा-पढ़ी करके

---

1. डॉ0 लोहिया: अन्न समस्या, पृष्ठ - 17
2. डॉ0 लोहिया: अन्न समस्या, पृष्ठ - 14

छोड़ जाते हैं कि उनके पास पैसा या अनाज होने पर वे सवा गुना वापस कर जायेंगे । सीधी और सरगुजा में इस प्रकार के आन्दोलन चलाये गये ।[1] इसके पीछे लोहिया का मत था कि 'भोजन लोगों का अधिकार है, और भूखे लोगों को भोजन पहुँचाना लूट नहीं कहा जा सकता'[2] इन आन्दोलनों को वे पूर्णतया अंहिसात्मक ढंग से चलाने के पक्ष में थे और तभी वे इन आन्दोलनों की सफलता मानते थे । इस सन्दर्भ में उन्होंने स्वयं कहा कि "केवल अपनी ओर से कभी भी हिंसा नहीं होनी चाहिए और न छोटे दूकानदारों और कच्चे आढ़तियों की गोदामों पर कब्जा करना चाहिए । कोशिश करके अनाज का हिसाब भी रखना चाहिए ।"[3]

अन्न-संकट अथवा भुखमरी की परिस्थिति से मुक्ति पाने के लिए उपर्युक्त आन्दोलनों के अतिरिक्त डॉ० लोहिया ने मुफ्त रसोई घरों का खोलना और अनाज के व्यक्तिगत व्यापार को समाप्त करना आवश्यक [illegible] । उनकी दृष्टि में ये दोनों कार्यक्रम अकाल ऐसी स्थिति में अत्यावश्यक रूप से किये जाने चाहिए । इस प्रकार के रसोई घरों के कार्यक्रम की इस आधार पर आलोचना की जा सकती है कि भोजन की निःशुल्क प्राप्ति के कारण बहुत से व्यक्ति भोजन करने आ सकते हैं । इस आलोचना के लिए लोहिया मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए कहते हैं, "गरीब स्वाभिमानी होता है । जब तक वह लाचार नहीं

---

1. डॉ० लोहिया: अन्न समस्या, पृष्ठ - 14
2. डॉ० लोहिया: अन्न समस्या, पृष्ठ - 15
3. डॉ० लोहिया: अन्न समस्या, पृष्ठ - 15

हो जाता, हाथ फैलाने नहीं आता है ।"[1]

भुखमरी को बचाने के लिए डॉ0 लोहिया ने अनाज के व्यक्तिगत व्यापार को समाप्त करने की भी सलाह दी थी, क्योंकि व्यक्तिगत व्यापारी अनाज के व्यापार से अत्यधिक लाभ कमा कर भूखे को और भूखा बना देते हैं । डॉ0 लोहिया का विचार था कि अनाज - व्यापार का समाजीकरण कर देने से अनाज की कीमतों में उतार-चढ़ाव नहीं होगा । इससे उपभोक्ताओं की सुरक्षा होगी और अनाज की कीमत स्थायी होने से किसान को भी लाभ होगा जिससे कृषि का विकास होगा ।

'घेरा डालो' और 'अन्न बाँटो' आन्दोलन तथा मुफ्त रसोई घर और अनाज व्यापार की सामूहिक संस्था आदि के कार्यक्रम यह सिद्ध करते हैं कि उनकी आर्थिक नीति मानवतावादी थी और वे भूखों की समस्या को राजनीति से जोड़कर चलते थे । उनकी दृष्टि में जो लोग यह कहते हैं कि राजनीति को भोजन से अलग रखो, वे या तो अज्ञानी हैं, या बेईमान राजनीति का मतलब और पहला काम लोगों का पेट भरना है, जिस राजनीति में लोगों का पेट नहीं भरता वह राजनीति भ्रष्ट, पापी और नीच है ।"[2] अपना देश जटिल समस्या से ग्रस्त हैं अतः यहाँ की राजनीति का प्रमुख उद्देश्य ही रोटी की समस्या का हल खोजना है ।

---

1. डॉ0 लोहिया: अन्न समस्या, पृष्ठ - 24
2. विशेष जानकारी के लिए देखे: लोहिया: समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ - 13-15

(7) राष्ट्रीयकरण अथवा समाजीकरण:-

समाजवादी चिन्तन मे यह प्रश्न बहुत महत्व का है कि सम्पत्ति का स्वामी कौन हो व्यक्ति अथवा समाज और किस सीमा तक हो । आर्थिक व्यवस्था समाज की अन्य व्यवस्थाओं को बहुत हद तक प्रभावित करती है । अतः सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व का तर्क देने वाले विचारक भी सम्पत्ति का प्रयोग सामाजिक हित में चाहते हैं । सम्पत्ति पर समाज अथवा राष्ट्र के स्वामित्व का तो सीधा उद्देश्य ही समाज कल्याण है ।

डॉ0 लोहिया मानते थे कि सम्पत्ति से समाज का हित होना चाहिए और उसके लिए वे सम्पत्ति पर समाज का अधिकार उपयुक्त समझते थे । श्रम के शोषण पर आधारित उत्पादन के साधनों पर समाज या राष्ट्र का अधिकार होना ही समाज के हित में है । वे व्यक्तिगत सम्पत्ति के विरोध में थे । वे व्यक्तिगत सम्पत्ति उसी सीमा तक रखने के पक्ष में थे जिससे उस परिवार का आसानी से जीवन यापन संभव हो सके उन्हीं के शब्दों में "जिस किसी कारखाने या खेत में इन्सान और उसका कुटुम्ब किसी दूसरे इन्सान को मजदूर रखे उसका राष्ट्रीयकरण करना आवश्यक है । केवल उतनी ही सम्पत्ति आदमी के पास रहनी चाहिए जो उसके लिए है या जिसकी पैदावार खुद अपने कुटुम्ब में इस्तेमाल कर सके ।"[1]

---

1. डॉ0 लोहिया: भारत में समाजवाद, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1968, पृष्ठ - 22

यद्यपि डॉ0 लोहिया सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण के पक्षपाती थे तथापि वे इसे ही पर्याप्त नहीं मानते थे । उनकी दृष्टि में सम्पत्ति मोह और सम्पत्ति की संस्था दोनों का उन्मूलन जरूरी था ।[1] उनकी मान्यता थी कि सम्पत्ति के प्रति मोह-समाप्ति का भारतीय प्रयास और सम्पत्ति की संस्था का मार्क्सवादी प्रयास एकांगी है । वे ऐसी व्यवस्था लाना चाहते थे जिसमें एक ओर तो सम्पत्ति के मोह का नाश हो और दूसरी ओर सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो ।

डॉ0 लोहिया व्यक्तिगत सम्पत्ति के समाजीकरण के लिए व्यक्ति को समाज या राज्य द्वारा क्षति पूर्ति करने की नीति से सहमत नहीं थे । उनका विचार था कि राज्य एक संप्रभुता सम्पन्न संस्था है, अतएव व्यक्ति के हित तथा सामाजिक कल्याण की निर्धारित नीतियों के अनुसार उसे व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिग्रहण का अधिकार है । इसके अतिरिक्त उनकी धारणा थी कि क्षति पूर्ति के आधार पर किसी राज्य को उत्पादन के समस्त साधनों का समाजीकरण करना असंभव होगा । परन्तु उन्होंने पुर्ननिवास क्षतिपूर्ति की नीति का प्रतिपादन सामान्य क्षतिपूर्ति नीति के विकल्प के रूप में किया । इस नीति के अन्तर्गत व्यक्तिगत सम्पत्ति के समाजीकरण के कारण अगर कोई व्यक्ति अपनी आजीविका के साधन से वंचित होता है तो उसके लिए व्यवसाय या धन-अनुदान की व्यवस्था की जानी चाहिए ।

---

1. डॉ0 लोहिया: समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969, पृष्ठ - 111

डॉ0 लोहिया की व्यक्तिगत सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण की नीति निश्चित रूप से एक समाजीकृत की नीति है । वह समाज की सम्पत्ति का स्वामित्व केन्द्रीकृत राज्य को सौंपने के पक्ष में कदापि नहीं थे । उनका स्पष्ट मत था कि "सरकार के हाथ में राजकीय शक्ति भी दोगे और उसके साथ-साथ इतनी बड़ी आर्थिक शक्ति दोगे तो वह राक्षसी जरूर बनेगा ।"[1] इसलिए उन्होंने सम्पत्ति के सामाजिक स्वामित्व के विकेन्द्रीकरण का प्रबल समर्थन किया । लोहिया सरकारी पूँजीवाद को व्यक्तिगत पूँजीवाद से अत्यधिक भयानक मानते थे ।[2] अतएव उन्होंने उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामित्व को केन्द्र से नीचे की विभिन्न राजकीय इकाइयों में विकेन्द्रित करने की आवश्यकता पर बल दिया । उन्हीं के शब्दों में "संघ से लेकर गाँव तक राज्य की विभिन्न संर[illegible]ओं के विभिन्न स्तरों पर सामाजिक स्वामित्व का अधिकार होगा ।"[3]

डॉ0 लोहिया राष्ट्रीयकरण के पक्ष में थे, किन्तु राष्ट्रीयकृत उद्योगों के कुप्रबन्ध, उत्साहहीनता, अक्षमता और अपव्यय के प्रति वे सजग थे । उनका कहना था कि श्रमिकों में उत्साह और श्रम क्षमता बनाये रखने के लिए लाभ का उचित भाग उनको दिया जाना चाहिए । फिजूल खर्ची और विलासिता को समाप्त कर उद्योगों को सुदृढ़ करना चाहिए । वे कहा करते थे "खाली राष्ट्रीयकरण

---

1. डॉ0 लोहिया: क्रान्तिकरण, नव हिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1973, पृष्ठ 13
2. डॉ0 लोहिया - भारत में समाजवाद, पृष्ठ - 11
3. डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी और सोशीलिज्म, पृष्ठ - 480

करने से काम नहीं चलता । सम्पत्ति को सामाजिक बना देने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि उस सामाजिक सम्पत्ति पर किस तरह का नियंत्रण है, कौन लोग हैं, कैसे उसकी आमदनी का बँटवारा करते हैं, जो उसमें से साल भर में माल निकलता है उसको किस तरह से बाँटते हैं, इस पर बहुत कुछ निर्भर करेगा।"[1]

इस प्रकार लोहिया ने राष्ट्रीयकृत उद्योगों की सुव्यवस्था, कठिन नियन्त्रण, आय का उचित वितरण, प्रबन्धकों के सरल जीवन आदि पर बल देकर राष्ट्रीयकरण की सार्थकता प्रमाणित की है । इसके अतिरिक्त उन्होंने राष्ट्रीयकरण के सबसे बड़े दोष केन्द्रीयकरण को समाप्त कर इसकी एक बहुत बड़ी बुराई दूर कर दी है । वास्तव में उपर्युक्त तत्वों के बिना राष्ट्रीयकरण एक धोखा और कपट के अतिरिक्त कुछ नहीं है । नौकरशाही, फिजूल खर्ची कुप्रबन्ध, उदासीनता आदि की उपस्थिति में राष्ट्रीयकृत उद्योग लाभ के स्थान में निश्चयात्मक रूप से हानि पर हानि उठाते हैं । वेसे राष्ट्रीयकरण के सभी प्रतिपादक अपनी नीति में उपर्युक्त गुण का समावेश और दुर्गुणों का निष्कासन रखते हैं, किन्तु देखना यह होता है कि क्या नीति का यथोचित कार्यान्वयन हो रहा है ।

(8) खर्च पर सीमा:-[2]

डॉ० लोहिया इस सिद्धान्त को राष्ट्रीय सम्पन्नता का अंग मानते थे । उनकी दृष्टि में व्यय की सीमा रेखा होनी चाहिए । वे असमान खपत

---

1. डॉ० लोहिया: समाजवाद की अर्थनीति, पृष्ठ - 13
2. डॉ० लोहिया: क्रान्तिकरण - पृष्ठ - 12

को समाज की प्रगति को रोकने का कारण मानते थे । विलासी जीवन तथा उसके लिए किये गये श्रम को भी वे प्रगति विमुख कार्य मानते थे । उससे उत्पादन में न तो वृद्धि होती है और न सामाजिक जीवन में सुधार ही हो पाता है । त्याग व कर्त्तव्य की ओर नागरिकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए विलासिता की अन्धी आँधी से समाज को बचाना चाहते थे । उनकी स्पष्ट घोषणा थी "चीजों को बढ़ाओ या जरूरतों को कम करो ।"[1]

डॉ० लोहिया की धारणा थी कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में आने वाले बीस या तीस वर्षों में किसी भी व्यक्ति को विलासिता पर व्यय करने का अवसर उपलब्ध नहीं होना चाहिए और इस प्रकार का नियंत्रण तब तक रहना चाहिए जब तक राष्ट्र सम्पन्नता को प्राप्त न कर ले । उनका स्पष्ट मत था कि 'व्यक्ति की निजी आमदनी और निजी खर्च घटाया जाए' ।[2] वास्तव में लोहिया व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्तिगत व्यय को एक साथ नियंत्रित करना आवश्यक मानते थे । सम्पत्ति के समाजीकरण तथा व्यय के नियंत्रण से सम्पत्ति की संस्था एवं सम्पत्ति का मोह दोनों एक साथ समाप्त किए जा सकते हैं । पूँजीपतियों की शक्ति को समाप्त करने के लिए डॉ० लोहिया ने उनकी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण पर बल दिया तथा इसके साथ ही उन्होंने नौकरशाहों के व्यय, भत्तों तथा अन्य सुविधाओं को सीमित करना आवश्यक बताया । उनका विचार

---

1. विशेष जानकारी हेतु देखिए लोहिया: खर्च पर सीमा: प्रस्ताव और बहस; यूनाइटेड कमर्शियल प्रेस लि0, 1, राजा गुरूदास स्ट्रीट, कलकत्ता-6, 1967
2. डॉ0 लोहिया: वही - पृष्ठ - 36

था कि "आज की दुनिया ऐसी हो गयी है कि सिर्फ हिन्दुस्तान में ही नहीं, पूरी दुनिया में सम्पत्ति को बिना बढ़ाए हुए, सम्पत्ति को बिना इकट्ठा किये हुए भी एक आदमी अगर सरकारी ताकत पर पहुँच जाता है तो निजी खर्च के मामले में वह बड़े-बड़े करोड़पतियों और अरबपतियों से भी ज्याद खर्च कर सकता है ।"[1] वह पूँजीपतियों, राजनीतिक नेताओं एवं प्रशासनिक अधिकारियों की आय को व्यय द्वारा तथा व्यय को आय द्वारा सीमित करना चाहते थे ।

इस प्रकार डॉ0 लोहिया विलासितागामी वर्ग व सरकार के पक्ष को सामान्य धरातल पर लाना चाहते थे उनका कहना था कि 'सरकार जनता के धन से चलती है उसे फिजूलखर्ची व विलासिता की जीवन व्यवस्था अपनाने का कोई हक नहीं है, और जो सरकार ऐसा करती है, वह जन-विरोधी है, चाहे वह जनता की ही क्यों न हो ।' उनकी धारणा थी कि भारत के पूँजीपति, राजनीतिक नेता एवं प्रशासनिक अधिकारियों के व्यय पर नियंत्रण स्थापित करने से जो रुपया बचता है उसको पूँजी के रूप में कृषि की सिंचाई तथा उत्पादन की वृद्धि के लिए निवेशित किया जाना चाहिए । इस उत्पादन की वृद्धि से राष्ट्र सम्पन्न होगा और न्यूनतम आय तथा औसत आय का स्तर ऊँचा होगा ।

'खर्च पर सीमा' का प्रस्ताव:

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर लोहिया ने खर्च पर सीमा का सशक्त

---

1. डॉ0 लोहिया: क्रान्तिकरण - पृष्ठ - 36

   डॉ0 लोहिया: खर्च पर सीमा प्रस्ताव और बहस, शकलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-7, 1967

प्रतिपादन किया । जून सन् 1967 ई0 में उन्होंने 'खर्च पर सीमा' नामक प्रसिद्ध प्रस्ताव रखा जिसमें उन्होंने 1500 रु0 मासिक व्यय की अधिकतम सीमा निर्धारित करने के लिए लोक सभा को आगाह किया । उन्होंने यह सीमा केवल कुछ वर्षों तक चाही थी, क्योंकि उनके कार्यक्रमों के द्वारा उस समय तक भारत की स्थिति सुदृढ़ हो जाएगी । यह सीमा स्पष्ट कानून द्वारा, आयकर द्वारा अथवा किसी अन्य उपाय द्वारा बाँधी जा सकती है । डॉ0 लोहिया के मतानुसार खर्च पर सीमा बाँधने से लगभग 15 अरब रुपया वार्षिक बच सकता था । उनका कहना था कि आज के भारत को जितनी चिन्ता नीचे के नौकरों के बोनस बढ़ाने की होनी चाहिए उससे ज्यादा चिन्ता ऊपर वालों के खर्च और सुविधाएँ घटानी की होनी चाहिए ।

डॉ0 लोहिया ने खर्च पर सीमा के प्रस्ताव का निम्नलिखित आधारों पर प्रतिपादन किया :-

(1) डॉ0 लोहिया ने खर्च पर सीमा का समर्थन मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है । उनकी दृष्टि में मंत्री, सरकारी पदाधिकारी, पूँजीपति आदि ही विलासी जीवन व्यतीत करने और आर्थिक विषमता फैलाने के कारण है । वे स्वयं कहते हैं 'जब बड़े मंत्रियों के घर में नमक दाल, हल्दी के दामों की फिक्र होने लग जायेगी, तब जाकर चीजों के दाम गिरेंगे, उससे पहले गिरने वाले नहीं है, तो पहले बड़े लोगों के खर्च गिराओ' ।[1]

---

1. डॉ0 लोहिया: खर्च पर सीमा (प्रस्ताव और बहस), पृष्ठ - 2

(2) लोहिया का मत था कि खर्च पर सीमा से तीन आने प्रतिदिन पर जीवन यापन करने वालों के साथ न्याय हो सकेगा जिससे उनकी कार्य क्षमता में वृद्धि होगी और परिणाम स्वरूप राष्ट्र के विकास में भी वृद्धि होगी ।

(3) उन्होंने कहा कि अधिकांश सरकारी कर्मचारी अनावश्यक अनुत्पादक कार्यों में लगे हैं । इन पर होने वाला व्यय फिजूल खर्ची है । ये कर्मचारी मंत्रियों और बड़े सरकारी नौकरों की सुविधाओं के स्रोत होने के कारण उनके खर्च में सम्मिलित हैं, जिनका निष्कासन खर्च पर सीमा से अनिवार्यतः हो जायेगा । उन्हें अन्य उत्पादन कार्यों में लगाकर देश का नव निर्माण किया जा सकता है ।

(4) लोहिया यह मानते थे कि सम्पूर्ण कृषि-सिंचाई की व्यवस्था करने के लिए 40 अरब से एक खरब रुपये तक की आवश्यकता होगी जिसकी पूर्ति 'अभाव की साझेदारी अथवा खर्च पर सीमा' के द्वारा की जा सकती है ।

(5) उनका विचार था कि खर्च पर सीमा से पूँजी का निर्माण होगा परिणाम स्वरूप विदेशी सहायता से देश को मुक्ति मिलेगी और देश आत्म-निर्भर हो सकेगा बहुत से धनिकों के पास करोड़ों रुपये, बहुत सा सोना, चाँदी, हीरा आदि जमा है इनका उपयोग पूँजी की तरह हो सकेगा क्योंकि खर्च पर सीमा द्वारा कोई व्यक्ति अनावश्यक माल जमा न कर सकेगा ।

संक्षेप में डॉ0 लोहिया का आर्थिक चिन्तन मानवतावादी धरातल पर आधारित है । उनका समाजवाद मार्क्सीय आधार पर ही नहीं खड़ा है अपितु उसमें व्यक्ति व समाज दोनों की समन्वित चेष्टाएँ उभारने का यत्न किया गया है, जिसमें सम्पत्ति पर व समाज का ही अधिकार रह पाता है और न व्यक्ति का क्योंकि दोनों का एकाधिकार समाज के लिए कष्टदायक कभी भी सिद्ध हो सकता है । वे जनतन्त्रात्मक प्रक्रिया में भूखे व विलासी दोनों अति-स्थितियों को एक सामान्य धरातल देना चाहते थे वस्तुतया वे गाँधीवादी चिन्तन व मार्क्सीय चिन्तन के मध्य एक रास्ता निकालते हैं, जो न पूँजीवादी है और न एकदम समाजीकृत हैं । उसमें वैज्ञानिक क्रांतियों का सहयोग है परन्तु वैज्ञानिकता की चपेट में वे व्यक्ति में रूझानु की प्रवृत्ति बढ़ते नहीं देखना चाहते विज्ञान व्यक्ति को तोड़ने के लिए नहीं, उसकी सहायता के लिए है । इस बात को दृष्टिगत रखते हुए उनके उपर्युक्त आर्थिक चिन्तन पर विचार किया जाय तो निष्कर्ष यही निकलता है कि मानव को मानव बनाये रखने के पक्ष में भोग और योग के मध्यम मार्ग की अनुमति देना चाहते थे ।

*****

अध्याय - पंचम्

राष्ट्रीय आन्दोलन में राम मनोहर लोहिया की भूमिका एवं उनके विचार

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने डॉ0 राम मनोहर लोहिया के लिए राजनीतिक प्रशिक्षण एवं विचार मन्थन का स्वर्णिम अवसर प्रदान किया है । उनकी राजनीतिक चेतना की अभिभूति एवं प्रस्फूटन इसी काल में हुआ है । यह एक ऐसा काल था जो किसी भी संवेदनशील व्यक्ति की संवेदना का उद्दीपक स्रोत प्रमाणित हुआ है । चिन्तन एवं कर्म को उत्प्रेरित करने का अथाह विशाल स्रोत भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने तत्कालीन युग पुरुषों को विशेष रूप से तथा सामान्य लोगों को सामान्य रूप से अवसर प्रदान किया है । डॉ0 लोहिया इन्हीं युग पुरुषों में से एक हैं जिन्होंने राष्ट्र के उत्पीड़न को भली भाँति अनुभूति किया तथा उसकी वेदना से पीड़ित होकर उसे दूर करने का संकल्प लिया । इस वेदना की मानसिक प्रस्फूटि चिन्तन में प्रवाहित होकर उनकी विचार धारा का सृजन किया तथा वेदना की कार्मिक अभिव्यक्ति उनके कर्म एवं भूमिका का स्वरूप ग्रहण किया । इस प्रकार विचार एवं कर्म का तादातम्य संबंध लोहिया ने राष्ट्रीय आन्दोलन में स्थापित किया ।

उपर्युक्त पृष्ठ भूमि की महत् भूमिका राष्ट्रीय आन्दोलन में लोहिया के योगदान को सर्वप्रथम समझने की आवश्यकता पर बल देता है । चूँकि लोहिया ने स्वतंन्त्रता संग्राम की भूमिका के अलावे उस पृष्ठ भूमि में स्वतन्त्र चिन्तन के प्रवाह को आगे बढ़ाया है, इसलिए उन दोनों का सम्यक् विश्लेषण उनके सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन की कड़ी को आगे समझने में सहायक होगा।

उपर्युक्त प्रयोजनार्थ प्रस्तुत सन्दर्भ को निम्नलिखित भागों में अध्ययन विश्लेषण के लिए विभक्त किया गया है ।

(1) द्वितीय विश्व-युद्ध और भारत में लोहिया की भूमिका

(2) राष्ट्रीय आन्दोलन में लोहिया की भूमिका

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित किया जा सकता है कि प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत द्वितीय विश्व युद्ध में लोहिया की भूमिका का प्रसंग उपस्थित करना कहाँ तक युक्ति संगत है ? इस प्रश्न का उत्तर सांकेतिक रूप से हमें प्राप्त हो जायेगा यदि हम प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत लोहिया के देशीय एवं सर्व देशीय विचार परिधि में प्रवेश करने का प्रयत्न करें । जिस तरह से गुलाम भारत की दशा ने लोहिया के मन पर प्रहार किया उसी तरह से अन्तर्राष्ट्रीय जगत की दशा ने उनके विचार स्थल को झकझोरा । द्वितीय विश्व-युद्ध की घटना, अन्तर्राष्ट्रीय दशा की एक महत्वपूर्ण विडम्बना थी जिसने लोहिया को अपनी ओर आकृष्ट कर उत्पीड़ित किया तथा उन्हें सृजनात्मक विचार एवं उसके कार्यान्वयन के लिए प्रेरित किया । इसका प्रभाव राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भूमिका पर पड़ा है अतएव इस दृष्टि से राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भूमिका के विवेचन के पूर्व उपयुक्त प्रथम परिप्रेक्ष्य में लोहिया को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति लोहिया का दृष्टिकोण:-

सन् 1920 ई0 से अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

को प्रभावित किया । भारतीयों के मन पर रूसी क्रान्ति 1917 का भी बहुत प्रभाव पड़ा । दो विचारधाराएँ अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर भारतीय लोगों की थी एक का विचार यथा स्थितिवाद बनाये रखना एवं शक्ति-संतुलन बनाये रखना एवं साथ-साथ प्रजातंत्र एवं फासिस्ट विरोधी तथा संयुक्त सुरक्षा और विश्व शान्ति के लिए कार्यरत रहना था । जवाहर लाल नेहरू इसी विचारधारा के थे ।

एक दूसरा विचार मानवतावादी दृष्टिकोण को मानने वालों का था इस श्रेणी में मुख्य रूप से महात्मा गाँधी थे । यह श्रेणी एक नये विश्व का सपना लिये कार्य कर रही थी । स्वभावतः तात्कालीन विश्व की समस्याएँ जो साम्राज्यवाद के कुठाराघात, रंग-भेद की भीषण ज्वाला तथा दासता की पाशविकता से जकड़ा हुआ था महापुरुषों, राजनीतिज्ञों एवं राष्ट्र प्रेमियों को उनके विरूद्ध अभियान छेड़ने के लिए उन्मुख किया । परिणाम स्वरूप समस्त विश्व में साम्राज्यवादी विरोधी एवं राष्ट्रों के बीच समानता एवं स्वतंत्रता तथा युद्ध विरोधी वातावरण निर्मित करने के लिए एक अपूर्व प्रयास चल रहा था । भारत में इस श्रेणी के नायकों में राम मनोहर लोहिया का नाम भी लिया जा सकता है जिन्हें एक नवीन स्वप्निल विश्व के सृजन का भावार्थ एवं कर्म योग की शिक्षा युग पुरुष बापू से मिली थी ।

सन् 1939 ई0 का वर्ष भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के लिए भी बड़े महत्व का था । यूरोप में युद्ध के बादल दिखाई देने लगे थे । इस अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का प्रभाव भारत

के राष्ट्रीय आन्दोलन पर भी पूरी तरह पड़ रहा था । डॉ0 राम मनोहर लोहिया इन दिनों युद्ध विरोधी प्रचार में संलग्न थे । उनका कहना था कि भारत को किसी प्रकार भी युद्ध में किसी पक्ष के साथ नहीं जुड़ना चाहिए । वह इस बात पर बल देते रहे कि हमारा उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य शाही को भारत की भूमि से निष्कासित करना है । उनकी दृष्टि में पूँजी शाही साम्राज्य शाही और फासिज्म एक ही चीज के अलग-अलग स्वरूप की अभिव्यक्ति है[1] । लोहिया का कहना था कि एकाधिपति पूँजीपतियों द्वारा सत्ता में रहने के प्रयास से फाँसीवाद को बल मिला है तथा विदेशों में साम्राज्यवादी विजय एवं प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिला है ।[2]

24 मई सन् 1939 ई0 को लोहिया को पहली बार कलकत्ता में उनके द्वारा दिये गये भाषण के कारण गिरफ्तार किया गया । उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक क्रान्तिकारी एवं उत्तेजक भाषण दिया । भाषण का विषय था "भारत वर्ष और आगामी युद्ध" किन्तु दूसरे दिन लोहिया को जमानत पर

---

1. देखिए, दस्तावेज, साम्राज्य शाही के पाँच पायों के खिलाफ जनता का सम्मिलित संघर्ष, जन, मार्च-अप्रैल 1970, पृष्ठ - 57
   डॉ0 लोहिया ने साम्राज्यशाही के पाँच पाये बतलाये हैं (1) "ब्रिटिश साम्राज्य शाही के संरक्षण के लिए हमारी आर्थिक, सैनिक, वैदेशिक और व्यापार नीति पर हमारा अधिपत्य न होकर इसी का (ब्रिटेन) आधिपत्य", दूसरा पाया "हमारी देशी रियासतें हैं", तीसरा पाया "मजहबी विभाग और निर्वाचन क्षेत्र हैं", चौथा पाया "प्रांतीयता", पाँचवा पाया "रचनात्मक मनोवृत्ति" ।
2. कांग्रेस सोशलिस्ट, दि कोलैप्स ऑफ इन्टरनेशनल मोरेलेटी, 'बम्बई', फरवरी 26, 1938, खण्ड - 3, पृष्ठ - 148

रिहा कर दिया गया ।[1] तथा 14 अगस्त सन् 1939 को मजिस्ट्रेट ने उन्हें अभियोग से बरी कर रिहा कर दिया ।

1 सितम्बर सन् 1939 ई0 को हिटलर ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया और 3 सितम्बर को ब्रिटेन ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । इसी समय भारत के गर्वनर जनरल ने भारतीयों की सहमति लिये बिना उसे अपने सहयोगियों के तरफ युद्धकारी घोषित कर दिया । 9 अक्टूबर सन् 1939 ई0 को वार्धा में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई । इस बैठक में कांग्रेस कार्य समिति द्वारा 15 सितम्बर का वह प्रस्ताव रक्खा गया जिसमें भारत द्वारा युद्ध में सहयोग देने का आश्वासन दिया गया था । लोहिया ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए स्पष्ट रूप से कहा, "स्वतंत्रता के बारे में ऐसा समझौता नहीं करना चाहिए जिसमें युद्ध में सहायता देने का वचन पहले ही देना पड़े। युद्ध में सहायता देने का सवाल भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद ही उपस्थित हो सकता है । यह भ्रम मन से निकाल देना होगा कि ब्रिटेन को सहयोग देने से अपने आप स्वतंत्रता मिल जायेगी ।"[2]

इन्हीं दिनों लोहिया ने युद्ध के अस्त्र और घातक परिणामों की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करने के लिए "शस्त्रों का नाश हो" शीर्षक के अन्तर्गत

---

1. लोहिया के गिरफ्तारी का मुकदमा कलकत्ते के चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट के सामने चला जिसमें लोहिया ने स्वयं पैरवी की ।

2. इन्दुमति केलकर, लोहिया सिद्धान्त और कर्म, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 83

एक लेख लिखा । इस लेख का पढ़े लिखे लोगों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। इसी सन्दर्भ में लोहिया का यह वक्तव्य अहिंसा एवं स्वप्निल दुनिया की भावाभिव्यक्ति का आभास दिलाता है तथा निहत्थे लोगों पर हिंसक प्रहार कर घृणित साम्राज्यवादी व्यक्तित्व के विरोध में जन-जागरण का शंखानाद करता है । "जब हम शस्त्रों का आश्रय लेते हैं तो हमारा दिल कमजोर होता है । जो लोग शस्त्रों पर निर्भर रहते हैं वे अपने दिल पर निर्भर नहीं रहते हैं, वे शस्त्रों के गुलाम होते हैं सारी दुनियाँ में बालिग लोकशाही होनी चाहिए और साम्राज्यशाही को कोई जगह नहीं मिलनी चाहिए.. मैं ब्रिटेन का नाश नहीं चाहता, अंग्रेजों ने हमारे साथ नीच व्यवहार किया है लेकिन मैं उनके साथ बुराई नहीं करना चाहता । मुझे अफसोस है कि अंग्रेजों को आज भी दुनिया के राष्ट्रों को गुलाम करने वाली पद्धति का बोझ अपने ही कन्धे पर उठाना पड़ता है ।"[1]

सन् 1941 ई0 में अन्तर्राष्ट्रीय जगत विश्व-युद्ध के भयावह प्रकोप से प्रकंपित हो रहा था । इस प्रकपंन का प्रभाव भारत की राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम को दासता की बेड़ी तोड़ने के लिए साहसपूर्ण सुअवसर उपलब्ध करा रहा था । अचानक 4 दिसम्बर सन् 1941 को लोहिया सहित अन्य गिरफ्तार राजनेताओं

---

1. हरिजन, 25 अगस्त सन् 1940
लोहिया ने उपर्युक्त कथन अपनी गिरफ्तारी के एक मुकदमें में दिया था । 7 जून सन् 1940 को स्वराज्य भवन इलाहाबाद में, भारत सुरक्षा कानून के अधीन उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया । गिरफ्तारी का तात्कालिक कारण उनके द्वारा 11 मई सन् 1940 को उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिला के अन्तर्गत दोस्तपुर स्थान में दिया गया भाषण था । 1 जुलाई सन् 1940 को अदालत ने भारत सुरक्षा कानून के तहत लोहिया को दो वर्ष का कठोर कारावास दिया ।

को मुक्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार को बाध्य होना पड़ा । इधर 6 दिसम्बर सन् 1941 ई0 को जापान ने पर्लहारबर पर आक्रमण कर दिया तथा 3-4 महीने के अन्दर ही उसने एशिया के अनेक देशों पर अपना अधिकार जमा लिया । इस स्थिति से अंग्रेजी सरकार को भारत के बारे में अपनी नीति पर पुनः विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा । ब्रिटिश साम्राज्य के सिर पर एक बड़ा खतरा आ पड़ा था इसके कारण अंग्रेजों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं से बातचीत व समझौते से हल निकालने का निश्चय किया । इस घटना के प्रति लोहिया के दृष्टिकोण की झलक उनके द्वारा लिखे गये लेख "विश्वासघाती जापान या आत्म सन्तुष्ट ब्रिटेन" में मिलती है । यहाँ प्रस्तुत है इस प्रसंग में उनके लेखन का एक अल्पअंश -

"हिन्दुस्तान एशिया का एक लाचार और अपमानित राष्ट्र है, इसे भूलना नहीं चाहिए और जापान एक एशियाई ताकत है । अगर मैं केवल यूरोपीय नीतिशास्त्रज्ञ होता महात्मा गाँधी का, या अपने देश के इतिहास के पहलुओं का असर मुझ पर नहीं होता, तो मैं शायद "तोजो" का स्वागत करता ।[1] किन्तु मैं तोजो को उतना ही बुरा मानता हूँ जितना हिटलर और चर्चिल को, क्योंकि यह बुरा हत्याकाण्ड अगर इनमें से किसी एक की विजय से समाप्त होगा तो आज से ज्यादा अच्छी दुनिया बनाने की उम्मीदें मिट्टी में मिल जायेगी ।"[2] इसी

---

1. हरिजन 19 अप्रैल सन् 1942

2. वही, उपर्युक्त घटना के प्रति लोहिया के दृष्टिकोण जानने के लिए देखिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का अध्याय 1, पृष्ठ - 20

लेख के नीचे गाँधी जी ने लिखा - "मेरी उम्मीद है कि सर्भा सम्बन्धित इस प्रबन्ध के प्रति ध्यान देंगे ।

संक्षेप में द्वितीय विश्व युद्ध के समय अन्तर्राष्ट्रीय जगत की स्थिति के प्रति डॉ0 लोहिया के दृष्टिकोण एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ उनके सम्पर्क तथा प्रभाव का अवलोकन उनके निम्नलिखित कथन में देंखे । "ब्रिटिश साम्राज्यशाही, हिटलर और जापान के समान ही राक्षसी पाप है वह वर्ग प्रभुत्व और उपनिवेशवाद की प्रेरक शक्ति बन चुकी है । साम्राज्यशाही के अन्त के बिना दुनिया सुरक्षित नहीं रहेगी । ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने फासिज्म को प्रोत्साहित किया है और इस खेल में उत्पादक क्रीड़ा अपनी-अपनी औलादों को डर के मारे मारना चाहता है ।"[1]

उपर्युक्त दृष्टिकोण के अन्तराल में डॉ0 लोहिया ने चार सूत्रीय कार्यक्रम तैयार किया जिसका प्रयोजन राष्ट्रीय आन्दोलन की धारा को प्रबल बनाना था। यह कार्यक्रम इस प्रकार हैं ।

(1) युद्ध भर्ती का विरोध;

(2) देशी रियासतों में आन्दोलन;

---

1. इन्दुमति केलकर, पृष्ठ .25., द्वितीय विश्व युद्ध में भारत की भूमिका के प्रति लोहिया के दृष्टिकोण के लिए देखिए, राम मनोहर लोहिया (सम्पादक) कांग्रेस और युद्ध (यू0पी0 कांग्रेस युद्ध समिति का बुलेटिन नं0-1), संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी दिनांक अनंकित, पृष्ठ - 1-19

(3) युद्ध शुरु होने के बाद ब्रिटिश माल जहाजों से उतारने व उनपर लादने से इन्कार करने वाले मजदूरों का संगठन और

(4) युद्ध कर और युद्ध कर्ज को नामंजूर करना और नहीं देना

राष्ट्रीय आन्दोलन में लोहिया की भूमिकाः-

राष्ट्रीय आन्दोलन में डॉ० लोहिया की भूमिका को समझने के लिए दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण आन्दोलन की कड़ी को जानना अनिवार्य है । प्रथम सन् 1942 का भारत-छोड़ो आन्दोलन और द्वितीय गोवा मुक्ति आन्दोलन । इन दोनों में लोहिया की सर्वाधिक भूमिका दृष्टिगोचर होती है । अतएव इन्हीं दो संग्राम के विशेष सन्दर्भ में लोहिया की राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका को जानने का प्रस्तुत प्रयास होगा । तथापि कुछ अन्य घटनाओं का भी जिनका इन दो स्वतन्त्रता-संग्रामों से प्रत्यक्षतः संबंध नहीं है उनका भी यथास्थान सन्दर्भन किया जायेगा ।

सर्व प्रथम लोहियाके उस आशय को प्रस्तुत करना अपेक्षित जान पड़ता है जो स्वतंत्रता संबंधी अवधारणा से सम्बद्ध है । उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि आजादी क्या है ? उन्होंने आजादी के दो अर्थ बताये हैं- प्रथम सामान्य अथवा "प्रत्यक्ष" अर्थ और द्वितीय "गूढ़" अर्थ ।[1] प्रत्यक्ष अर्थ के अन्तर्गत देश को गुलामी से मुक्त कर स्वशासन की स्थापना करना और दूसरे गूढ़ अर्थ के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्वतंत्रता को देश की आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता के साथ सम्बद्ध करना

---

1. देखिए, दस्तावेज, साम्राज्य शाही के पाँच पायों के खिलाफ जनता का सम्मिलित संघर्ष, जन, वही, पृष्ठ - 55

होगा । अर्थात् देश की पूरी स्वतंत्रता जिसमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता के अतिरिक्त सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता सन्निहित है, लोहिया के अनुसार स्वतंत्रता का पूर्ण और व्यापक अर्थ है ।

स्वतंत्रता का उपर्युक्त अर्थ और उस अर्थ का व्यापक प्रयोजन यह सिद्ध करता है कि आजादी की लड़ाई की सार्थकता केवल अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होना नहीं माना जा सकता । गुलाम मुक्त भारत फिर भी गुलाम की बेड़ी से बंधा है यदि आर्थिक और सामाजिक गुलामी से मुक्त होने का प्रयास नहीं किया जा सका । लोहिया की इस दूर दृष्टि ने उन्हें आजादी के संग्राम में इन दोनों मोर्चों पर भी साथ-साथ युद्ध करने के लिए संकल्प एवं कर्म की ओर प्रेरित किया । सम्भवतः उन्होंने अपने ज्ञान और अनुभव से यह भली-भाँति समझ लिया था कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता निष्प्राण है तथा सामाजिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता अकल्पनीय है । अतएव पूर्ण स्वतंत्रता का अस्तित्व उपर्युक्त एक के अभाव में भी अदृश्य है ।

प्रथम अध्याय में यह उद्धघृत किया जा चुका है कि डॉ0 लोहिया अपने स्कूली विद्यार्थी जीवन में भी राष्ट्रीय आन्दोलन की गरमाहट को तेज करने के लिए एक अनुकूल वातावरण तैयार करने का प्रयास कर रहे थे । कलकत्ता में विद्यार्थियों को संगठित कर वे साइमन कमीशन के बहिष्कार के लिए पृष्ठभूमि की रचना कर रहे थे ।[1] लोहिया का यह प्रयास उनके राजनीतिक प्रशिक्षण

---

1. सन् 1928 ई0 "साइमन वापस जाओ" बहिष्कार अभियान को तेज करने के लिए लोहिया की भूमिका का प्रसंग प्रस्तुत है शोध प्रबन्ध का अध्याय एक पृष्ठ - 8

की पहली कड़ी मानी जा सकती है ।

लोहिया के ऊपर अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव पड़ रहा था । गाँधी, सुभाष, नेहरू आदि आन्दोलनकारियों की योजना एवं कार्यक्रमों का विश्लेषण करने की क्षमता उनमें बढ़ती जा रही थी । भारत की स्वतंत्रता के हेतु उपयुक्त संग्राम तकनीक के चयन के संबंध में निर्णय लेने के लिए वह सक्षम हो चुके थे । उनके परिपक्व दृष्टि को यह समझने में देर नहीं लगी कि भारतीय संग्राम को आजादी की ओर ले जाने के लिए सुभाषी योजना की अपेक्षा गाँधीवादी अहिंसक सत्याग्रही योजना एवं मार्ग अधिक प्रभावी होगा । फलस्वरूप उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में आद्योपान गाँधीवादी आन्दोलन तकनीक का सहारा लिया ।

इसी समय गाँधी जी का डाँडी मार्च उपर्युक्त अहिंसक सत्याग्रह का एक अभूतपूर्व प्रदर्शन था ।[1] यह प्रदर्शन नमक आन्दोलन के नाम से जाना जाता है । डॉ0 लोहिया आन्दोलन के सैद्धान्ति एवं व्यवहारिक पक्ष से अपने शोध प्रबन्ध तैयार करने के सन्दर्भ में ही पूर्णतः परिचित हो चुके थे । नमक आन्दोलन में उनके पिता पर अंग्रेजी शासक द्वारा किया गया अत्याचार की वेदना उनके

---

1. डाँडी मार्च के पूर्व लोहिया द्वारा गाँधी जी के दर्शन का प्रभाव उनके अन्तः मन को छू चुका था । सर्वप्रथम दसवर्ष की अवस्था में उनके पिता हीरालाल जी राम मनोहर लोहिया को गाँधी जी के पास लाये थे देखिए इस घटना की जानकारी के लिए शोध प्रबन्ध का अध्याय एक पृष्ठ - 4 उसके पश्चात् लोहिया ने गाँधी जी का दर्शन उस समय किया जब वह यूरोप से पढ़ाई समाप्त करने के पश्चात् भारत वापस आए । देखिए, लोहिया, मार्क्स गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 141

करुण मन को अहिंसक स्वतंत्रता संग्रामी बनने के लिए बार-बार कुरेद रहा था ।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में लोहिया के संघर्ष की कहानी विदेश से वापस आने के पश्चात् प्रारम्भ होती है । भारत-छोड़ो आन्दोलन 1942 उनके इस संघर्ष का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है । शोषण और दासता की नींव पर आधारित अंग्रेजी साम्राज्य के विशाल भवन को धराशायी करने के लिए लोहिया तुरन्त सत्याग्रह छेड़ने के पक्ष में थे । अतएव उन्होंने अपने भाषण एवं लेखों द्वारा गाँधी के नेतृत्व में आन्दोलन छेड़ने के लिए जन मानस को गरमाया । इस हेतु कुमायूँ के अलमोड़ा जिले में एक राजनीतिक सम्मेलन बुलाया गया । इस सम्मेलन की अध्यक्षता डॉ0 लोहिया ने स्वयं की । इसी समय उन्होंने महात्मा गाँधी के समक्ष प्रस्ताव रक्खा कि वे ब्रिटिश सरकार से माँग करे कि युद्ध के समय हिन्दुस्तान के सभी शहर "बिना पुलिस या फौज के शहर" घोषित किये जायें ।[1] गाँधी जी ने उनके प्रस्ताव के पक्ष पर अपनी सहमति देते हुए उसके अनुरूप कार्य करने का निर्णय लिया । गाँधी ने वाइसराय को पत्र लिखा[2] कि अहिंसात्मक सोशलिस्ट डॉ0 लोहिया ने भारतीय शहरों को बिना पुलिस या फौज के शहर घोषित करने की कल्पना निकाली है ।

---

1. लोहिया, मार्क्स गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 151

2. गाँधी जी ने लोहिया से कहा, "तुम मेरी अन्तः आत्मा की आवाज पर सचमुच हँसोगे । लेकिन मैं तुम्हारी योजना पर लगातार विचार करता रहा हूँ और मैंने गत रात दो बजे वाइसराय को इसी संबंध में पत्र लिखा है ।" वही,

उपर्युक्त घटना के इर्द-गिर्द वर्षों के कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों का उल्लेख करना भी आवश्यक है । सन् 1938 में कांग्रेस समाजवादी दल के लाहौर अधिवेशन में लोहिया राष्ट्रीय कार्यकारिणी के लिए चुने गये । इधर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने यह निर्णय लिया कि कोई भी कांग्रेस समाजवादी दल या राष्ट्रीय कार्यकारिणी का सदस्य किसी विभाग का सचिव नहीं हो सकता फलस्वरूप लोहिया ने विदेश विभाग के सचिव पद से अगस्त 1938 में अपना त्याग-पत्र दे दिया ।[1] सचिव पद पर रहते हुए उन्होंने बारह राष्ट्रों से सम्बन्ध स्थापित करके उनके विभिन्न संगठनों के बहुसंख्यक लोगों को वास्तविक दशा से परिचित कराया था ।

इस प्रकार लोहिया ने इस समय तक राष्ट्रीय रंगमंच पर अपना स्थान बना लिया था । उन्होंने इन्हीं वर्षों में स्वतंत्रता संबंधी कई ओज पूर्ण लेख लिखे जिसका व्यापक प्रभाव भारत के प्रबुद्ध स्वतन्त्रता संग्रामियों पर पड़ा ।[2]

लोहिया की रिहाई और क्रिप्स मिशन:-

सन् 1941 में अन्तर्राष्ट्रीय जगत में घट रही घटनाओं ने राष्ट्रीय

---

1. सन् 1936 में लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन में लोहिया ने भाग लिया उसी अधिवेशन में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के दफ्तर में एक पर राष्ट्र विभाग शुरू करने का प्रस्ताव मंजूर हुआ । इसके पश्चात् कलकत्ता युवक सम्मेलन से इलाहाबाद लौटने के बाद नेहरू ने लोहिया से परराष्ट्र विभाग का मंत्री पद संभालने का आग्रह किया । लोहिया ने इस पद को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधि को तेज किया ।
2. लोहिया के स्वतंत्रता संबंधी लेखों में दि स्ट्रगल फॉर सिविल लिबर्टीज, सन् 1936 इस लेख पुस्तिका में ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस के सन्दर्भ में स्वतंत्रता के अभिप्राय का विश्लेषण लोहिया ने किया है ।
देखिए, लोहिया [सम्पादक] कांग्रेस और युद्ध, संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी, इलाहाबाद दिनांक अनंकित पृ0 - 1-19

आंदोलन में गिरफ्तार नेताओं की रिहाई के लिए एक अनुकूल परिस्थिति पैदा कर दी। 4 दिसम्बर सन् 1941 ई0 को लोहिया को रिहा कर दिया गया ।[1] जापान के विरूद्ध सुरक्षा के लिए भारतीयों का समर्थन पाने के उद्देश्य से एक योजना के साथ स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा गया क्रिप्स मिशन का प्रस्ताव था अगर भारतीय नेतागण अपना आंदोलन सदा के लिए स्थगित कर दें तब द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् भारत को औपनिवेशिक स्वतंत्रता प्रदान की जायेगी । अनेक प्रयास के बावजूद यह योजना सफल नहीं हो पाई । लोहिया ने क्रिप्स मिशन का डटकर विरोध किया । उन्होंने इस सन्दर्भ में एक पुस्तिका में अपने विचारों को संयोजित कर प्रकाशित कराया । इस पुस्तिका का शीर्षक है, "द मिस्ट्री ऑफ सर स्टैफोर्ड क्रिप्स मिशन" ।[2] लोहिया ने इसमें यह विचार व्यक्त किया कि ब्रिटेन स्वेच्छा से अपने साम्राज्य की तिलांजलि नहीं करेगा क्योंकि ब्रिटिश राज्य की मौलिक जरूरत ब्रिटिश साम्राज्य है ।[3] लोहिया ने तर्क देते हुए कहा कि यदि चर्चिल कोई रियायत करता है तो इसका उद्देश्य विद्रोही राष्ट्र की प्रजा को उस समय खुश करना है जबकि ब्रिटिश राज्य की भौगोलिक

---

1. 11 मई 1940 को लोहिया द्वारा दोस्तपुर में दिये गये भाषण के अभियोग में 7 जून 1940 को स्वराज्य भवन, इलाहाबाद में गिरफ्तार कर लिया गया था । लोहिया ने अपने भाषण में प्रांतों में गवर्नर की तानाशाही के खिलाफ सविनय अवज्ञा आंदोलन छेड़ने के लिए आह्वान् किया था । देखिए, वृहद जानकारी के लिए हरिजन अगस्त 25, 1940, देखिए एन0सी0 मेहरोत्रा, लोहिया ए स्टडी, आत्मा राम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1978, पृष्ठ - 4-5
2. द मिस्ट्री ऑफ सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, पद्मा पब्लिकेशन, बम्बई, 1942
3. वही, पृष्ठ - 11

राजनीति संकटमय परिस्थितियों से गुजर रही है ।[1] लोहिया ने क्रिप्स मिशन के ड्राफ्ट उद्घोषणा को भारत का (बालकेनाइजेशन ऑफ इण्डिया) करने का एक प्रयास कह कर संबोधित किया । इस योजना में ब्रिटिश हित की रक्षा के लिए अनेक क्रम संयोजित किये गये थे ।

लोहिया "भारत-छोड़ो" आन्दोलन के परिवेश में:-

बम्बई में 8 अगस्त सन् 1942 ई0 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में भारत-छोड़ो प्रस्ताव पारित हुआ । दूसरे दिन प्रातःकाल महात्मा गाँधी और कांग्रेस के बड़े नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया । डॉ0 लोहिया अंग्रेजों की खूफिया पुलिस को धोखा देकर भाग निकले । इसके पश्चात् 22 मई सन् 1944 ई0 तक भूमिगत रहे । लगभग 21-22 महीनों के इस भूमिगत प्रवास में लोहिया राष्ट्रीय आन्दोलन को सक्रिय बनाने में कार्यरत रहे । बम्बई में केन्द्रीय संचालन मण्डल का गठन आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए किया गया था । डॉ0 लोहिया को उक्त मण्डल के नीति-निर्धारण पहलू पर परामर्श देने के लिए उत्तरदायित्व सौंपा गया । उस समय लोहिया और अच्युत पटवर्धन का ऐसा आग्रह था कि मानव हत्या और मानव हानि को छोड़कर भूमिगत आंदोलन चलाना चाहिए । तार-यन्त्र तोड़ना, हथियारों की रेल गाड़ियाँ बारूद लगाकर

---

1. द मिस्ट्री ऑफ सर स्टैफोर्ड क्रिप्स, वही, पृष्ठ - 18

उड़ाना, यातायात की व्यवस्था को तोड़ना, सरकारी कारोबार के मौके की जगहों पर कब्जा करना या उन्हें नष्ट करना भूमिगत आन्दोलन के प्रमुख अंग थे ।

डॉ0 लोहिया ने भूमिगत रहकर "जंगजू आगे बढ़े" पुस्तक की रचना की । इस पुस्तक का काफी प्रचार हुआ और लोगों पर उसका प्रभाव पड़ा । उन्होंने लिखा था कि "परिस्थितियों में नित्य होने वाले परिवर्तनों पर रोशनी डालकर नये-नये प्रतिकार पैदा करना और सामुदायिक कृत्ति के लिए संगठन खड़ा करना हमारा काम है । सिर्फ परिस्थिति के दबाव से हम कुछ लोग भूमिगत जिन्दगी गुजार रहे हैं लेकिन हर एक भारतीय को खुद को आजाद समझना होगा । "मैं आजाद हूँ" गाँधी का यह ऐलान ही हमारा मकसद है । ब्रिटिश राज्य के प्रति दबी हुई नफरत स्वाधीनता की प्रबल भावना में परिवर्तित होनी चाहिए । यश अपयश की परवाह न करके स्वातन्त्रय उत्थान जनता को करना चाहिए । "मैं आजाद हूँ" यही ललकार आज निहत्थे भारतीयों को उद्धृत करनी होगी ।"[1]

वास्तव में लोहिया का स्वभाव भूमिगत कार्य की दृष्टि के प्रतिकूल था । मुक्त विचार और गाँधीवादी परम्परा का प्रभाव उन पर पहले से ही था। कलकत्ते में मानिकतल्ला पोस्ट आफिस को जब उनकी प्रेरणा से लुटवाया गया तब उन्होंने कार्यकर्त्ताओं को यह सलाह दी थी कि लूट का एक भी पैसा खुद

---

1. उद्धृत - इन्दूमति केलकर, पृष्ठ - 44

के लिए खर्च नहीं करना ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के इस चरण के दौरान बम्बई में कुछ गुप्त रेडियो केन्द्र चलाए जाते थे । लोहिया का रेडियो संचालन के दोनों गुटों से सम्पर्क था । उन्होंने अपने प्रयत्न से दोनों गुटों के बीच समझौता कराकर उन्हें एकीकृत किया । इस रेडियो संगठन को "कांग्रेस रेडियो" के नाम से जाना जाता है । 13 अगस्त सन् 1942 से 14 नवम्बर सन् 1942 तक के 94 दिनों की कांग्रेस रेडियो के कार्य संचालन का नेतृत्व लोहिया ने अपने हाथों में लिया । इस अवधि में उन्होंने ब्रिटिश शासन के विरूद्ध युवा और किसानों, पुलिस और रारकारी नौकरों स्त्री और पुरुषों के मानस स्थल को अपने भाषणों के प्रसार के द्वारा राष्ट्र प्रेम के प्रति उद्गार जागृति कर दिया । डॉ0 लोहिया ने अपने भूमिगत प्रवास में आन्दोलन की गति को भूमिगत पत्रक "करेगें या मरेगें" शीर्षक के अन्तर्गत विचार प्रसारित कर लोगों को उत्तेजित किया ।

उपर्युक्त ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी भारत छोड़ो आन्दोलन में भूमिगत रहकर सक्रिय बनाने के आरोप में लोहिया को 20 मई सन् 1944 ई0 को गिरफ्तार कर लाहौर जेल भेज दिया गया । लाहौर जेल में उन्हें दी गई यातनाओं में सोने न देना तथा अन्य शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ थीं । डॉ0 लोहिया ने लाहौर किले से प्रो0 लास्की को लिखे गये एक पत्र में ब्रिटिश सरकार के इस दुर्व्यवहार का मर्म स्पर्शी भाव व्यक्त किया है "मैं यहाँ यह वर्णन करना चाहूँगा कि मेरे साथ दुर्व्यवहार किया गया ।

अनेक युक्तियों से लगभग चार महीने तक मुझे [illegible] रक्खा गया जब मैंने विरोध किया तो उन लोगों ने मुझे प्रताड़ित किया एवं खड़े रहने पर बाध्य किया । जब तब मुझे चारों तरफ से बाँध कर प्रताड़ित किया गया तथा मुझे शारीरिक कष्ट देकर इस प्रकार अपमानित किया जो भुलाया नहीं जा सकता। मैं इस वास्तविकता को नहीं भुलाना चाहूँगा कि मुझे क्या-क्या कष्ट मिले क्योंकि कोई भी कष्ट असहनीय नहीं होता । तथापि कभी यह मेरी सहन-शक्ति के बाहर रहा होगा ।"[1]

जब लोहिया का उपर्युक्त पत्र समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ तो लोगों के मन में फिर एक बार ब्रिटिश शाही के अत्याचार के खिलाफ रोष प्रकट होने लगा । उक्त पत्र में लोहिया ने जय प्रकाश नारायण और अपनी नजरबन्दी, देश में हुए अत्याचार, लाहौर किले में अपनी दुर्गति, सरकार की जाहिर नीति और विशेष रूप से लगाये गये छूटे आरोपों[2] के संबंध में खुली-खुली बातें लिखीं । कुछ दिनों के बाद लोहिया और जय प्रकाश नारायण को लाहौर किले से हटाकर आगरा किले में भेज दिया गया । सन् 1945 ई0 में द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हो गया था और ब्रिटेन में "लेबर पार्टी" की सरकार

---

1. देखिए, मैनकाइण्ड, फरवरी 1968, पृष्ठ - 45-46 में प्रकाशित लोहिया द्वारा लिखा गया लास्की के नाम पत्र ।

2. देखिए, मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 170

बन गई थी । इस कारण 11 अप्रैल सन् 1946 को लोहिया और जय प्रकाश नारायण को भी रिहा कर दिया गया ।

रिहा होते ही लोहिया ने अपनी गतिविधि तीव्र कर दी इसी समय भारत में कैबिनेट मिशन आया था इस मिशन के विरोध में लोहिया ने जनमानस जागृति करने का प्रयास किया । 24 अप्रैल सन् 1946 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्रों की सभा में बोलते हुए लोहिया ने कहा - "भारतीय जनता की शक्ति देखकर ही कैबिनेट मिशन भारत में आया है, संभव है कि समझौते की यह बातचीत असफल हो जायें, तो लोगों को अपना मन गंभीर बनाये रखकर जब तक आवश्यक हो, स्वातन्त्रय आन्दोलन चलाने की हिम्मत रखनी चाहिए ।"[1] लोहिया ने अपने भाषण की भाषा हिन्दी रक्खी तथा छात्रों से यह अपील की कि वे अंग्रेजी जबान का बहिष्कार करें तथा अध्यापकों को स्वदेशी भाषा में शिक्षा देने के लिए बाध्य करें ।

राष्ट्रीय आन्दोलन में डॉ0 लोहिया की भूमिका का मूल्यांकन हमें उनके योगदान के संबंध में निम्नलिखित तथ्यों का ज्ञान कराता है -

1. युद्ध विरोधी उप-समितियाँ बनाना,
2. पाक्षिक पत्र निकालना,
3. फौजी भर्ती का विरोध करना,

---

1. उद्धृत, इन्दूमति केलकर, पृष्ठ - 113

4. आम सभाएँ करना

5. युद्ध सामग्री पर रोक लगाना

6. स्वयं सेवकों का संगठन बनाना

7. आन्तरिक एकता हासिल करना

8. विदेशी वस्त्र बहिष्कार करना

9. निबन्ध, लेख, भाषण आदि द्वारा ब्रिटिश शासन के विरोध में जनमानस तैयार करना ।

गोवा स्वाधीनता आन्दोलन में लोहिया की भूमिका:-

चार बरसों के लम्बे कारावास और यातनाओं के कारण लोहिया का स्वास्थ्य बहुत गिर गया था । उनके गोवावासी मित्र जूलियो मैनेजिस ने लोहिया को विश्राम करने के लिए गोवा आमंत्रित किया । 10 जून सन् 1946 ई0 को लोहिया गोवा पहुँचे । गोवा पुर्तगाली क्रूर शासन का सदियों से शिकार था । नागरिकों की स्वतंत्रता समाप्त कर दी गई थी । लोहिया ने स्वयं इस प्रसंग में लिखा है -

"मैं वहाँ अपने मिश्र जूलियो मैनेजिस से मिलने गया था एवं वहाँ ठहरने के तीसरे एवं चौथे दिन सभी तरह के लोग, विद्यार्थी, सिपाही, शिक्षक, व्यापारी, कर्मचारी उनसे मिलने आए एवं उनसे अपनी स्थिति बतलाई कि उन्हें किसी भी तरह की नागरिक आजादी नहीं है, यहाँ तक कि वे विवाह का निमंत्रण पत्र भी बिना सरकारी आदेश प्राप्त किए नहीं छपा सकते तथा और भी इसी

तरह की कई बातें होती रहती थीं ।"[1] लोहिया ने गोवावासियों के अनुरोध पर गोवा मुक्ति आन्दोलन का नेतृत्व किया ।

18 जून सन् 1946 को गोवा के मडगाँव स्थान पर अपने भाषण की प्रतियाँ बँटवाई क्योंकि भाषण के पूर्व ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। लोहिया के भाषण का सार था "गोवा की जनता का दिल दर्द से भरा है, उनकी आँखें हिन्दुस्तान की ओर लगी हैं ... यहाँ की पुर्तगाली सत्ता की चिन्ता मुझे नहीं है क्योंकि पुर्तगालियों के बड़े भाई अंग्रेज की सत्ता खत्म होने के बाद पुर्तगाली सत्ता भी अवश्य नष्ट होगी ।"[2] अगले दिन लोहिया को रिहा कर दिया गया ।

गोवा छोड़ने के पूर्व लोहिया ने पुर्तगीज सरकार को चेतावनी दी कि यदि तीन महीने के अन्दर गोवावासियों को नागरिक स्वतंत्रता नहीं दी जाती तो वह गोवा में फिर प्रवेश करेंगे । इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ की जनता को बिना सरकारी आदेश के सभा और भाषण की स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

दूसरी ओर नेहरू तथा पटेल ने गोवा के मुक्ति आन्दोलन को विशेष महत्व नहीं दिया इसके अतिरिक्त जय प्रकाश नारायण ने भी कहा कि गोवा के सवाल को इतना महत्व देना उचित नहीं क्योंकि दूसरे भी महत्वपूर्ण कार्य

---

1. मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 158
2. उद्धृत, ओंकार शरद; लोहिया, इलाहाबाद, 1967, पृष्ठ - 164-65

हैं । लोहिया के मन को इससे बड़ी चोट लगी । नेहरू ने इसी समय गोवा के संबंध में यह वक्तव्य दिया था कि "अब कांग्रेस भारतीय आजादी की लड़ाई में अपनी शक्ति केन्द्रित कर रही है, छोटी-छोटी लड़ाइयों की तरफ हमें ध्यान देने की फुर्सत नहीं है । भारत के खूबसूरत कपोल पर गोवा एक छोटा सा फोड़ा है, ब्रिटिश सत्ता मिटाने से पुर्तगीज सत्ता आप ही मिट जायेगी ।"[1]

उपर्युक्त बयानों से गोवावासियों को भारत के नेताओं से बड़ी निराशा हुई । इन सब कठिनाइयों के बावजूद भी लोहिया ने गोवा जाने का निश्चय किया । 29 सितम्बर सन् 1946 ई0 को पुर्तगीज सरकार ने कोलेम स्टेशन पर ही लोहिया को गिरफ्तार कर लिया । दस दिनों के कारावास के बाद उन्हें 8 अक्टूबर सन् 1946 को रिहाकर दिया गया । बाद में गाँधी जी के सुझाव पर लोहिया गोवा नहीं गये किन्तु गोवावासियों के नाम उन्होंने एक "खुला पत्र" जारी किया । पत्र के अन्त में उन्होंने कहा कि दिल्ली या संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर मदद के लिए न देखें उनकी स्वतंत्रता उनके पास है । पाँच लाख जनतांत्रिक लोग पुर्तगीज को बाध्य कर सकते हैं । लोहिया ने पत्र में आगे लिखा

---

1. इन्दूमति केलकर, पृष्ठ - 136
नेहरू ने 10 जुलाई सन् 1946 ई0 को प्रेसवालों के सम्मुख उपर्युक्त बयान दिया था । 12 जुलाई 1946 को नेहरू के उस वक्तव्य का उत्तर देते हुए लोहिया ने एक बयानजारी किया, "गोवा भले ही भारत के कपोल का फोड़ा हो सकता है लेकिन कश्मीर के दूसरे फोड़े की अपेक्षा पहले फोड़े ने ही भारत के मुँह को बदसूरत बनाया है । भारत के अन्य किसी भी हिस्से से गोमांतकीय का मन ज्यादा बन्धन में बँधा हुआ है । गोवा के भावनाशील लोग जुल्मी कानून के खिलाफ बहादुरी से खड़े हो गये हैं और भारतीय जनता की हमदर्दी उनकी तरफ दौड़ रही है", उद्धृत, इन्दूमति केलकर, पृष्ठ - वही

कि गिरफ्तार हो जाओ, मार खाओ, बन्दूक की गोली का प्रहार सहो किन्तु मोर्चा और प्रदर्शन जारी रक्खो और कर का भुगतान न करो ।[1]

यहाँ यह दृष्टव्य है कि गोवा की मुक्ति आन्दोलन के प्रश्न पर गाँधी और लोहिया का दृष्टिकोण प्रायः एक समान था जबकि नेहरू आदि अन्य नेताओं का दूसरा दृष्टिकोण था जो इस समय गोवा आन्दोलन को चलाये जाने के पक्ष में नहीं थे । गोवा के मुक्ति संग्राम में लोहिया की भूमिका की प्रशंसा करते हुए गाँधी जी ने गोवा के वायसराय को एक पत्र लिखा था जिसका मूल अंश यहाँ उद्धृत है :-

"अखबारों से पता चलता है कि डॉ0 लोहिया के कथनानुसार 188 वर्षों से गोवा की जनता, सभा और संगठन संबंधी अधिकारों से वंचित है । लोहिया ने स्वभावतः हुकुम तोड़ा । अपनी कृत्ति द्वारा उन्होंने नागरिक स्वतन्त्रता की और खासकर गोमांतकियों की सेवा की है । डॉ0 लोहिया की राजनीति शायद मुझसे भिन्न हो सकती है, लेकिन उन्होंने गोवा में जाकर उधर की कलंकमय जगह पर अपनी अँगुली रक्खी है, और इस कारण मैं उनकी तारीफ करता हूँ। उन्होंने जो मशाल प्रज्ज्वलित की है उसे गोवा के नागरिक अगर बुझ जाने देंगे तो उनके लिए बहुत बड़ा खतरा होगा । आप और गोवा के नागरिक दोनों को

---

1. देखिए, मैनकाइण्ड, अगस्त 1969, पृष्ठ - 49

2. हरिजन, 30 जून 1948

ही बधाई देनी चाहिए कि उन्होंने यह मसाल जलाई ।"[1]

संक्षेप में यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि गोवा मुक्ति आन्दोलन की मसाल सर्वप्रथम लोहिया ने जलाई । गोमांतवासियों में पुर्तगीजियों से जूझने का साहस एवं मनोबल लोहिया ने जगाया । लोहिया के इस योगदान को गोवा के नर-नारियों ने स्वतंत्रता का मूल मंत्र मानकर आने वाले समय में उसका प्रयोग किया । गोवा की नारियों ने अपने लोक गीतों में लोहिया का नाम जोड़ा है-

"पहिली माझी ओवी, पहिले माझ फूल
भक्ती ने अर्पिन लोहिया ना ।"

गोवा में ही नहीं, अपितु नेपाल में भी डॉ0 लोहिया ने जनता के मौलिक अधिकारों की रक्षा हेतु वहाँ की कांग्रेस का साथ दिया जो नेपाल के राणाओं की निरंकुश तानाशाही के विरूद्ध संघर्ष कर रही थी । नेपाल की कांग्रेस ने वाणी-स्वतंत्रता और अन्य जनतांत्रिक अधिकारों के लिए आन्दोलन चलाया था । डॉ0 लोहिया ने जनवरी सन् 1947 ई0 में कांग्रेस स्थापित करने की प्रेरणा दी थी । और पत्रकारों से वार्ता करते हुए उन्होंने कहा था कि, नेपाल की जनता को विचार और वाणी की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए ।[1] इस हेतु 25 मई 1949 ई0 को दिल्ली में उन्होंने एक सभा की, जुलूस निकाला और नेपाली दूतावास के समक्ष जन-प्रदर्शन किया ।

---

1. महात्मा गाँधी, हरिजन, 11 अगस्त सन् 1946 ई0

स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात् दोनों समयों में डॉ0 लोहिया का जीवन विद्रोही रहा । यदि एक में विदेशी सत्ता के विरूद्ध संघर्ष किया तो दूसरे स्वतंत्र भारत में उन्होंने उन शक्तियों और समस्याओं पर उँगली रखी जो भारतीय क्रान्ति के मार्ग में बाधक हैं, और उनके विरूद्ध व्यापक आन्दोलन संगठित किये - अंग्रेजी के प्रभुत्व के खिलाफ, जाति-प्रथा के खिलाफ, दिमागी जड़ता और गुलामी के खिलाफ, नर-नारी समानता के लिए, दामों की लूट के खिलाफ, शासक वर्ग की विलासिता के खिलाफ, सादगी और कर्त्तव्य की भावना के लिए, सीमा सुरक्षा के लिए और देश के नकली बँटवारे के खिलाफ,[2] गरीब किसानों को राहत देने, और नए ढंग से खेती-कारखानों के विकास के लिए । उन्होंने प्रयास किया कि समाजवादी दल ऐसे सवालों पर सिविल नाफरमानी ला कर न सिर्फ लोगों का मन बदले, बल्कि दृढ़-संकल्प वाले अहिंसक लड़ाकुओं का एक समूह भी संगठित करें । इन सवालों को लेकर उन्होंने समाजवादी दल ही नहीं बल्कि अन्य राजनीतिक दलों की भी दृष्टि को बदलने की कोशिश की, ताकि ये समस्याएँ भारत की संगठित राजनीति का विषय बनें, और राजनीति के टकराव में इन समस्याओं को हल करने वाली शक्तियाँ फूँटे ।

---

1. इन्दूमति केलकर, लोहियाः सिद्धान्त और कर्म, पृष्ठ - 125
2. डॉ0 लोहिया भारत-पाकिस्तान विभाजन को एक नकली बँटवारा मानते थे ।

अध्याय - षष्ठम्

डॉ0 राम मनोहर लोहिया के राजनीतिक विचार

समाजवादी चिन्तन में आर्थिक तत्व सर्वाधिक प्रभावशाली होता है, पर डॉ0 लोहिया के समाजवादी दर्शन में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक तत्व अपना महत्वपूर्ण स्थान ही नहीं रखते हैं वरन् एक दूसरे से जुड़े हुए हैं ।[1] समाजवाद एक जीवन दर्शन है और जीवन में इन सभी तत्वों का यथोचित स्थान है । अनार्थिक तत्वों में राजनैतिक तत्व सर्वाधिक महत्व का है । इसके अनुसार ही राज्य का आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक ढाँचा निर्धारित होता है । भिन्न राजनैतिक व्यवस्थाओं में नागरिकों एवं राज्यों के सम्बन्ध भिन्न प्रकार के होते हैं । अतः राजनैतिक व्यवस्था कैसी हो, यह प्रश्न समाजवादी चिन्तन में बहुत महत्वपूर्ण है । यह प्रश्न ही यह निश्चित करता है कि समाजवादी दर्शन व्यक्ति को कहाँ तक स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करता है ।

डॉ0 लोहिया एक ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जो वर्ग विहीन एवं वर्ण-विहीन हो । जाति व्यवस्था के तो वह कट्टर विरोधी थे । उन्होंने व्यक्ति के सांस्कृतिक उत्थान को भी आवश्यक बतलाया । उनके अनुसार, व्यक्ति

---

1. लोहियाः विल टू पावर, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ-80
   डॉ0 वी0पी0 वर्मा - माडर्न इण्डियन पोलिटिकल थॉट - पृष्ठ - 430
   डॉ0 शोभा शंकर - आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन, पृष्ठ - 184

और समाज परस्पर आश्रित होते हैं । व्यक्ति का उन्नयन सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए आवश्यक है । डॉ0 लोहिया का राजनीतिक चिन्तन बड़ा ही व्यापक है जिसमें व्यक्ति और समाज से संबंधित सभी पहलुओं पर विचार किया गया है । उनका राजनीतिक चिन्तन उनके समाजवादी दर्शन से ही उद्भूत हुआ है। उनके राजनीतिक चिन्तन के प्रमुख तत्व हैं - राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या, धर्म और राजनीति का सम्बन्ध, राज्य संबंधी विचार, जन शक्ति का महत्व, सविनय अवज्ञा (सिविल नाफरमानी) वाणी स्वतन्त्रता एवं कर्म नियंत्रण मौलिक अधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय संबंधी विचार । इन्हीं का यहाँ विवेचन प्रस्तुत है :-

(1) राजनैतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या:-

डॉ0 लोहिया की दृष्टि से राजनीतिक इतिहास को गति देने वाले कुछ मौलिक सिद्धान्त होते हैं जिनमें तीन प्रमुख हैं - (1) देशों का उत्थान व पतन होता है, वैभव, धन का स्थान बदलता रहता है । देश के बाहरी संबंधों में उतार-चढ़ाव होता रहता है, (2) देश के अन्दर वर्ग-वर्ण का झूला झूलता रहता है, और (3) सभी देश शारीरिक और सांस्कृतिक ढंग से मिलन भी किया करते हैं ।[1] इतिहास को गति देने वाले उपर्युक्त तीनों सिद्धान्त एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, क्योंकि एक दूसरे के लिए वे कार्य-कारण का कार्य करते हैं ।

---

1. डॉ0 लोहिया: जाति प्रथा, पृष्ठ - 42

डॉ0 लोहिया का इतिहास के चक्र-सिद्धान्त में विश्वास था । उनके अनुसार, इतिहास अबाध रूप से चक्रवत् गतिशील रहता है । उनकी मान्यता थी कि "विश्व के इतिहास को प्राचीन, मध्य और आधुनिक युगों में बाँटना, उनमें एक अबाध या एक-एक कर हुआ उत्थान बताना एक सांस्कृतिक बर्बरता है जो किसी प्रकार भी दिलचस्प नहीं है ।"[1] वैसे यह देखा जाता है कि समस्त सभ्यताओं में भाषा तथा आचरण और जीवन के ढंग एवं उद्देश्य बुनियादी तौर पर एक ही ढंग से विकसित एवं परिपक्व होते हैं, पर उनमें अनेक आर्थिक, सामाजिक तथा भौगोलिक कारणों से ऐसे बदलाव आते हैं, जिनसे उनके उत्थान-पतन की स्थितियाँ भिन्न हो जाती है । डॉ0 लोहिया का विचार था कि "ऐतिहासिक समूहों के बारे में और मानव सभ्यता तथा उसके सांस्कृतिक क्रमों के लिए, यदि यह सच है कि "जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य," तो यह भी उतना ही सच है कि "जो मरता है वह फिर पैदा होगा ।"[2] अतः यह कहना उचित ही है कि राष्ट्रों और सभ्यताओं का उत्थान-पतन सदा होता रहता है जैसा कि हमें भारत में गुप्त - साम्राज्य, रोमन साम्राज्य, ब्रिटिश साम्राज्य आदि के उत्थान-पतन से ज्ञात होता है ।

राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या से डॉ0 लोहिया का तात्पर्य यह था कि इतिहास चक्र में सभी देशों का समान रूप में उत्थान-पतन होता

---

1. डॉ0 लोहिया: इतिहास चक्र, पृष्ठ - 17
2. डॉ0 लोहिया: इतिहास चक्र: 17

है, चाहे कोई भी देश कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो । कोई देश हमेशा के लिए न तो वैभव, शक्ति और धनवान होता है और न हमेशा के लिए उनसे रहित । भारत, रोम, चीन और अरब देश उच्चतम श्रेणी में रह चुके हैं, पर उनका भी पतन हुआ और पश्चिम योरोप ने शिखर स्थान को प्राप्त किया और यह महाद्वीपों में श्रेष्ठ गिना जाने लगा । इसलिए डॉ0 लोहिया ने कहा था कि "शक्ति और समृद्धि हर युग में बराबर एक क्षेत्र से दूसरे में बदलती रही है। कोई भी सदा इतिहास की उच्चतम चोटी पर नहीं बैठा रहा । .... अब तक का समस्त मानव इतिहास वर्ग और वर्ण के आन्तरिक बदलाव और शक्ति तथा समृद्धि के एक क्षेत्र से दूसरे में वाह्य परिवर्तन का इतिहास रहा है ।"[1]

वर्ग और वर्ण का झूला:-

डॉ0 लोहिया की राजनीतिक इतिहास की समाजवादी व्याख्या में वर्ग और वर्ण का झूला भी झूलता रहता है । उन्होंने यह माना कि ये दोनों ही वर्ग तथा वर्ण सभी समाजों की विशेषताएँ हैं जो सभी जगह मिलती हैं । उन्होंने कहा कि "जन्मजात वर्गीकरण या धर्म द्वारा उसकी मान्यता वर्णों का आवश्यक गुण नहीं है । वर्ग से वर्ण की मित्रता उस स्थिरता से होती है जो वर्ग - संबंधों में आ जाती है, कोई व्यक्ति, अपने से ऊँचे वर्ग में नहीं जा सकता और कोई भी वर्ण अपनी सामाजिक स्थिति और आमदनी में ऊपर नहीं उठ सकता ।"

---

1. डॉ0 लोहिया: इतिहास चक्र, पृष्ठ - 49

अस्थिर वर्ण को वर्ग कहते हैं । स्थायी वर्ग वर्ण कहलाते हैं । हर समाज या सभ्यता में वर्ग से वर्ण और वर्ण से वर्ग का बदलाव हुआ है । यही बदलाव लगभग सभी आन्तरिक घटनाओं की जड़ में होता है । यह करीब-करीब हमेशा ही न्याय और बराबरी की माँगों से प्रेरित होता है ।"[1] डॉ0 लोहिया की दृष्टि में न्याय, समानता आदि की माँगे शून्य से उत्पन्न न होकर, वर्ग व वर्ण-संघर्ष के परिणाम हैं ।

डॉ0 लोहिया के अनुसार, भारत में भी वर्ग एवं वर्ण के बीच बदलाव, उतार-चढ़ाव की कथा अनवरत चलती रही । इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि "आन्तरिक वर्ण-निर्माण और वाह्य अधः पतन साथ-साथ चलता है, चाहे दोनों के बीच काल का जो भी अन्तर रहे । पूरे समाज का बढ़ता कौशल निश्चित रूप से विभिन्न वर्गों के भीतरी हरकत व उतार-चढ़ाव के साथ जुड़ा हुआ है ।"[2] उन्होंने माना कि देश-काल की परिस्थिति के अनुसार वर्ग और वर्ण दोनों अपने स्वरूप एवं उद्देश्य में भिन्न होते हैं । विभिन्न देशों के वर्ण-निर्माण में भी अन्तर होता है । भारत में वर्ण - व्यवस्था का आधार प्रारम्भ में गुण-कर्म था और कालान्तर में इसका आधार जन्म हो गया । "भारत इतने समय तक वर्ण-व्यवस्था के फलस्वरूप तन्द्रा और सड़न की स्थिति में रहा कि

---

1. डॉ0 लोहिया: इतिहास चक्र: पृष्ठ - 37
2. डॉ0 लोहिया: वही, पृष्ठ - 41

उसकी नई प्राप्त शक्ति वर्णों को ढीला करके वर्गों में बदल रही है और आन्तरिक-असमानता को समाप्त करने का संघर्ष प्रारम्भ हो गया है ।"[1] लेकिन डॉ0 लोहिया ने यह आशा व्यक्त की कि एक अन्य प्रकार की वर्ण-व्यवस्था पैदा हो सकती है जिसमें राजनीतिक दल, प्रबंधक वर्ग और स्वतंत्र-पेशा वर्ग सभी अपने उच्चतम स्थानों पर स्थिर हो जाएँ और बाकी बची आबादी निम्न स्तर के द्विज वर्णों में बँट जाये । नये वर्णों का निर्माण तो सदैव चलता रहता है । इस प्रकार डॉ0 लोहिया का निष्कर्ष यह है "अब तक का समस्त मानवीय इतिहास वर्गों और वर्णों के बीच आन्तरिक बदलाव, वर्गों की जकड़ से वर्ण बनाने और वर्णों के ढीले पड़ने से वर्ग बनने का ही इतिहास रहा है ।"[2]

शारीरिक और सांस्कृतिक मिलनः-

डॉ0 लोहिया के चक्र-सिद्धान्त के अनुसार सभी राष्ट्र कभी न कभी उच्चतम चोटी पर बैठते हैं और उन्नत दिनों में अपनी संस्कृति का विकास और प्रसार करते हैं । इस क्रम के साथ मनुष्य जाति का पारस्परिक सांस्कृतिक और शारीरिक सम्बन्ध होता है । सभी ऐतिहासिक कालों में मनुष्य ने पद्धति, भाषा, व्यवहार की वस्तुओं उत्पादन के तरीकों, विचारों, धर्मों में एक दूसरे की समीपता का प्रयत्न किया है ।"[3] अपने युग में ढाका का मलमल विश्व में उतनी ही

---

1. डॉ0 लोहियाः इतिहास चक्रः पृष्ठ - 48
2. डॉ0 लोहियाः वहीः वही
3. डॉ0 लोहियाः इतिहास चक्रः पृष्ठ - 65

दूर तक फैला जैसा आज अमरीका का नाइलन । ग्रीक, संस्कृत अथवा अरबी सभी भाषाएँ समय-समय पर फैली । इस्लाम, हिन्दू, इसाई आदि धर्मों के अपने-अपने समय रहे हैं । इस प्रकार तमाम संस्कृतियाँ अपने पश्चिम में या अपने पूर्व में और दूसरी दिशाओं में फैली हैं, अगणित लोगों को अधीनस्थ किया है, लेकिन सम्पूर्ण संसार को कभी नहीं । अब तक शारीरिक और सांस्कृतिक समीपता की यह प्रक्रिया एक सीमा तक ही संभव रही है और इसमें कभी-कभी बिखराव भी आये हैं । डॉ० लोहिया अब इस सीमा और बिखराव को समाप्त कर सम्पूर्ण मानवता की सर्वांगीण समीपता लाना चाहते हैं । उनके ही शब्दों में, "लेकिन अब समय आ गया है कि स्वेच्छित समीपता आये जिसमें एक समूह को दूसरे की पराधीनता न स्वीकारनी पड़े और जिसके द्वारा संसार के सभी लोग समझदारी से नियोजित करके मानव जाति की एक बहुरंगी मिलावट निमित्त करने में सफलता प्राप्त करें ।"[1]

इस प्रकार डॉ० लोहिया ने आशा व्यक्त की कि आज विश्व में ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनमें मनुष्य वर्णों की जड़ विषमता, वर्गों की लचीली विषमता, और दोनों ही स्थितियों में निहित अन्याय और शोषण, क्षेत्रीयता और हिंसा के चक्र को तोड़कर एक सम्पूर्ण कौशल और बहुरंगी मिलन की शोषण रहित विश्व सभ्यता का निर्माण कर सकता है, जो राष्ट्रों के वाह्य संघर्ष से मुक्त हो, जिसमें मनुष्य स्वतंत्रय, समृद्ध और मन से सुखी हो, और अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का

---

1. डॉ० लोहिया: इतिहास चक्र: पृष्ठ - 68

विकास कर सके । इस हेतु उन्होंने अपेक्षा की कि विश्व मानव जाति के बिखराव के क्रमों को भुला दें और पुनः संगठन के क्रमों पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। इसके लिए मानव की समझदारी और इतिहास की तृतीय चालक शक्ति उनकी दृष्टि में अधिक सहयोगी सिद्ध होगी ।

(2) धर्म और राजनीति का सम्बन्धः-

राज्य तथा धर्म को एक कड़ी में जोड़ने का प्रयास प्रारम्भिक काल से ही हुआ है । प्राचीन काल में राज्य को एक धार्मिक संस्था माना जाता था । प्लेटो और अरस्तू ने राज्य को नैतिकता से सम्बद्ध किया था । यहूदी राज्य के औचित्य को धार्मिक आधार पर ही सिद्ध किया गया था । रोमन राज्य की उत्पत्ति तथा अस्तित्व का आधार धर्म ही था । सर्वप्रथम मैकियावली पहला चिन्तक था जिसने धर्म को राजनीति से अलग किया । मार्क्स ने धर्म को अफीम की गोली बताकर राजनीति से पूर्णतः विलग किया । परन्तु कान्ट, हीगल, बोसांके, ग्रीन आदि आदर्शवादी विचारकों ने राज्य को धर्म और नैतिकता से सम्बद्ध करने का प्रयत्न किया । संक्षेप में धर्म और नैतिकता में क्या सम्बन्ध है ? यह प्रश्न बहुत ही मनोरंजक और महत्वपूर्ण है । अब हम डॉ0 लोहिया के धर्म और राजनीति सम्बन्धी विचारों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे :-

(1) ईश्वर सम्बन्धी विचार, (2) धर्म की मीमांसा, (3) धर्म निरपेक्ष राज्य, (4) धर्म और राजनीति का सम्बन्ध ।

ईश्वर सम्बन्धी विचारः-

डॉ0 लोहिया ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नही करते थे । उनका विचार था कि मन्दिर एक ढकोसला है और उसमें विराजमान मूर्ति भी नकली है । उनकी दृष्टि में, ईश्वर ने मनुष्य को नहीं, अपितु मनुष्य ने ईश्वर को बनाया है और उसे एक प्रतीक के रूप में खड़ा कर दिया है ।"[1] प्रायः विनोद में वह कहा करते थे कि न तो मैंने कभी ईश्वर को देखा है और न मुझे कभी उसकी आवश्यकता पड़ी । लोगों के ये कहने पर कि अभी नहीं तो वृद्धावस्था में जब शरीर शिथिल होगा तब उसकी आवश्यकता होगी, वे कहते, "अगर परमात्मा है तो सुख में भी उतना ही सक्रिय और जोरदार होना चाहिए जितना दुख में। जो सुख में नहीं आ रहा है और दुख में आयेगा तो मेरे जैसा आदमी कह देगा, इसमें क्या बड़ी भारी बात है, कमजोर हो गया तब मेरे दिमाग में घुसा ।"[2]

यद्यपि लोहिया ईश्वर को नहीं मानते थे, पर ब्रह्मज्ञान और अद्वैत जैसे नामों को उन्होंने अपने ही ढंग से स्वीकार किया । सब में अपने पन की प्रतीति ही उनका ब्रह्मज्ञान और संसार की एकता एवं समता ही उनका अद्वैतवाद था ।[3] प्रत्येक कर्म में निष्ठा और ईमानदारी बरतना डॉ0 लोहिया का कर्मकाण्ड

---

1. डॉ0 लोहियाः भारत में समाजवाद, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1968, पृष्ठ - 28
2. डॉ0 लोहियाः धर्म पर एक दृष्टि, नवहिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1966, पृ0 - 7
3. डॉ0 लोहियाः धर्म पर एक दृष्टि, पृष्ठ - 9

था । तीर्थों को साफ-सुथरा रखना, नदियों के जल की शुद्धता, अपने को साफ-सुथरा और निष्कपट रखना ही उनकी दृष्टि में तीर्थ-यात्रा थी ।

(2) धर्म की मीमांसा:-

महात्मा गाँधी के समान लोहिया ने धर्म को दरिद्र नारायण की रोटी में पाया । उनके अनुसार, गिरे हुए को उठाना, प्यासे को पानी देना, भूखे को रोटी और गृहहीन को निवास स्थान देना ही सच्चा धर्म है । विभिन्न मजहबों को उन्होंने धर्म नहीं माना, क्योंकि इन्होंने लोगों को हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि में बाँट दिया है । इनसे ऊपर उठकर अपनी दृष्टि को व्यापक बनाना चाहिए और निर्भय होकर मानव धर्म के सच्चे उपासक बनना चाहिए ।[1] डॉ० लोहिया की दृष्टि में, धर्म नैतिक गुणों का पर्यायवाची होना चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं । इसी अर्थ में वह केवल मानव धर्मानुयायी थे । उनके मतानुसार धर्म आन्तरिक और सूक्ष्म है, न कि वाह्य और स्थूल । इसलिए रंगों, रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, आचारों, व्यवहारों आदि की वाह्य भिन्नता के कारण द्वेष, मन मुटाव, घृणा और संघर्ष के भाव लाना उचित नहीं है ।

यद्यपि लोहिया आत्मा-परमात्मा के झगड़े में नहीं पड़े, तथापि राम, कृष्ण और शिव के व्यक्तित्व उनके लिए आकर्षण के केन्द्र थे ।[2] इन तीनों

---

1. डॉ० लोहिया: धर्म पर एक दृष्टि, पृष्ठ - 4
2. देखिए: लोहिया: राम, कृष्ण और शिव, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971

व्यक्तित्वों की ऐतिहासिकता पर उन्हें सन्देह था, लेकिन उनके आदर्शों और सिद्धान्तों पर नहीं । नीति, धर्म और व्यवहार के नियमों में बँधे होने के कारण राम को उन्होंने मर्यादित व्यक्तित्व बतलाया । कृष्ण समयानुसार प्रत्येक क्षेत्र में चोरी, धोखा, झूठ से भी कार्य निकालने में न हिचके, यद्यपि ये चालें उन्होंने भय, क्रोध, राग से परे होकर चली । प्रेम और युद्ध सभी क्षेत्रों में वे बन्धन मुक्त थे । इसलिए लोहिया ने कृष्ण को उन्मुक्त व्यक्तित्व बतलाया । डॉ० लोहिया को शिव में सर्वाधिक श्रद्धा थी । उन्होंने शिव को असीमित व्यक्तित्व की संज्ञा दी और स्पष्ट किया कि शिव की असीमितता के कारण ही ब्रह्मा-विष्णु उनके सिर और पैर का पता चलाने में असमर्थ रहे । शिव के प्रत्येक कार्य का औचित्य सदैव उनके कृत्य में ही रहा । स्वयं विष पीने वाले और दूसरों को अमृत देने वाले वही हैं । गंगा को निकाल कर सम्पूर्ण देश का कल्याण करने वाले त्यागी इन्जीनियर भी वही हैं । इस प्रकार लोहिया ने राम को मर्यादित, कृष्ण को उन्मुक्त और शिव को असीमित व्यक्तित्व माना और भारत माता से प्रार्थना की "हे भारत माता हमें शिव का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो तथा राम का कार्य दो । हमें असीम मस्तिष्क और उन्मुक्त हृदय के साथ-साथ जीवन की मर्यादा से रचो ।"[1]

डॉ० लोहिया के ईश्वर और धर्म संबंधी विचारों का अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लोहिया कहते तो अपने आपको

---

1. डॉ० लोहिया: राम, कृष्ण और शिव, पृष्ठ - 20

नास्तिक थे, किन्तु वास्तव में वे आस्तिक थे । उन्होंने आस्तिकों को झूठे कर्म-काण्ड, संकुचित ब्रह्मज्ञान और कृत्रिम एकत्ववाद से छुटकारा पाने के लिए आह्वान किया । उनकी उपर्युक्त राम, कृष्ण और शिव की व्याख्या से स्पष्ट होता है कि उनको राम, कृष्ण और शिव आदि की झूठी उपासना पसन्द न थी । उनकी उत्कण्ठा थी कि लोग राम, कृष्ण और शिव के आदर्शों को अपने जीवन में वैज्ञानिक ढंग से ढालें ।

(3) धर्म-निरपेक्ष राज्यः-

डॉ० लोहिया, अपने तात्विक एवं धर्म संबंधी विचारों के अनुकूल, धर्म - निरपेक्ष राज्य के समर्थक थे । वह इस बात से सहमत थे कि धर्म-निरपेक्ष राज्य न धार्मिक होता है, न अधार्मिक और न धर्म का विरोधी । उन्होंने धार्मिक मामलों में निष्पक्षता और नागरिकों की धर्म-प्रचार, विश्वास, पूजा आदि संबंधी स्वतंत्रता पर बल देते हुए कहा था कि "राजनीति एक आश्वासन जरूर दे कि वह आस्तिकता अथवा नास्तिकता के प्रचार में दण्ड का इस्तेमाल नहीं करेगी।"[1] डॉ० लोहिया ने मुस्लिम धर्म के नाम पर भारत-विभाजन का कड़ा विरोध किया था, क्योंकि वह धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना के प्रबल समर्थक थे । भारत और पाकिस्तान दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया।

---

1. डॉ० लोहियाः मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1962, पृष्ठ - 49

निश्चय ही, लोहिया मजहबों की लड़ाई और राजनीति से सहमत नहीं थे, क्योंकि इनसे साम्प्रदायिकता जैसी सामाजिक विषमता फैलती है और राजनीतिक कटुता पैदा होती है, जिनसे देश की प्रजातांत्रिक व्यवस्था का ह्रास होता है ।

(4) धर्म और राजनीति का सम्बन्धः-

डॉ0 लोहिया की दृष्टि से, धर्म मुख्यतः चार कार्य करता है :- प्रथम, यह भिन्न धर्मों के बीच झगड़े और कभी-कभी रक्त-रंजित झगड़े उत्पन्न करता है । द्वितीय, वह अपने-अपने धर्मानुसार प्रतिष्ठित सम्पत्ति, जाति तथा नारी संबंधी व्यवस्थाओं को यथावत् बनाये रखता है, फलतः शोषण एवं विषमता को स्थायित्व मिलता है । तृतीय, धर्म अच्छे व्यवहार के लिए नैतिक एवं सामाजिक प्रशिक्षण देता है । चतुर्थ, अहिंसा, सत्य, दयालुता, न्याय, त्याग आदि के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति को संयत और अनुशासित करने में वह महत्वपूर्ण योगदान देता है । डॉ0 लोहिया ने धर्म के प्रथम दो कार्यों को हेय एवं त्याज्य बताया क्योंकि उनसे राजनीतिक कटुता, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता जैसी बातें बढ़ती हैं और अन्तिम दो धर्म के काम मानवता के लिए अच्छे हैं । ये अत्यधिक लाभकारी हैं ।[1] डॉ0 लोहिया की दृष्टि में, धर्म के इन दो प्रकार के कार्यों को राजनीति से जोड़ा जाना चाहिए ।

डॉ0 लोहिया का मत था कि कोई समाजवादी, चाहे आस्तिक हो

---

1. डॉ0 लोहियाः मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 374-75

या नास्तिक, धर्म के इस पक्ष को अवश्य अपनायेगा । केवल उसी धर्म को राजनीति से जोड़ा जा सकता है जो मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें । वह मानव धर्म ही हो सकता है जो राजनीति को बुराई एवं अन्याय से लड़ने के लिए प्रोत्साहित करें ।

डॉ0 लोहिया के विचार में धर्म एवं राजनीति में घनिष्ठ संबंध है। उन्होंने कहा कि धर्म का कार्य अच्छाई को करना है और राजनीति का कार्य बुराई से लड़ना है । धर्म सकारात्मक एवं दीर्घ कालीन होता है, पर राजनीति नकारात्मक तथा अल्पकालीन होती है । धर्म का स्वरूप शान्त होता है, जबकि राजनीति का रौद्र । धर्म एवं राजनीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । अतः वे एक दूसरे को परिपक्व और पूर्ण बनाते हैं । डॉ0 लोहिया की द्रृष्टि में धर्म आन्तरिक, सूक्ष्म एवं सच्चा है । दोनों अपृथक हैं । इसी कारण उन्होंने धर्म को "दीर्घकालीन राजनीति" और राजनीति को "अल्पकालीन धर्म" कहा है ।[1] दूसरे शब्दों में राजनीति बुराई को समाप्त कर, अल्पकाल के लिए जब तक दूसरी बुराई नहीं आती, अच्छाई का मार्ग सुगम करती है और धर्म निरन्तर अच्छाई कर बुराइयों में कमी का मार्ग सुगम करता है ।

डॉ0 लोहिया के अनुसार, अच्छाई करने और बुराई से लड़ने में अन्तर है । जब अधिक अन्तर बढ़ जाये तो वातावरण विषाक्त बन जाता है । प्रत्येक

---

1. डॉ0 लोहिया: मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला, पृष्ठ - 48

धर्म राजनीति के बिना निर्जीव हो जाता है, क्योंकि बुराई से न लड़ने पर उसकी अच्छाई टिक नहीं पाती । इसी तरह बिना धर्म के राजनीति झगड़ालू तथा कलहपूर्ण हो जाती है, क्योंकि अच्छाई न करने पर बुराई से लड़ना केवल कलह का कारण बनता है । डॉ0 लोहिया के विचार से धर्म और राजनीति निष्ठा एवं ईमानदारी से मिलकर काम करें अर्थात् यदि एक अच्छाई करें और दूसरा बुराई से लड़े, तो मानव कल्याण की गति एवं प्रगति अत्यधिक सन्तोषजनक होगी । इसलिए डॉ0 लोहिया ने सचेत किया कि "धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों भ्रष्ट होते हैं ।"[1] संक्षेप में, धर्म एवं राजनीति दोनों एक दूसरे को अच्छाई करने और बुराई से लड़ने को सम्प्रेरित करते हैं ।

डॉ0 लोहिया के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि उन्होंने सभी धर्मों की मौलिक एकता पर बल दिया वे सभी धर्मों के आदर्श सिद्धान्तों के सच्चे समर्थक थे तथा सच्चे धर्म के स्वरूप को राजनीति से सम्बद्ध रखना चाहते थे । उनके धर्म संबंधी विचार बहुत कुछ महात्मा गाँधी से प्रभावित थे । अन्तर केवल इतना है कि गाँधी जी मानव धर्मानुयायी होने के साथ-साथ एक सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान परम् शक्ति में विश्वास करते थे और लोहिया केवल मानव धर्मानुयायी थे । उनके मत के अनुसार, धर्म, नैतिक गुणों का पर्यायवाची मात्र होना चाहिए, इससे अधिक कुछ नहीं ।

---

1. डॉ0 लोहिया: मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला, पृष्ठ - 49

(3) राज्य सम्बन्धी विचार:-

प्रत्येक विचारक ने अपने - अपने दृष्टिकोण के अनुसार राज्य पर विचार किया है और उसे उन लक्ष्यों से युक्त माना है जो उसकी विचार प्रणाली के अनुसार होते हैं। इतिहासकार इसको ऐतिहासिक विकास का फल मानते हैं, नैतिक दार्शनिक, इसको नैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक संस्था मानते हैं। विधि शास्त्री इसको कानूनों की उत्पत्ति और कानूनी अधिकारों की रक्षा हेतु निर्मित एक संस्था मानते हैं । डॉ0 लोहिया के मत में सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लक्ष्य के लिए राज्य आवश्यक है । वह न तो अराजकता वादियों की भाँति राज्य को समाप्त करने के पक्ष में थे और न ही उन्होंने आदर्शवादी विचारकों की भाँति राज्य को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है । उन्होंने राज्य की महत्ता को स्वीकार किया पर उनके विचार से राज्य को समाज के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए । उनके राज्य सम्बन्धी विचार यथार्थवादी हैं । बोंदा, ग्रोशस, हॉब्स, आस्टिन आदि विचारकों के अमर्यादित संप्रभुता के सिद्धान्त के विरोध में लोहिया ने विचार प्रकट किए । उनके राज्य संबंधी विचार आदर्शवादी विचारकों और विशेषतय: जर्मन आदर्शवादी हीगल के विपरीत है । हीगल के मत में राज्य न केवल कानूनी दृष्टि से सर्वोच्च है वरन् नैतिक दृष्टि से भी सर्वोच्च है और उसका प्रतिरोध नहीं किया जा सकता । डॉ0 लोहिया का सत्याग्रह सिद्धान्त में अटूट विश्वास था और इसलिए उनके मत में व्यक्ति राज्य के कानूनों, आदेशों और अध्यादेशों का प्रतिरोध कर सकता है । उनकी राज्य की अवधारणा

बहुलवादी विचारकों के समान थी परन्तु उनका बहुलवाद फिगिस, मैटलैण्ड, लिन्डसे, मैकआइवर, क्रैब आदि से भिन्न पर काफी कुछ लास्की के साम्य था। लोहिया राज्य सत्ता के विभाजन द्वारा व्यक्ति के हित को सुरक्षित करना चाहते थे । उनका मत था कि शक्तियों के विभाजन से राज्य की निरंकुश सत्ता को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है ।[1]

डॉ0 लोहिया ने न केवल आर्थिक, अपितु राजनैतिक विकेन्द्रीकरण को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है । राजनैतिक विकेन्द्रीकरण समता और सम्पन्नता का द्योतक है । जिस प्रकार आर्थिक जनतंत्र के बिना राजनैतिक जनतंत्र असम्भव है, उसी प्रकार राजनैतिक जनतंत्र के बिना आर्थिक जनतंत्र असंभव है । वह राजनीतिक केन्द्रीकरण के विरूद्ध थे, क्योंकि ऐसी व्यवस्था में शासक, सेठ और सरकारी अधिकारियों का त्रिकोण का आधिपत्य हो जाता है । सामान्य व्यक्ति उत्पीड़न का शिकार होता रहता है । लोहिया ने स्पष्टतः कहा कि राजनीतिक केन्द्रीकरण के कारण "दिमाग जकड़ गये हैं । विचारों का स्थान प्रचारों ने ले लिया है .... आज विचार, शक्ति का गुलाम बन गया है ।"[2] केन्द्रित - शक्ति के कारण आम जनता शक्ति के हाथ में कठपुतली मात्र रहकर अपंग हो जाती है, जिससे प्रजातांत्रिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य ही ध्वस्त हो जाता है । दो खम्भों केन्द्र एवं प्रान्त वाली संघात्मक व्यवस्था को डॉ0 लोहिया

---

1. डॉ0 लोहियाः फ्रैगमेन्ट्स ऑफ अ वर्ल्ड माइन्ड, मैत्रायनी, 19 सी, कलकत्ता, 1956, पृष्ठ - 70
   डॉ0 लोहियाः मार्क्स गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 378
2. डॉ0 लोहियाः समाजवादी चिन्तन, पृष्ठ - 101

अपर्याप्त मानते थे । उन्होंने राजनैतिक शक्ति के बिखराव पर बल देते हुए कहा था, "बड़ी राजनीति देश के कूड़े को बुहारती है, छोटी राजनीति मोहल्ले अथवा गाँव के कूड़े को ।"[1] अतः उन्होंने चौखम्भा योजना देश के समक्ष प्रस्तुत की ।

डॉ0 लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में चौखम्भा योजना का महत्वपूर्ण स्थान है ।[2] उन्होंने अपनी चौखम्भा योजना के अन्तर्गत ग्राम, मण्डल, प्रान्त और केन्द्र इन चार समान प्रतिभा और सम्मान वाले खम्भों में शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया । उनके विचार में "सर्वोच्च अधिकार केवल केन्द्र तथा संघबद्ध इकाइयों में ही न रहने चाहिए, बल्कि इसे तोड़कर छोटे से छोटे क्षेत्रों मे जहाँ नर-नारियों के समूह रहते हैं, बिखरा देना चाहिए ।"[3] यह चौखम्भा योजना केवल प्रशासन की व्यवस्था नहीं है, अपितु इनमें उत्पादन, स्वामित्व व्यवस्था, कृषि-सुधार योजना, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि का प्रबन्धन भी सम्मिलित होगा । इस व्यवस्था में राज्य की सर्वोच्च सत्ता का इस तरह बिखराव होगा कि उसके अन्दर रहने वाले प्रत्येक समुदाय उस तरह अपना जीवन चला सकेंगे जिस तरह वे चाहें । किन्तु इस प्रकार का बन्धन उनके बीच अवश्य रहेगा जो इकाइयों को एक सूत्र में बाँधे रह सके । उनमें ये बन्धन आर्थिक, सांस्कृतिक

---

1. डॉ0 लोहिया: वही, पृष्ठ - 101
2. चौखम्भा योजना लोहिया के समाजवादी चिन्तन के अन्तर्गत इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें गान्धी जी के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है । लोहिया: आस्पेक्ट्स ऑफ सोशलिस्ट पालिसी, पृष्ठ - 17, लोहिया: क्रान्ति के लिए संगठन, पृष्ठ - 12
3. डॉ0 लोहिया: फ्रैगमेन्ट्स ऑफ ए वर्ड माइन्ड, पृष्ठ - 70

आदि सभी प्रकार के रहेंगे, जिससे कि वे तितर-बितर होकर राष्ट्र को छिन्न-भिन्न न कर पावें । डॉ0 लोहिया के शब्दों में "चौखम्भा राज्य की कल्पना में स्वावलम्बी गाँव ही नहीं, वरन् समझदार और जीवित गाँव की धारणा है । यद्यपि दोनों विचार अनेक स्थानों पर एक दूसरे से मिल जाते हैं ।"[1]

चौखम्भा राज्य में सेना केन्द्र के अधीन, सशस्त्र पुलिस प्रान्त के अधीन और अन्य पुलिस मण्डल तथा ग्राम के अधीन रहेगी । लोहे और इस्पात के उद्योग केन्द्र के नियंत्रण में, छोटी मशीनों वाले भावी कपड़े के उद्योग ग्रामों और मण्डलों के नियंत्रण में रहेंगे । चौखम्भा राज्य में मूल्यों पर नियंत्रण केन्द्रीय शासन रखेगा जब कि कृषि-ढाँचा और उसमें पूँजी तथा श्रम का अनुपात ग्राम और मण्डल की इच्छा पर निर्भर करेगा । सहकारी समितियाँ, ग्राम तथा कृषि-सुधार, सिंचाई का अधिकांश भाग, बीज, भू-राजस्व वसूली आदि राज्य-नियंत्रित विषय चौखम्भा राज्य में ग्राम और मण्डल के अधीन किए जायेंगे ।[2] लोहिया का मत था कि कर के रूप में केन्द्रीय शासन के पास जो रुपया एकत्रित होता है उसका एक भाग ग्राम या शहर को, दूसरा भाग मण्डल को, तीसरा भाग प्रान्त को और चौथा भाग केन्द्र को प्राप्त होना चाहिए क्योंकि जब तक जनतांत्रिक संस्थाओं के पास पैसा न होगा, वे अपने कार्यों का सही ढंग से सम्पादन न कर सकेंगी ।[3] राष्ट्रों के बीच समता और विश्व सभ्यता के लिए डॉ0 लोहिया ने

---

1. राम मनोहर लोहिया, रीवाँ (म0प्र0) में दिये गये भाषण से, 26 फरवरी 1950
2. डॉ0 लोहियाः भाषण, रीवाँ, 26 फरवरी सन् 1950
3. डॉ0 लोहियाः क्रान्ति के लिए संगठन (भाग-1) पृष्ठ-112
   हैरिस वैफोर्ड - लोहिया एण्ड अमेरिका मीट, मद्रास, 1961, पृष्ठ - 160

बालिग मताधिकार पर चुनी हुई और सीमित अधिकारों वाली विश्व-सरकार का पाचवाँ खम्भा भी जोड़ने पर बल दिया था । चौखम्भा राज्य के अतिरिक्त डॉ0 लोहिया ने प्रशासन के विकेन्द्रीकरण पर बहुत बल दिया है । उनके मत में जिलाधीश का पद समाप्त होना चाहिए, क्योंकि वह राजनीतिक शक्ति के केन्द्रीकरण की बदनाम संस्था[1] है और पुलिस तथा अन्य सेवा विभाग ग्राम और मण्डल के प्रतिनिधियों के अधीन किए जाने चाहिए ।[2] जिन प्रशासकीय स्तर के प्रशिक्षण और अनुभव से वर्तमान जिलाधीश को प्रशिक्षित किया जाता है, उन्हीं के द्वारा कार्यपालिका अधिकारी को प्रशिक्षित कर मण्डलीय सरकार के सहयोग के लिए प्रदान किया जाना चाहिए । ये कार्यपालिका अधिकारी मण्डलीय सरकार के अधीन कार्य करेंगे । प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ लोहिया विधायिनी शक्ति का भी विकेन्द्रीकरण चाहते थे । उनकी इच्छा थी कि शासन के विकेन्द्रीकरण को सार्थक बनाने के लिए, जिला और ग्राम पंचायतों को कानून [illegible]ने के भी कुछ सीमित अधिकार दिये जाएँ जिससे कि वे अपने यहाँ सामुदायिक जीवन को अपनी पसन्द से चला सकें ।

डॉ0 लोहिया राज्यपाल के पद को समाप्त करना चाहते थे । राज्य और केन्द्र के जो कुछ भी कम से कम सम्बन्ध होंगे उनको एक अधिकारी द्वारा

---

1. देखिए, डॉ0 बी0पी0 वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, पृष्ठ-540 राम मनोहर लोहिया: विल टू पावर एण्ड अदर राइटिंग्स, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ - 132
2. डॉ0 लोहिया: क्रान्ति के लिए संगठन, (भाग-1) पृष्ठ-113

व्यवहृत किया जायेगा । उनका विचार था कि साक्ष्य और आपराधिक अधिनियम में इस प्रकार का परिवर्तन होना चाहिए कि जिससे सामान्यजन को भी शीघ्र और सस्ता न्याय दिया जा सके । इसके अतिरिक्त वे वर्तमान कानूनों पर पुनर्विचार करने के लिए एक समिति निर्माण के पक्षधर थे, जिससे कि कानूनों से अप्रजातांत्रिक तत्वों को हटाया जा सके । वे चाहते थे कि दो या तीन राज्यों के लिए एक उच्च न्यायालय और एक लोक सेवा आयोग हो ताकि उच्च न्यायालयों और लोक सेवा आयोगों की संख्या घटाई जा सके और उनके कार्य-क्षेत्र का विस्तार किया जा सके ।[1]

इस प्रकार डॉ0 लोहिया चाहते थे कि देश में राजनीति एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण द्वारा ही नागरिकों को अपना स्थानीय शासन करने और संसाधन जुटाने से ही देश का उत्थान किया जा सकता है । विकेन्द्रीकरण से ही सभी नागरिक अपने भाग्य के निर्माता बन सकते हैं । चौखम्भा राज्य में ही सभी नागरिकों की प्रजातांत्रिक भागीदारी संभव हो सकेगी । वे जनतंत्र को जनता द्वारा जनता के लिए और जनता का शासन मानते थे, किन्तु जनतंत्र को वास्तविक बनाने के लिए चौखम्भा राज्य को भी वे अत्यावश्यक समझते थे । क्योंकि चौखम्भा राज्य के द्वारा, समुदाय द्वारा समुदाय के लिए समुदाय का शासन स्थापित होता है, जो कि प्रजातंत्र के लिए आवश्यक है ।

डॉ0 लोहिया के चौखम्भा राज्य में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण

---

1. डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 410

की परस्पर विरोधी धारणाओं को समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है । इनकी चौखम्भा योजना गाँधीवादी स्वावलम्बी ग्रामों और आधुनिक संघवाद के बीच का मार्ग है । आर्थिक विचारों के समान राजनीतिक विचारों को भी उन्होंने चौखम्भा राज्य और प्रशासकीय विकेन्द्रीकरण द्वारा मूर्त और ठोस रूप देने का प्रयत्न किया है । उनके राजनैतिक विकेन्द्रीकरण पर महात्मा गाँधी का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है । उन्होंने अधिकारी वर्ग को जनता के प्रतिनिधियों के नियंत्रण में रखकर सच्चे जनतंत्र के निर्माण का प्रयास किया है । इस प्रकार के नियंत्रण में यद्यपि एक ओर नौकरशाही की समाप्ति में सहायता मिल सकती है, तथापि दूसरी ओर भ्रष्टाचार और बेइमानी को बढ़ावा मिलने के कम अवसर नहीं, क्योंकि सत्ताधारी दल कर्मचारियों का अनुचित प्रयोग कर सकने में समर्थ हो सकेगा । कर्मचारी राजनैतिक दबाव से उन्मुक्त रहकर ही अपना कर्त्तव्य सही ढंग से पालन कर सकते हैं । इसके अलावे छोटे समुदायों के शासन द्वारा की गई नियुक्तियाँ पक्षपातपूर्ण हो सकती हैं और उनके प्रत्यक्ष निर्वाचन में भ्रष्टाचार और विघटन की भी अधिक संभावना है । अभी तक देखने में यही आया है कि ग्राम-पंचायतों के चुनावों ने प्रत्येक ग्राम-पंचायत को वैमनस्य, कटुता, दलबन्दी आदि से भर दिया है ।

इसके विपरीत चौखम्भा योजना पर सोचने का एक यह भी ढंग हो सकता है कि अभी तक इन छोटे समुदायों को कम अधिकार दिए गए थे । इसलिए उनमें उत्तरदायित्व की भावना उतनी अधिक नहीं थी । अब जब उन्हें अधिकाधिक कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका संबंधी अधिकार प्रदान

किए जायेंगे, तब उनमें उत्तरदायित्व की भावना पनपेगी और तब सम्भवतः वे अपने वर्तमान दुर्गुणों और भ्रष्टाचारों से छुटकारा पाने में समर्थ हो सकेंगे ।

(4) जन-शक्ति का महत्वः-

डॉ0 लोहिया प्रजातांत्रिक समाजवाद के एक सशक्त प्रवक्ता थे । यही कारण है कि उन्होंने जन शक्ति का प्रबल समर्थन किया । जन-शक्ति से उनका तात्पर्य जन-इच्छा से था । यह वह जन इच्छा है जो डॉ0 लोहिया द्वारा अपनी पुस्तक "सात क्रान्तियाँ" में प्रस्तावित सात क्रान्तियों से व्यक्त होती है अर्थात् यदि जन इच्छा जागृत हो तो इन सात क्रान्तियों का सूत्रपात हो सकता है, ये सात क्रान्तियाँ है ।

1. नर-नारी समानता के लिए,
2. चमड़ी-रंग पर रची असमानताओं के विरूद्ध,
3. जन्मजात तथा जाति-प्रथा की विषमताओं के खिलाफ,
4. परदेशी गुलामी के खिलाफ एवं विश्व लोक राज्य के लिए,
5. निजी पूँजी की विषमताओं के खिलाफ और योजनाओं द्वारा उत्पादन बढ़ाने के लिए,
6. निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ,
7. अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ और सत्याग्रह के लिए ।[1]

---

1. डॉ0 लोहियाः सात क्रान्तियाँ
   डॉ0 लोहियाः प्रीफेस, मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म ।

डॉ0 लोहिया के विचार से, राज्य की आन्तरिक एवं वाह्य दोनों मामलों में अपनी शक्ति का इस्तेमाल हमेशा जन-इच्छा की दृष्टि से विकास के हित में करना चाहिए, न कि उसका दमन करने के लिए । उनकी दृष्टि में निरंकुश शक्ति और सेवाएँ जन-शक्ति के समर्थन के बिना अप्रभावी और अर्थहीन होती है । उन्होंने अपने एक लेख "विश्वासघाती जापान तथा आत्मसंतुष्ट ब्रिटेन" में स्पष्टतः लिखा था, "सैनिक और असैनिक अड्डे उस समय तक बेकार होते हैं जब तक उनके पीछे समर्थक जनशक्ति न हों ...."[1]

जन-शक्ति का समर्थन राजनीतिक सफलता की धुरी है । डॉ0 लोहिया के मत में वही व्यवस्थापिका जनता की सच्ची प्रतिनिधि सभा है जिसमें वास्तविक रूप से जन-इच्छा व्यक्त होती हो । यदि जनता की इच्छा को उसमें निष्पक्ष और न्यायपूर्ण ढंग से मान्यता न मिल सके तो वह जनता की सच्ची व्यवस्थापिका नहीं है । इसी सन्दर्भ में वह कहते हैं, "लोक सभा या विधान सभा-एक शीशा है, एक आईना है कि जिसमें जनता अपने चेहरे को देख सके । चेहरे पर किस वक्त कैसी सिकुड़ने हैं, कैसी आफते हैं, कैसी तकलीफ हैं, कैसे अरमान हैं, क्या सपने हैं, ये सब उस शीशे में देख सकते हैं ।"[2] आधुनिक व्यवस्थापिकाओं की उपर्युक्त कसौटी के आधार पर उन्होंने इसकी तीव्र आलोचना की थी । उनके

---

1. हरिजन, 19 अप्रैल, सन् 1942 के अंक से
   देखिए इन्दुमति केलकर: लोहिया सिद्धान्त और कर्म
2. डॉ0 लोहिया: पाकिस्तान में पलटनी शासन, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970, पृष्ठ - 12

मत में आधुनिक व्यवस्थापिकाओं के अध्यक्ष इस शीशे को ढक कर रखना चाहते हैं, ये उसको गन्दा हो जाने देना चाहते हैं, उसमें धब्बा लगा देना चाहते हैं। व्यवस्थापिका जन-इच्छा के दर्पण के रूप में काम करे और साथ ही, सम्पूर्ण कार्यों का उद्देश्य जनता की इच्छा को संगठित और अभिव्यक्त करना तथा यथा संभव राष्ट्रीय जीवन का पुर्ननिर्माण होना चाहिए ।"[1]

डॉ० लोहिया ने दुःख व्यक्त किया कि आज के भारत में सरकार और राजनैतिक दल दोनों में करोड़ों का एक नेता हो जाता है और अन्य छोटे-छोटे नेताओं का निर्माण भी वह अपने प्रभाव द्वारा करता है । जनता द्वारा अर्जित की हुई शक्ति को वह एक नेता इस ढंग से प्रयोग करता है कि प्रदेश, मण्डल और क्षेत्र के संगठन क्रमशः अपने से उच्चतर संगठन और अन्त में केवल उस एक नेता के मुख की ओर ताकते हैं । इस ढंग से निम्नतर संगठन अपना अस्तित्व उच्चतर संगठन से प्राप्त करने लगते हैं, जबकि जन-इच्छा को प्रभावशाली बनाने और उसे प्रभुत्व देने के लिए होना चाहिए, ठीक इसके विपरीत । वे चाहते थे कि निम्न स्तरीय शक्ति के द्वारा उच्च स्तरीय शक्ति का निर्माण हो । जनता में शक्ति के वास्तविक बिखराव के लिए उन्होंने कहा था, "ताकत जनता से निकलकर ऊर्ध्वगामी बने, ऊपर की तरफ जाए, पानी फूटकर ऊपर की तरफ निकलता है, जनता की ताकत क्षेत्र, जिला, प्रदेश और सारे देश की तरफ जाने

---

1. डॉ० लोहियाः मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 342

के बजाय, हमारे देश में ठीक इसका उल्टा होता है ।"[1]

डॉ0 लोहिया की मान्यता थी कि प्रत्येक राजनैतिक समूह को आत्म विनिश्चय का अधिकार होना चाहिए । तिब्बत के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए उन्होंने प्रत्येक समूह की स्थिति निर्धारण करने की मुख्य छः कसौटियाँ निर्धारित की थीं - (1) जमीन का ढलाव, (2) भाषा, (3) लिखावट, (4) धर्म और जिन्दगी का तरीका, (5) प्राचीन इतिहास और सरकारों की आपसी सन्धियाँ, (6) जनता की इच्छा ।[2] इन छः कसौटियों में जन-इच्छा को सर्वाधिक महत्व देते हुए डॉ0 लोहिया ने कहा, "आधुनिक युग में और मेरे जैसा आदमी इस छठे को सबसे बड़ी कसौटी कहेगा । चाहे वे पाँचों जिस तरफ भी जाएँ, अगर तिब्बत की जनता की इच्छा है किसी एक विशिष्ट संगठन में रहने की, तो उस इच्छा की पूर्ति होनी चाहिए । यहीं सबसे बड़ी कसौटी है ।"

इस प्रकार लोहिया का सिद्धान्त था कि सभी देश स्वतंत्र हैं और उन्हें अपने भविष्य के निर्णय का स्वयं अधिकार है । जहाँ तक सम्पूर्ण देश की एक इकाई का सम्बन्ध है, इसका पूर्णतः आदर किया जाना चाहिए । परन्तु आशंका इस बात की है, और यह स्फुट या प्रच्छन्न रूप में अपने देश में आज परिलक्षित भी होती है कि यह विचारधारा विघटन की प्रवृत्ति की जन्मदात्री सिद्ध हो सकती है ।

---

1. डॉ0 लोहिया: क्रान्ति के लिए संगठन, पृष्ठ - 198
2. डॉ0 लोहिया: भारत, चीन और उत्तरी सीमाएँ, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963, पृष्ठ - 204

(5) सविनय अवज्ञा का सिद्धान्त (सिविल नाफरमानी):-

महात्मा गाँधी ने भारत में स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जिस राजनीतिक पद्धति का प्रयोग किया उसे सत्याग्रह के नाम से सम्बोधित किया जाता है। गाँधी जी ने सत्याग्रह के संदर्भ में अहिंसा, असहयोग, निष्क्रिय प्रतिरोध एवं सविनय अवज्ञा आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है। गाँधी जी इन शब्दों को सत्याग्रह का पर्यायवाची मानते थे।

डॉ0 लोहिया ने सविनय अवज्ञा (सिविल नाफरमानी) के सिद्धान्त का समर्थन किया। अन्याय का प्रतिकार दो रूपों - हिंसात्मक और अहिंसात्मक में संभव है। अन्याय के विरोध का अहिंसात्मक ढंग ही सत्याग्रह है। सविनय अवज्ञा इसका एक विशेष अंग है, जिसे डॉ0 लोहिया ने "सिविल नाफरमानी" का सिद्धान्त कहा है। इसका अर्थ है कि अन्यायी के प्रति सबल विरोध, न कि उसके समक्ष झुकना। सिविल नाफरमानी करने वाला व्यक्ति न तो कमजोर होता है और न ही हिंसक। इसका अर्थ "मामूली इन्सान की मामूली वीरता के साथ काम चलाना है"।[1]

अपने विचार को और स्पष्ट करते हुए डॉ0 लोहिया ने कहा, "सिविल नाफरमानी अथवा अन्याय से शान्तिपूर्वक लड़ना अपने आप में एक कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य में आगा-पीछा या नफा-नुकसान नहीं देखा जाता ...."[2] उनकी दृष्टि से,

---

1. डॉ0 लोहिया: नया समाज: नयामन, पृष्ठ - 2
2. डॉ0 लोहिया: सिविल नाफरमानी: सिद्धान्त और अमल, सोशलिस्ट पार्टी, हिमायत नगर, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ - 7

सविनय अवज्ञा का लक्ष्य मात्र अन्यायी के हृदय को ही परिवर्तित करना नहीं है, बल्कि असंख्य जन-समूह का हृदय बदलना भी उसका परम लक्ष्य है । कमजोर एवं असमर्थ व्यक्तियों को समर्थ बनाकर अन्याय, शोषण तथा दमन का मुकाबला करना, सविनय अवज्ञा का मूल आधार है ।

सविनय अवज्ञा सिद्धान्त का सच्चा अनुयायी वही है जो असंख्य कठिन कष्टों को सहन करने के उपरान्त यह कहता है कि "मरेंगे मगर मारेंगे नहीं", "मारो अगर मार सकते हो लेकिन हम तो अपने हक पर अड़े रहेंगे ।"[1] डॉ0 लोहिया के मत में वह सत्य झूठा होता है जिसमें शक्ति नहीं होती । अतः सच्चा सत्याग्रह वही है जो अपनी शक्ति (सत्य) की प्रतिष्ठापना करके ही दम ले, उसके पूर्व नहीं । यदि अच्छे जीवन के मार्ग में आने वाली अन्याय और असत्य की बाधाओं के लिए सत्याग्रह एक बाधा नहीं हो सकता, तो वह सत्याग्रह नहीं है । इसी से डॉ0 लोहिया ने कहा, "सिविल नाफरमानी की सबसे बुनियादी बात यह है कि सच्चाई करोड़ों लोगों के अन्दर बैठने के लिए तपस्या और तकलीफ का सहारा ले ।"[2]

डॉ0 लोहिया ने सत्याग्रह के दो पहलू बतलाये हैं, पहला प्रेम और दूसरा रोष अथवा ओज प्रेम । और रोष का सम्मिश्रण ही सत्याग्रह है । गरीब,

---

1. डॉ0 लोहिया: वही पृष्ठ - 8

2. डॉ0 लोहिया: सिविल नाफरमानी, सिद्धान्त और अमल, पृष्ठ - 11

अनाथ तथा असमर्थ व्यक्तियों के प्रति प्रेम और अत्याचारियों के प्रति रोष ही सत्याग्रह की पूर्णता है । जैसा कि लोहिया कहते हैं कि "क्रांति में करूणा का मेल सिविल नाफरमानी (सविनय अवज्ञा) है ।"[1] उन्होंने बिनोबाजी के सत्याग्रह से असहमति प्रकट की और कहा कि "ये गाँधी के एक पहलू को लेकर बैठे हुए हैं । वह पहलू है प्रेम । गाँधी जी का जो दूसरा पहलू था तेजस्विता का, गुस्से का, गरीबी बेईमानी, बदमाशी और जुल्म से गुस्सा करो और उनसे लड़ो, उस पहलू को भावे साहब अभी तक नहीं समझ पाए ।" इस आधार पर लोहिया ने विनोबा जी के सत्याग्रह की आलोचना की और कहा कि उनका सत्याग्रह एकांगी है । वह गरीबों के प्रति दया और सहानुभूति तो रखता है, किन्तु अन्यायियों के प्रति रोष उसमें नहीं है ।[2] अन्याय के प्रति सात्विक क्रोध अनिवार्य है ।

डॉ0 लोहिया के मतानुसार जिस प्रकार सत्याग्रह प्रेम और रोष का एक साथ योग है उसी प्रकार वह ध्वंसात्मक और रचनात्मक वृत्तियों का भी एक साथ समन्वय है । सच्चा सत्याग्रही यदि एक ओर अन्यायी कुव्यवस्था को ध्वंस करता है तो दूसरी ओर सुव्यवस्था की रचना और संगठनात्मक शक्ति का

---

1. डॉ0 लोहिया: इतिहास चक्र, पृष्ठ - 102

2. डॉ0 लोहिया: सिविल नाफरमानी: सिद्धान्त और अमल, पृष्ठ - 12

का प्रादुर्भाव करता है ।[1] यह सिद्धान्त तर्क और हथियार दोनों से सुसज्जित है । "सिविल नाफरमानी में तर्क और हथियार दोनों का मिश्रण है । इसमें एक ओर तो तर्क का माधुर्य है, दूसरी ओर हथियार का बल भी ।"[2] अतः डॉ0 लोहिया की सिविल नाफरमानी अन्याय के प्रति लड़ने के लिए एक शाश्वत सिद्धान्त है । इस दृष्टि से, यह सिद्धान्त सर्वव्यापक है जिसे हर प्रकार के अन्यायों को समाप्त करने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है ।

डॉ0 लोहिया के विचार में सत्याग्रह की कसौटी तात्कालिक सफलता नहीं, अपितु करोड़ों का मत परिवर्तन है । इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने चिरंतन सत्याग्रह की कल्पना रखी । उनका कहना था कि सप्ताह के सातों दिनों में प्रत्येक राजनीतिक दल को कम से कम दो-दो दिन सत्याग्रह करना चाहिए । जिस तरह किसी दौड़ में एक दौड़ाक थकता है तो दूसरा आता है और फिर तीसरा आता है, कुछ रिले रेस जैसी होती है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान में सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा की रिले रेस होनी चाहिए । केवल तभी अन्यायी शासन, चाहे वह किसी भी दल का हो, समाप्त हो सकेगा । लोहिया चाहते थे कि देश में इस प्रकार के दल का निर्माण होना चाहिए कि जो कभी सत्ता पर न बैठे, बल्कि सत्ताधारियों के अन्यायों का अहिंसात्मक ढंग से सदैव प्रतिकार करे जिससे कि अत्याचारी शासनों को उलटते-पलटते रोटी की तरह

---

1. डॉ0 लोहिया: वही, पृष्ठ - 20
2. डॉ0 लोहिया: नया समाज: नयमन; पृष्ठ - 1

सेंक कर एक दिन पवित्र बनाया जा सके । किन्तु इस उलट-पलट के क्रम में उन्होंने हिंसा से दूर रहने को कहा, क्योंकि इस प्रकार के परिवर्तनात्मक कार्यक्रम की सच्ची कसौटी हिंसात्मक और दमनात्मक नीति के समक्ष अहिंसात्मक बना रहना है । इसके अतिरिक्त लोहिया ने स्पष्ट किया कि विधि की सविनय अवज्ञा स्वार्थ हेतु करना जितना अनुचित है, सामूहिक स्वार्थ और परमार्थ के लिए उतना ही उचित । सिविल नाफरमानी सदैव उचित उद्देश्य के लिए उचित तरीकों द्वारा की जानी चाहिए अन्यथा उससे कोई लाभ नहीं ।[1] वे कितने अहिंसक थे और कितने ईमानदार सरकार के इच्छुक इसका प्रमाण सन् 1954 में केरल की अपनी ही सरकार से उनका इस्तीफा माँगना है ।

डॉ0 लोहिया के मतानुसार सविनय अवज्ञा का सिद्धान्त सर्वव्यापक है, जिसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अन्यायों को समाप्त करने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है । उनका स्पष्ट विचार था कि जब तक कोई देश अपने ही शासन के अन्यायी नियमों और कार्यों की सविनय अवज्ञा करना नहीं सीखता, वह देश कभी भी विदेशी अन्याय का विरोध करने में सक्षम नहीं हो सकता। राष्ट्र की सबसे बड़ी सुरक्षा जनता द्वारा स्वयं की सरकार के विरूद्ध सविनय अवज्ञा का किया जाना है ।

डॉ0 लोहिया ने सविनय-अवज्ञा सिद्धान्त का केवल सैद्धान्तिक प्रचार ही नहीं किया, अपितु कई सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व किया । गाँधी जी

---

1. देखिए "जन" मार्च सन् 1968, पृष्ठ - 127

के साथ अंग्रेजी शासन के विरूद्ध उन्होंने सविनय अवज्ञा में तो भाग लिया ही, अपने देशी शासक के विरूद्ध भी अन्यायों का सतत विरोध किया । उन्हीं के सहयोग से 9 अगस्त सन् 1953 ई0 को आजमगढ़ जिले के कृषकों ने शासकीय अभिलेखों की त्रुटिपूर्ण प्रविष्टि के विरोध में सविनय अवज्ञा की ।[1] अवैधानिक बेदखली के विरोध में मई सन् 1951 ई0 में मैसूर राज्य के कृषकों ने सत्याग्रह किया, जिसका नेतृत्व डॉ0 लोहिया ने ही किया । सन् 1954 में उत्तर प्रदेश में नहर-रेट-वृद्धि के विरूद्ध उन्होंने सामूहिक सविनय अवज्ञा की । उन्हीं की प्रेरणा से भूमि संबंधी विभिन्न माँगों को लेकर सन् 1956 ई0 में बिहार के कृषकों ने सिविल नाफरमानी चलाई ।[2] सन् 1956 ई0 से 1959 ई0 तक उन्हीं के निर्देशन में समाजवादी दल ने बारी-बारी से देश के लगभग सभी हिस्सों में सिविल नाफरमानी चलाई । अपने सिद्धान्तों को लेकर सन् 1960 ई0 में एक देश-व्यापी सविनय अवज्ञा की । सन् 1962 ई0 में चीनी आक्रमण के बाद डॉ0 लोहिया ने "देश बचाओ" आन्दोलन चलाया ।[3]

संक्षेप में डॉ0 लोहिया, महात्मा गाँधी के बाद सविनय अवज्ञा करने वाले एक मात्र राजनेता थे । सविनय अवज्ञा का प्रमुख उद्देश्य गाँधी जी के मत में विरोधी अथवा अन्यायी का मत - परिवर्तन था किन्तु डॉ0 लोहिया की दृष्टि में इसका प्रमुख लक्ष्य अन्यायी का हृदय परिवर्तन नहीं, अपितु साधारण

---

1. देखिए, इन्दूमति केलकर, लोहिया सिद्धान्त और कर्म, पृष्ठ - 282
2. वही, पृष्ठ - 282
3. दिनमान, 20 सितम्बर, सन् 1970 ई0

जन-मानस का मत परिवर्तन है । गाँधी जी समय-समय पर ही सत्याग्रह के पक्ष में थे किन्तु डॉ0 लोहिया निरन्तर सत्याग्रह चाहते थे । डॉ0 लोहिया ने सविनय अवज्ञा सिद्धान्त की विशद व्याख्या की, उसे वैयक्तिक और सामूहिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त और कर्म, कार्य और फल, नकारात्मक और सकारात्मक आदि सभी दृष्टियों से अवलोकन कर व्यापक बनाया है । उन्होंने सविनय अवज्ञा का सतत् प्रयोग कर उसे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्थायित्व प्रदान किया ।

(6) वाणी-स्वतन्त्रता और कर्म-नियंत्रण:-

"वाणी-स्वतंत्रता और कर्म नियंत्रण" का सिद्धान्त भी डॉ0 लोहिया के राजनीति चिन्तन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है । यह प्रजातंत्र का आधार और व्यक्ति की प्रगति एवं स्वच्छन्दता का मार्ग है । उनके अनुसार वाणी-स्वतंत्रता बिल्कुल स्वच्छन्द रहे, पर कर्मों को नियंत्रण में रखना आवश्यक है । उन्होंने कहा "बोली की तो लम्बी बाँह होनी चाहिए, खूब स्वतंत्र हो, जो भी बोलो, लेकिन जब कर्म करो तो बँधी हुई, संगठित, अनुशासित मुट्ठी होनी चाहिए ।"[1] राजनीतिक दलों को, व्यक्तियों और समितियों को बोलने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए, भले ही वे कुछ गलत बातें करें । बहुमत को चाहिए कि वह अल्पमत की बातें सुनें, उनके सुझावों की ओर ध्यान दें । केवल कार्यों के ऊपर ही प्रतिबन्ध

---

1. डॉ0 लोहिया: समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969, पृष्ठ - 140

रहना चाहिए, भाषण पर नहीं ।

वाणी की स्वतंत्रता का सशक्त प्रतिपादन करते हुए डॉ0 लोहिया ने जनतांत्रिक देशों से आग्रह किया कि वे व्यक्ति को भाषण और अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता दें । किसी के प्रति झूठ बोलना, किसी के साथ गाली गलौज करना अथवा अन्य किसी प्रकार से किसी का अपमान करना निश्चित रूप से अपराध हो सकता है किन्तु सामाजिक और राजकीय मामलों में, सिद्धान्त और कार्यक्रम के मामलों में प्रत्येक व्यक्ति को वाणी की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। जनता के इस अधिकार पर विवेक युक्त और उचित बन्धनों का शासन एवं दल दोनों अनुचित लाभ उठाते हैं । परिणाम स्वरूप वास्तविक स्वतंत्रता का अपहरण होता है । अतः वाणी की बन्धन मुक्त स्वतंत्रता होनी चाहिए । डॉ0 लोहिया का मत है कि झूठ और सत्य पर बिना विचार किए वाणी की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए, क्योंकि सत्य-झूठ का निर्णय एक व्यक्ति या संस्था अथवा सरकार नहीं कर सकती । वह तो झूठ और सत्य के संघर्ष से और परस्पर आवागमन से निखरता है । उन्होंने स्पष्ट कहा, "मैं कहना चाहता हूँ कि झूठ बोलने का भी अधिकार है क्योंकि झूठ क्या है, सच क्या है, इसका फैसला अगर कोई कार्य-कारिणी या सरकार करने बैठ जाएगी तब तो फिर वाणी की स्वतंत्रता बिल्कुल खत्म हो जाएगी ।"[1]

---

1. डॉ0 लोहिया: समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ - 139-140

स्वतंत्रता के साथ-साथ डॉ0 लोहिया ने जो कर्म-नियंत्रण की बात कही, वह महत्वपूर्ण है । उनके मतानुसार यदि दल का विधान-सम्मत निर्णय किसी सदस्य को मान्य नहीं है तो वाणी के द्वारा उस निर्णय का विरोध करने के लिए वह व्यक्ति स्वतंत्र है, किन्तु कर्म में उसका वास्तविक पालन करना अनिवार्य है ।[1] कर्म-नियंत्रण के डॉ0 लोहिया ने दो प्रकार बतलाये हैं, एक तो सिद्धान्त और विधान वर्जित कार्मों को न करें, और दूसरा सम्मेलन विधान द्वारा आदेशित कार्मों को करें ।[2] उनके द्वारा बताए गये दोनों कर्म-नियंत्रणों में एक नकारात्मक है और दूसरा सकारात्मक । उनका मत है कि अब तक भारत के सभी राजनैतिक दलों में वाणी परतन्त्रता और कर्म स्वच्छन्दता रही है । बड़ी समितियों अथवा बड़े नेताओं के निर्णयों के विरूद्ध व्यक्ति मन से विरोध चाहते हुए भी नहीं बोल पाते, किन्तु उनके कर्म निर्णयों के ठीक विपरीत होते हैं और ये दोनों ही तथ्य अनुचित हैं । इसके विपरीत जनतंत्र में राज्य अथवा राजनैतिक दलों दोनों के सन्दर्भ में वाणी स्वतंत्रता और कर्म-नियंत्रण होना चाहिए । डॉ0 लोहिया प्रायः निम्नलिखित मनोरंजक श्लोक अपने भाषणों में कहा करते थे :-

वाक् स्वयतंत्र्यम् कर्म नियंत्रणम् इति जनतांत्रिक अनुशासनम् । विपरीतम् कर्म स्वातंत्र्यम् वाक् नियंत्रणम् भारते प्रचलित पंथः"।[3] डॉ0 लोहिया ने स्पष्ट

---

1. डॉ0 लोहियाः वहीः पृष्ठ - 141
2. डॉ0 लोहियाः समाजवादी चिन्तन, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1956, पृष्ठ - 100
3. डॉ0 लोहियाः समाजवादी चिन्तन, पृष्ठ - 100

किया कि "बुद्धं शरणम् गच्छामि, संघ शरणम् गच्छामि और बाद में धर्म शरणम् गच्छामि" का क्रम त्रुटिपूर्ण है । उन्होंने उपर्युक्त सूत्र के क्रम को पूर्णरूपेण परिवर्तित कर दिया और कहा कि व्यक्तियों को सर्वप्रथम धर्म, द्वितीय संघ और अन्त में बुद्ध की शरण में जाना चाहिए ।[1] उन्होंने धर्म को सिद्धान्त, संघ को संगठन और बुद्ध को नेता कहा है । उनका कहना था कि जिस प्रकार संगठन के लिए सिद्धान्त आवश्यक है, उसी प्रकार सिद्धान्त के लिए संगठन आवश्यक है । उनके विचार में भारत में अभी तक संगठन और सिद्धान्त दोनों अपने मार्ग से विचलित रहे हैं । समाजवादियों के समक्ष धर्म और संगठन के समन्वय पर बल देते हुए उन्होंने कहा था कि "धर्म और संघ यानि सिद्धान्तों और संगठन की उस परस्पर नीति और मार्ग को आप ढूँढ़ रहे हैं, जिससे ऐसी राजनीति में एक नयी क्रान्ति पैदा हो ।"[2]

डॉ0 लोहिया ने "वाणी स्वतंत्रता और कर्म नियंत्रण का सिद्धान्त देकर राजनैतिक इतिहास में एक संतुलित और अनूठा सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। इस सिद्धान्त में वैयक्तिक स्वतंत्रता और सामाजिक हित का समन्वय किया गया है । उन्होंने वाणी-स्वतंत्रता को दबाना एक जघन्य अपराध माना, हालांकि उन्होंने कर्मों पर नियंत्रण की बात प्रजातांत्रिक प्रक्रिया का अनिवार्य अंग बताया। संक्षेप में डॉ0 लोहिया ने वाणी स्वतंत्रता में प्रेस की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता,

---

1. इन्दूमति केलकर: लोहिया, सिद्धान्त और कर्म, पृष्ठ, 327
2. डॉ0 लोहिया: समाजवादी चिन्तन, पृष्ठ - 111-12

निजी भाषा की स्वतंत्रता आदि क्रियात्मक रूप से प्रयोग करने पर बल दिया। इस प्रकार उन्होंने धर्म और संघ, सिद्धान्त और संगठन, वाणी और कर्म, व्यक्ति और समाज, दल और उसके नेता के पारस्परिक सम्बन्धों का ऐसा उचित निर्धारण किया है जिसका अवलम्बन कर मानव सामाजिक हित को बनाये रखते हुए सच्ची एवं वास्तविक स्वतंत्रता का उपभोग कर सकता है ।

वाणी-स्वतंत्रता का वैसे तो हर प्रकार के शासनतंत्र में महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिए, पर जहाँ तक प्रजातंत्र और विशेषकर समाजवादी प्रजातंत्र का सम्बन्ध है, वाणी की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता तो उसके प्राण ही हैं। स्वस्थ प्रजातंत्र की स्थिति और स्थायित्व के लिए इसकी समालोचना की छूट बहुत ही आवश्यक है । कोई भी तंत्र, शासन, दल या संस्थान इस अंकुश के बिना निरंकुश हो जाता है और मनमानी करने लगता है, जिसका फल अन्त में बड़ा ही भयावह होता है । डॉ0 लोहिया ने अपने आदर्श राज्य में उसके नागरिकों को अपने मौलिक अधिकारों के उपयोग का अवसर केवल कागज पर ही नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन में करने की प्रस्तावना रखी है । अन्याय, अत्याचार, अहित, चाहे व्यक्ति के प्रति हो, समूह के प्रति हों या देश के प्रति हो, इनके विरूद्ध आवाज उठाने, शासन का ध्यान आकर्षित करने की स्वतंत्रता सबको ही व्यवहार में होनी चाहिए, जो खेद के साथ कहना पड़ता है, कि वर्तमान समय में किसी भी देश में चाहे जैसी भी शासन-व्यवस्था वहाँ हो, पूर्ण रूप में नहीं है ।

(7) मौलिक अधिकार:-

डॉ0 लोहिया के समाजवादी चिन्तन और सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों की कड़ी में मौलिक अधिकारों का भी विशेष महत्व है । वह आदमी को केवल "पेटू पशु" नहीं मानते थे । उसके मन और हृदय भी होता है । मानव के जीवन को सुसंस्कृत एवं गौरवमय बनाने के लिए डॉ0 लोहिया ने उन मौलिक अधिकारों का अनुमोदन किया जो लोकतांत्रिक समाजवादी जीवन के अनिवार्य अंग हैं । वह जीवन पर्यन्त इन अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहे। राज्य मौलिक अधिकारों को जन्म नहीं देता, राज्य तो केवल इन अधिकारों को वास्तविकता और औचित्य प्रदान करता है । वे मानव के मूल स्वरूप से ही उद्‌भूत होते हैं । यहाँ उन मौलिक अधिकारों का एक संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है जिनका डॉ0 लोहिया ने सबल समर्थन किया ।

सर्वप्रथम, डॉ0 लोहिया ने बौद्धिक स्वातन्त्र्य के अधिकार का समर्थन किया । बौद्धिक स्वातन्त्र्य का अर्थ है, पठन-पाठन, लेखन आदि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता । यह स्वतंत्रता वह अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव के सम्पूर्ण विकास में बाधक तत्वों को हटाने का और साधक तत्वों को जुटाने का अधिकार प्रदान करता है । उन्होंने कहा, "इतना मैं साफ कह देना चाहता हूँ कि समाजवादी हिन्दुस्तान में किसी भी व्यक्ति की साहित्य या कला की अभिव्यक्ति किसी भी हालत में अपराध नहीं रहेगी और जिसे अश्लील वगैरह कहते हैं,

उसके बारे में भी यही कहना चाहता हूँ ।"[1] आधुनिक युग में जनतांत्रिक देशों में भी नैतिकता और सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि के बन्धन, कला, साहित्यक एवं अभिव्यक्ति पर थोपे जाते हैं । डॉ0 लोहिया इस संबंध में पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे । उन्होंने अश्लील साहित्य तक को प्रकाशन की स्वतंत्रता दी थी । डॉ0 लोहिया समाजवादी होते हुए, बौद्धिक स्वातंत्रय पर साम्यवादी देशों द्वारा लगाए गये अंकुश के कट्टर आलोचक थे । साम्यवादी व्यवस्था व्यक्ति को मौलिक अधिकारों से वंचित रखती है । यह सम्पूर्ण मानव जाति के पतन का द्योतक है । संक्षेप में, डॉ0 लोहिया ने "वाणी-स्वतंत्रता और कर्म-नियंत्रण" के सिद्धान्त द्वारा बौद्धिक स्वातंत्रय के अधिकार का व्यापक अनुमोदन किया ।

डॉ0 लोहिया अहिंसा तथा बौद्धिक स्वातंत्र्य दोनों में विश्वास करते थे । उनकी मान्यता थी कि किसी भी सरकार द्वारा निर्मित अत्याचारी एवं अन्यायी कानूनों का प्रतिरोध करने का अधिकार सभी नागरिकों को प्राप्त होना चाहिए।[2] लेकिन ऐसा अहिंसात्मक तथा शान्तमय ढंग से होना चाहिए । यही कारण है कि डॉ0 लोहिया ने सिविल नाफरमानी अथवा सविनय अवज्ञा के अधिकार का समर्थन किया । वह इसे मौलिक अधिकार मानते थे । साथ ही, उन्होंने एक ओर प्राण-दण्ड देने का विरोध किया, तो दूसरी ओर "आत्म-हत्या" के अधिकार का समर्थन किया । वे आत्म-हत्या को अदण्ड्य और प्राण-दण्ड को अवैध

---

1. डॉ0 लोहियाः समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ - 124
2. डॉ0 लोहिया - सिविल नाफरमानी की व्यापकता, पृष्ठ - 15

कहते हैं ।"[1] कुछ लोग समाज पर अभिशप्त भार होते हैं, उन्हें जान बूझकर खत्म न किया जाये, बल्कि मानवीयता के आधार पर समाज स्वयं उन्हें मौन सधन्यवाद आत्म-हत्या की अनुमति प्रदान करे । लेकिन डॉ0 लोहिया ने प्राण-दण्ड देने का कड़ा विरोध किया क्योंकि यह व्यक्तिगत जीवन की स्वतंत्रता के विरूद्ध है ।

जहाँ तक प्राण-दण्ड न देने के सम्बन्ध में डॉ0 लोहिया के कथन का प्रश्न है, वह तो सर्वथा मानवतावादी दृष्टिकोण है, साथ ही साथ समाज के लिए भी लाभदायक है । एक तो मानव अथवा शासन की मानवता इसी में है कि हत्या अथवा अन्य जघन्य अपराध करने वाले के साथ भी मानवोचित व्यवहार करे । लोहिया ने उचित ही कहा है "चाहे जिन्दगी भर जेल में डाल रखो, पर फांसी न हो, क्योंकि गला घोंट कर मार डालना इन्सानियत की बात नहीं है । हम कैसे जानवर हैं जो आदमी को गला घोंट कर मार डालते हैं ।"[2] जिसने हत्या अथवा अन्य जघन्य अपराध किया है, यह आवश्यक नहीं है कि उसकी प्रवृत्ति अपराध करने की हो । अच्छा से अच्छा व्यक्ति भी कदाचित परिस्थितिवश बड़ा से बड़ा अपराध कर सकता है । इसके विपरीत यह भी हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपराध करने की प्रवृत्ति में ही आ गया हो, तो भी उसको मृत्यु दण्ड देकर समाज केवल नकारात्मक लाभ ही उठाता है ।

---

1. डॉ0 लोहिया: सात क्रान्तियाँ, राम मनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1979, पृष्ठ - 28
2. ओंकार शरद: लोहिया: पृष्ठ - 290

इससे अधिक अच्छा तो यह है कि उसे जेल में रखा जाय, शिक्षा देकर उसकी प्रवृत्तियों को सँभाला जाय और उससे कार्य लेकर समाज को लाभ पहुँचाया जाय। इससे उस व्यक्ति और समाज दोनों को लाभ होगा । अतः लोहिया का कहना सामाजिक दृष्टिकोण से भी उचित ही प्रतीत होता है । वह किसी के व्यक्तिगत जीवन में कोई दखल पसन्द नहीं करते थे । उनकी मान्यता थी कि "हर व्यक्ति को एक हद तक अपने जीवन को अपने मन के मुताबिक चलाने का अधिकार होना चाहिए ।"[1] उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में अगाध आस्था थी । उन्होंने साफ कहा था, "जीवन में कुछ दायरे होने चाहिए कि जिनमें राज्य का, सरकार का, संगठन का, गिरोह का दखल न हो ।"[2]

बौद्धिक स्वतंत्रता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अनुरूप, डॉ0 लोहिया ने धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का भी समर्थन किया । वह जानते थे कि मजहबों के नाम पर परस्पर झगड़े-फसाद होते हैं, फिर भी नागरिकों को मन्दिर-मस्जिद जाने, पूजा-पाठ करने और अन्तःकरण की स्वतंत्रता होनी चाहिए । डॉ0 लोहिया ईश्वर को नहीं मानते थे, मन्दिर - मस्जिद में नहीं जाते थे और धर्माधारित साम्प्रदायिकता की आलोचना करते थे, फिर भी उन्होंने सभी नागरिकों की धार्मिक स्वतंत्रता का समर्थन किया । वह धर्म-निरपेक्ष राज्य के पक्षधर थे । उनका स्पष्ट कहना था, "मैं समझता हूँ मस्जिद-मन्दिर अपने रखो । कोई भी उसमें

---

1. डॉ0 लोहियाः सात क्रांतियाँ, पृष्ठ - 29

2. डॉ0 लोहियाः सात क्रांतियाँ, पृष्ठ - 28

दखल देने जाए तो मुझ जैसा समाजवादी कहेगा कि उस दखल देने वाले को हम रोकेगें और ताकत से रोकेगें ।"[1] उनकी दृष्टि में धार्मिक हस्तक्षेप हेय और दयनीय है ।

डॉ0 लोहिया सम्पत्ति के अधिकार को व्यक्ति का मौलिक अधिकार नहीं मानते । वे नागरिकों के सम्पत्ति के अधिकार पर अंकुश तथा सीमा चाहते थे । यदि व्यक्तिगत सम्पत्ति शोषण एवं अन्याय का साधन बने, तो उसको सीमित कर देना ही अच्छा है । अपने नये एवं सच्चे समाजवाद की रूपरेखा में उन्होंने यह कल्पना की कि वह "एक ओर तो कायदे-कानून ऐसे बनायेगा कि जिसमें सम्पत्ति लोगों की व्यक्तिगत न हो और दूसरी ओर इस तरह समाज के ढाँचे को बनायेगा, नाटक, किस्से या खेलकूद या दर्शन या किताबें या उपन्यास ऐसे चलायेगा और बचपन से ही ऐसी शिक्षा देगा कि सम्पत्ति का मोह आदमी को न हो ।"[2] वैसे सम्पत्ति रखने का मौलिक अधिकार सर्वमान्य है, पर डॉ0 लोहिया ने सम्पत्ति द्वारा शोषण, अन्याय तथा भ्रष्टाचार होने वाली ज्यादतियों पर अंकुश लगाने के लिए उसे कानून द्वारा सीमित करने और स्वेच्छा से उसके प्रति स्वार्थ एवं मोह को समाप्त करने पर बल दिया ।

डॉ0 लोहिया के सम्पत्ति संबंधी विचार व्यवहारिक रूप में स्पष्ट नहीं होते एक ओर वे चौखम्भा, योजना द्वारा राज्य शक्ति के विकेन्द्रीकरण

---

1. डॉ0 लोहिया: आजाद हिन्दुस्तान में नए रूझहान, नवहिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1968, पृष्ठ - 11
2. डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 173

की बात करते हैं और दूसरी ओर सम्पत्ति का मौलिक अधिकार सत्ता को दे देते हैं अतः उनकी व्यवस्था में जनता का शासन केवल नाम मात्र का होगा। इसके अतिरिक्त सम्पत्ति के मौलिक अधिकार समाप्त होने से जनता की अधिक उत्पादन की प्रेरणा भी समाप्त हो जाती है ।

समता के अधिकार को डॉ० लोहिया ने सर्वाधिक महत्व दिया । भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं को समाप्त करने के लिए समता की भावना और व्यवहार को सर्व क्षेत्रीय बनाने में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान किया । डॉ० लोहिया ने नर-नारी समता, जाति उन्मूलन, रंग-भेद और छुआछूत की समाप्ति के लिए न केवल सिद्धान्त तथा कर्म प्रस्तुत किये, बल्कि व्यापक रूप में स्वयं संघर्ष भी किया । उन्होंने वैधानिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में समता के अधिकार का समर्थन किया । वह वैधानिक समता के अन्तर्गत विधि के समक्ष समानता, राजनीतिक समता के अन्तर्गत भेद-भाव रहित सार्वभौमिक मताधिकार, आर्थिक समता के अन्तर्गत समाजवाद की स्थापना और धार्मिक समता के लिए सहिष्णुता तथा धर्म-निरपेक्षता चाहते थे । उन्होंने स्पष्टतः कहा था कि "समता उसके सभी चार अर्थों में ग्रहण करनी चाहिए ।"[1] समता का आदर्श भले ही कल्पना मात्र लगे, पर डॉ० लोहिया ने हृदय और [illegible] उसके लिए व्यापक संघर्ष किया और कहा कि "लोग पागलपन के काम करेंगे, यदि समता

---

1. डॉ० लोहिया: मार्क्स, गाँधी, सोशलिज्म (अंग्रेजी), पृष्ठ - 24।

के लिए उनकी भूख शान्त नहीं की जाती है ।"[1] मानव स्वतंत्रता और उसके मूल अधिकारों को उन्होंने एकता की बुनियाद बतलाया । इसलिए उनका स्पष्ट कहना था कि "इसके अतिरिक्त, मानव अधिकारों का आनन्द, जो समस्त समता के आधार हैं, विक्षब्ध नहीं होना चाहिए ।"[2] इस प्रकार डॉ0 लोहिया ने न केवल मौलिक अधिकारों, अपितु समस्त मानवाधिकारों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विकास के लिए अनिवार्य बतलाया । इन्हीं की प्राप्ति से व्यक्ति एवं समाज का जीवन उच्च और समृद्ध हो पायेगा ।

[8] अन्तर्राष्ट्रीय संबंधी विचारः-

डॉ0 लोहिया अपने को देश-काल की सीमाओं से परे एक विश्व-नागरिक मानते थे । उनके समाजवादी दर्शन का स्वरूप विश्व व्यापी है । उनका चरित्र अन्तर्राष्ट्रीय है । इसका मुख्य कारण है कि डॉ0 लोहिया ने एक सम्यक एवं व्यापक दृष्टिकोण अपनाया । वह राष्ट्रीय स्तर से ऊपर उठकर विश्व-व्यवस्था के विचार और संगठन को महत्व देते थे । उनकी मान्यता थी कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाएँ अन्योन्याश्रित होती हैं, वे एक दूसरे को प्रभावित ही नहीं करती, बल्कि एक दूसरे की पूरक भी होती हैं । इस आधार पर वे कहा करते थे कि यदि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्याय और अत्याचार का वातावरण रहता है, तो किसी भी हालत में राष्ट्रीय स्तर पर न्याय और सुव्यवस्था

---

1. वही, पृष्ठ - 286

2. वही, पृष्ठ - 286

की स्थापना नहीं की जा सकती । यदि एक ओर उन्हें राष्ट्रीय हित का ध्यान था तो दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की भी वे अवहेलना नहीं कर सके । समता, सम्पन्नता, स्वतंत्रता, भातृत्व आदि के उनके नारे केवल राष्ट्र के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए है । अन्तर्राष्ट्रीय जगत में डॉ0 लोहिया जिन सिद्धान्तों को प्रतिष्ठित करना चाहते थे वे हैं - विश्व समाजवाद का नवदर्शन, संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन का नया आधार विश्व-विकास समिति की पहल, विश्व-सरकार का स्वप्न, निःशस्त्रीकरण का सशक्त प्रतिपादन और अन्तर्राष्ट्रीयवाद ।

विश्व के अभी तक के समाजवादी आन्दोलनों को डॉ0 लोहिया ने राष्ट्रीय बन्धनों से जकड़ा हुआ पाया । उनके विचार से प्रारम्भ में समाजवाद का विकास अन्तर्राष्ट्रीय विचार के रूप में हुआ । किन्तु प्रथम विश्व युद्ध में कुछ के अलावा संसार के समस्त समाजवादी दलों ने अपनी-अपनी पूँजीवादी सरकारों के प्रति विद्रोह करने के स्थान में उनके साथ सहयोग किया । फलस्वरूप समाजवाद की अन्तर्राष्ट्रीयता बिखर गई । डॉ0 लोहिया की दृष्टि में योरोप के समाजवादी दलों की आस्था अन्तर्राष्ट्रीयता की अपेक्षा राष्ट्रीयता में अधिक रही है । समाजवाद की बुनियादी कमजोरी पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि योरोप का समाजवाद बहस तथा आँकड़ों तक ही सीमित है और वह किन्हीं बड़े आदर्शों की व्यावहारिकता के लिए प्रोत्साहित नहीं करता । इसके विपरीत एशिया का समाजवाद आदर्शवादी एवं उत्साही है, पर उसमें ठोसपन का अभाव है । पूँजीवाद और साम्यवाद का अपना निश्चित पथ है, किन्तु समाजवाद का कोई निश्चित पथ नहीं है । अतः समाजवाद कहीं पूँजीवाद से मिल जाता है तो कहीं साम्यवाद से । समाजवाद को साम्यवाद या पूँजीवाद का अंग नहीं बनने देना चाहिए । उन्होंने माना कि

विश्व-व्यवस्था की स्थापना के लिए साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों ही अपर्याप्त हैं । ये दोनों ही आर्थिक एवं राजनीतिक केन्द्रीकरण के प्रतीक हैं ।[1] डॉ0 लोहिया के अनुसार, "पूँजीवादी और साम्यवादी, दोनों ही व्यवस्थाओं में जन-संस्कृति स्थूल और रूढ़िग्रस्त होती जाती है, और जन जीवन को एक भद्दापन घेर लेता है ।"[2]

डॉ0 लोहिया का मत था कि पूँजीवादी और साम्यवादी गुटों ने विश्व को कोई भी भी वास्तविक उपलब्धि प्रदान नहीं की । पूँजीवादी गुट की जनतांत्रिक और शान्तिमय परिवर्तन में आस्था उसी प्रकार कृत्रिम है जिस प्रकार जीवन का समान स्तर बनाए रखने ओर निर्धनता मिटाने का साम्यवादी दावा । ये दोनों ही सभ्यताएँ एकांगी हैं । उन्होंने यह स्पष्ट कहा कि "सारे मानवों को पेट भर अन्न", "मन की आजादी की प्यास" और "युद्धबन्दी" की तीन प्रमुख समस्याओं का समाधान न सोवियत गुट दे सकता है और न अमरीकी गुट ।"[3] लोहिया का कहना था कि दोनों ही वाह्य परिस्थिति के अनुसार प्रगति के आदर्श होने का दावा करते हैं लेकिन दुनिया के वास्तविक प्रश्नों को हल करने की क्षमता दोनों में ही नहीं है । साम्यवादी और पूँजीवादी दोनों गुट क्रमशः रोटी और संस्कृति अथवा पेट और मन अथवा आर्थिक लक्ष्य और सामान्य लक्ष्य के झूठे

---

1. डॉ0 लोहियाः मार्क्स, गाँधी, सोशलिज्म, पृष्ठ - 283
2. डॉ0 लोहियाः कांचन-मुक्ति, नवहिन्द पब्लिकेशन्स, बेगम बाजार, हैदराबाद 1956, पृष्ठ - 30
3. डॉ0 लोहियाः मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 243

प्रतीक हैं । इस आधार पर पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों को यूरोपीय सभ्यता की भिन्न शाखाएँ बताकर लोहिया ने समाजवाद के एक नए अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया ।

उपर्युक्त एकांगी सभ्यताओं से भिन्न एक तृतीय सभ्यता के सृजन का श्रेय डॉ0 लोहिया को है । उन्होंने एक ऐसे समाजवादी दर्शन का प्रतिपादन किया जिसका आधार राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में समता, सम्पन्नता तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" होगा ।[1] और जो साम्यवादी तथा पूँजीवादी गुटों के आपसी हानिकारक द्वन्द्व को समाप्त करेगा । विश्व-समाजवाद का नवीन दर्शन "अधिकतम कौशल" की जगह "सम्पूर्ण कौशल" की सभ्यता को जन्म देगा जिसमें राष्ट्रीय सीमाओं के अन्दर निरन्तर जीवन स्तर न बढ़कर, सभी राष्ट्रों में एक अच्छा जीवन स्तर उत्पन्न होगा । यह नई सभ्यता समस्त संसार में लगभग समान उत्पादन द्वारा मानव जाति की समीपता, वर्ग तथा वर्ण और क्षेत्रीय विषमता का अन्त करने का प्रयत्न करेगी । इसकी तकनीकी और प्रशासकीय व्यवस्था इस आवश्यकता के अनुकूल होगी और विकेन्द्रित समुदायों की आपसी महत्ता के आधार पर तथा एक मानवता की एकता द्वारा लोग अपना शासन स्वयं चला सकेंगे । मनुष्य समूह में और व्यक्तिगत रूप में अन्याय के विरूद्ध सविनय अवज्ञा का प्रयोग कर सकेगा। इस समाजवादी विश्व-व्यवस्था में राष्ट्रों के अन्दर ही नहीं, अपितु राष्ट्रों के बीच सम्भव समता होगी । यह समता, भौतिक और अध्यात्मिक होगी ।[2] इस

---

1. डॉ0 लोहिया: इन्टरवल ड्यूरिंग पालिटिक्स, पृष्ठ - 22
2. डॉ0 लोहिया: नया समाज, नयामन, पृष्ठ - 11

इस सभ्यता के अन्तर्गत विश्व-सरकार, विश्व-नागरिकता, मानव अधिकारों की मान्यता, जनतांत्रिक प्रतिनिधित्व, श्रम की प्रतिष्ठा और मानव व्यक्तित्व के प्रति सम्मान आदि सुलभ होंगे ।

इस नवीन सभ्यता में स्वतंत्र और अधीन के सम्बन्ध नहीं होंगे । इसमें अन्योन्याश्रित सम्बन्धों का साम्राज्य होगा । कोई राष्ट्र किसी से बड़ा या छोटा न समझा जायेगा । वे समानता के आधार पर अन्योन्याश्रित होंगे । इसी प्रकार इसमें न तो मार्क्सवाद की तरह आत्मा पदार्थ के अधीन होगी और न ही गाँधीवाद की तरह पदार्थ आत्मा के अधीन । दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हुए एक दूसरे से सहयोग करेंगे । वे अन्योन्याश्रित होंगे । आत्मा और पदार्थ जैसा सम्बन्ध ही आर्थिक लक्ष्य और साधारण लक्ष्य, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, क्रान्ति और करूणा, विचार और शक्ति, धर्म और राजनीति आदि के मध्य भी होगा । यहाँ कहीं भी द्वन्द्व नहीं । सर्वत्र संतुलन और सामंजस्य की इसमें धूम होगी ।

डॉ0 लोहिया के दर्शन में व्यक्ति ही साध्य और साधन माना गया है । वही समाज को परिवर्तित करता है और समाज से स्वयं में भी परिवर्तन लाता है । डॉ0 लोहिया ने व्यक्ति को गरिमा, दायित्व, अधिकार-चेतना से भर दिया है । इसके लिए शिक्षा, रचनात्मक कार्य आदि की व्यवस्थाएँ साधन के रूप में दे दी है । उन्होंने यदि व्यक्ति के मन को सँभाला है तो दूसरी तरफ उसके पेट के लिए भी योजनाएँ प्रस्तुत की हैं । उसके लिए जिन आध्यात्मिक और भौतिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता होगी, वे सब उन्होंने प्रस्तुत की है।

डॉ0 लोहिया तीसरे खेमे, तृतीय सभ्यता अथवा नव-समाजवादी दर्शन के समर्थक थे । वह तटस्थ गुट को मानते थे, जिसकी वास्तविकता समदृष्टि पर आधारित है । तटस्थ राज्यों की भूमिका, जैसा कि डॉ0 लोहिया चाहते थे, निष्क्रिय, खोखली सिद्धान्तहीन तथा भयातुर न होकर ठोस, सक्रिय, निर्भीक और सम्पूर्ण कौशल से युक्त होनी चाहिए । तटस्थ राज्यों का मतलब रूसी और अमेरिकी खेमों के बीच झूलते रहना नहीं है, अपितु वे निःस्वार्थ ढंग से अन्तर्राष्ट्रीय समता के व्यावहारिक दर्शन पर आधारित होगा, जिसे डॉ0 लोहिया ने नव-समाजवादी दर्शन कहा है और यह आशा प्रकट की कि साम्यवादी और पूँजीवादी गुट अपने द्वन्द्व भूलकर संभवतः उसी में समाहित हो जायेंगे । इसी से शक्तिपूर्ण संयुक्त राष्ट्रों के संघ का निर्माण होगा ।

तटस्थ गुट और "तृतीय खेमे में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि तृतीय खेमा नवीन सभाजवादी दर्शन पर आधारित होगा, जबकि तटस्थ राज्य राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से किसी दर्शन विशेष के कारण नहीं, अपितु केवल गुट निरपेक्षता-नीति के कारण गुटों से दूर रहते हैं । अतः तटस्थ गुट अस्थायी है, जब कि तृतीय खेमा निस्वार्थ ढंग से अन्तर्राष्ट्रीय समता के व्यावहारिक दर्शन पर आधारित होने के कारण स्थायी है । यह एक ऐसी विश्व व्यवस्था है जिसके आकर्षण में फँसकर साम्यवादी और पूँजीवादी गुट अपने द्वन्द्व भूलकर संभवतः उसी में समाहित हो सकते हैं । डॉ0 लोहिया का नवीन समाजवादी दर्शन विभिन्न विरोधी

---

1. डॉ0 लोहिया: नया समाज, नयामन, पृष्ठ - 11

तत्वों का मौलिकता युक्त सामंजस्य है । उनके विचार तो आशावादी और उचित हैं, किन्तु कठिनाई यह है कि अभावों, दुर्गुणों और मत-भिन्नता से आक्रान्त मानव किस प्रकार इस सभ्यता को प्राप्त करने हेतु संयमित तथा संगठित हो सकते हैं ? काश सब मानव लोहिया होते ।

डॉ० लोहिया संयुक्त राष्ट्र संघ का पुनर्गठन चाहते थे क्योंकि उनकी दृष्टि में यह संस्था विश्व शान्ति के लिए अपर्याप्त है । इस संस्था के मुख्य दोष सार्वभौमिकता का अभाव, सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता, निषेधाधिकार और असमानता है । उनका मत था कि शासनों के चरित्र के आधार पर सदस्यता का निषेध दलबन्दी और षडयन्त्रों को जन्म देता है । सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता और निषेधाधिकार के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय वर्ण-व्यवस्था को वैधानिक अभिव्यक्ति प्रदान की गई है । स्थायी सदस्यों को विशेषाधिकार प्राप्त ब्राह्मण और अन्य सदस्यों को अछूत जैसा उपेक्षित बना दिया गया है । इसके अतिरिक्त विश्व की 1/3 (एकतिहाई) आबादी वाले योरोप को संयुक्त राष्ट्र संघ की सर्वोच्च कार्यपालिका में तीन चौथाई मत दिया जाना और महासभा में अधिक से अधिक मत दिया जाना विषमता का प्रतीक है ।[1] उपर्युक्त दोषों के कारण डॉ० लोहिया के मत में, मानव जाति की वास्तविक संस्था बनने के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ षडयंत्रों का अखाड़ा बन गया है । इस प्रकार का संयुक्त राष्ट्र संघ रोग में अवरोध भले ही उत्पन्न कर दें, किन्तु उसे समाप्त न कर सकेगा क्योंकि

---

1. देखिए, डॉ० लोहिया, विल टू पावर, पृष्ठ - 75

डॉ० लोहिया, इतिहास चक्र, पृष्ठ - 79

इसके निर्णय शक्ति और गुट के आधार पर लिए जाते हैं । यह समस्त राष्ट्रों को एक अन्तर्राष्ट्रीय संप्रभुता के अधीन नहीं ला सकता क्योंकि यह विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक और सैनिक शक्तियों के असंतुलन को समाप्त करने में असमर्थ है ।[1]

डॉ0 लोहिया संयुक्त राष्ट्र संघ का इस प्रकार से पुनर्गठन चाहते थे कि प्रत्येक उस राष्ट्र को सदस्यता का अधिकार हो जो कि अपने मामलों को नियंत्रित करने के लिए एक सरकार रखता हो । उनकी दृष्टि में सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता और निषेधाधिकार (वीटो) को समाप्त कर विश्व को उच्च और नीच ब्राह्मण और शूद्र में विभाजित होने से बचाने का प्रयास करना चाहिए। उनकी इच्छा थी कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का गठन इस प्रकार का हो कि वह मानव जाति के दिल और दिमाग को स्वीकार्य हो । वे चाहते थे कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का पुनर्गठन भविष्य की विश्व-सरकार के लिए एक अच्छी पृष्ठ-भूमि तैयार करें और राष्ट्रों के मध्य आर्थिक और सैनिक विषमताओं को समाप्त करें ।

डॉ0 लोहिया ने संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन के जो आधार बतलाए हैं वे बहुत ही आदर्शवादी एवं अव्यवहारिक है । विश्व की वर्तमान परिस्थितियों में इन्हें व्यवहारिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता । आज के अपर्याप्त अधिकार वाले संयुक्त राष्ट्रसंघ के आदेशों का राष्ट्र यदि पालन नहीं कर सकते

---

1. डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 396

हैं तो उनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे एक पर्याप्त शक्तिशाली संघ का निर्माण कर सकेंगे । सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता और वीटो की समाप्ति का प्रतिपादन कर डॉ० लोहिया ने अन्तर्राष्ट्रीय समता का स्वर्णिम आदर्श विश्व के समक्ष रखा है, किन्तु उनका विचार बालू में से तेल निकालने के समान है । इस बात की आशा करना व्यर्थ है कि वे अपनी-अपनी निषेधाधिकार (वीटो) और स्थायी सदस्यता की विशेष स्थिति छोड़कर छोटे-छोटे राष्ट्रों के बहुमत से अपने को जकड़कर बाँध लेंगे ।

डॉ० लोहिया ने विश्व-शान्ति और सम्पूर्ण कौशल की नवीन सभ्यता की प्राप्ति हेतु एक विश्व विकास संस्था की स्थापना को अनिवार्य बतलाया । उनके मत में विदेशी सहायता लेने और देने वाले दोनों राष्ट्रों को भ्रष्ट करती हैं । इसके अतिरिक्त विदेशी सहायता प्राप्त करने वाले राष्ट्र के अन्दर भ्रष्टाचार, बेकारी, आलस्य, घूसखोरी, बढ़ती है । इतना ही नहीं, कर्ज नीति और सहयोग नीति से गुबन्दी और गुटबन्दी से विश्व-युद्ध की संभावनाओं को बल प्राप्त होता है ।[1] कर्ज नीति का एक दोष यह भी है कि कर्ज देने वाले राष्ट्र अपने ही हितों की सुरक्षा के लिए कर्ज देते हैं, दूसरे राष्ट्रों के विकास के लिए नहीं। उपर्युक्त कारणों से डॉ० लोहिया ने कर्जनीति और विदेशी सहायता को अनुचित ठहराया और उसकी समाप्ति का प्रतिपादन किया । दूसरे देशों को कर्ज देने वाले राज्यों से उन्होंने कहा, "यदि आप विदेशी मदद देना चाहते हैं तो सारे

---

1. डॉ० लोहियाः इतिहास चक्र, पृष्ठ - 76-77

विश्व को एक परिवार के रूप में समझें ।"[1] सम्पूर्ण विश्व के राष्ट्रों को एक परिवार के भाइयों की तरह एक दूसरे को सहयोग देने के लिए उन्होंने विश्व-विकास संस्था के निर्माण का आदर्श रखा । इस विश्व-विकास संस्था को प्रत्येक राष्ट्र अपनी क्षमता के अनुसार चन्दा देगा और आवश्यकतानुसार सहयोग ले सकेगा। उनका मत था कि जब तक इस संस्था का निर्माण नहीं होता तब तक अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद ऐसी आदर्श योजनाओं को लागू करने का प्रयत्न करेगा जो कि व्यापारिक संघों, सहकारी समितियों, कृषक संगठनों तथा अन्य सब इच्छुक व्यक्तियों, द्वारा एकत्रित संयुक्त पूँजी पर अवलम्बित होगी । उदारवादी, शान्तिवादी और धार्मिक संगठन भी शुरूआत में हाँथ बटाकर शामिल हो सकते हैं ।[2]

विदेशी सहायता अथवा कर्ज नीति-उन्मूलन संबंधी डॉ0 लोहिया का विचार राष्ट्रों में स्वावलम्बन और स्वाभिमान का भाव भरता है । उनका यह विचार भी उचित है कि राष्ट्र अपने हितों को ध्यान में रखकर ही अन्य राष्ट्रों को सहायता देते हैं । किन्तु उनका यह कहना गलत है कि इससे सहायता पाने वाले राष्ट्र का हित नहीं होता, और यदि हित नहीं होता तो इसमें सहयोग प्राप्त करने वाले राष्ट्र की अकुशलता का दोष है, न कि सहयोग देने वाले राष्ट्र का । सहयोग देने वाला राष्ट्र तो उसी समय दोषी ठहराया जा सकता है जबकि वह अनुचित लाभ उठाये । अब यह सहयोग प्राप्त करने वाले राष्ट्र

---

1. डॉ0 लोहिया: इन्टरवल ड्युरिंग पालिटिक्स, पृष्ठ - 23
2. डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 467

का कर्त्तव्य है कि वह इस सम्बन्ध में सचेत रहे । आधुनिक युग में यदि विदेशी सहयोग की व्यवस्था बन्द हो जाए तो विकासशील राष्ट्रों का विकास भी कम से कम आंशिक रूप में आबद्ध हो सकता है । जहाँ तक डॉ0 लोहिया की विश्व-विकास-समिति की योजना का प्रश्न है, यह निःसन्देह सराहनीय है इस योजना में कोई दोष नहीं प्रतीत होता, सिवाय इसके कि उसे संभव किस तरीके से बनाया जाए । विश्व-विकास समिति की स्थापना तक डॉ0 लोहिया ने विभिन्न संघों द्वारा विभिन्न राष्ट्रों के सहयोग के लिए जिस संयुक्त पूँजी के निर्माण की योजना दी है, मतैक्य के अभाव में, उसकी सम्भाव्यता पर भी संदेह होता है ।

डॉ0 लोहिया ने विश्व सरकार की स्थापना के स्वप्न को साकार बनाने के लिए राष्ट्रों में मतैक्य की आवश्यकता पर बल दिया । उनके मतानुसार सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था ग्राम, मण्डल, प्रान्त, राष्ट्र और विश्व जैसे पाँच खम्भों पर आधारित होगी । इन पाँच इकाइयों के अपने-अपने क्षेत्र में निश्चित अधिकार होंगे । विश्व-सरकार की संसद में दो सदन होंगे । निम्न सदन के सदस्यों का चुनाव सीधे वयस्क मतदाताओं द्वारा जनसंख्या के आधार पर होगा और उच्च सदन में प्रत्येक छोटे-बड़े राज्य को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा । विश्व-संसद वर्ग और वर्णहीन होगी तथा उसमें मानवीय निर्णय मानव जाति की जागृति के लिए होंगे । प्रत्येक राष्ट्र के प्रतिरक्षा व्यय का कुछ हिस्सा विश्व-सरकार को देकर उसकी एक सेना खड़ी की जाएगी और अन्ततोगत्वा राष्ट्रीय सेनाओं

पर अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण स्थापित किया जाएगा ।[1] डॉ0 लोहिया ने कहा कि विश्व सरकार गुणों के आधार पर विवादों का समाधान करेंगी न कि सैन्य अथवा अन्य प्रकार की शक्ति के आधार पर । मानव जाति के निर्णयों को कोई एक देश भंग न कर सकेगा ।

डॉ0 लोहिया की विश्व सरकार की कल्पना प्लेटों के आदर्श राज्य के समान अव्यवहारिक प्रतीत होती है । आज तो छोटे से घर के भाई आपस में मिल कर नहीं रह पाते तो हम यह आशा किस प्रकार करें कि आज के संप्रभुता सम्पन्न विशाल राज्य अपनी सर्वोच्च सत्ता और अंह का त्याग करके विश्व व्यवस्था में सम्मिलित हो जाएगें ।

डॉ0 लोहिया ने निःशस्त्रीकरण का सशक्त समर्थन किया, ताकि विभिन्न देशों के बीच युद्ध न हों । उनके मत में शस्त्रास्त्रों के निर्माण से विश्व का तन, मन, धन व्यर्थ जा रहा है और विश्व में भय-आशंका की स्थिति उत्पन्न हो रही है ।[2] उनकी सलाह थी कि हथियारों के निर्माण में व्यय होने वाली विश्व की राशि रचनात्मक कार्यों में लगायी जानी चाहिए ।

डॉ0 लोहिया की दृष्टि में अच्छे कार्यों को सम्पन्न करने के लिए भी हथियारों का प्रयोग नहीं करना चाहिए । हथियार शक्ति को केन्द्रीकृत

---

1. इन्दूमती केलकरः लोहियाः सिद्धान्त और कर्म, पृष्ठ - 402
2. डॉ0 लोहियाः समाजवादी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ - 107

करते हैं । ये मानव के दिल को कमजोर बनाते हैं । इसके प्रयोग से मनुष्य इनका दास हो जाता है । यही कारण है कि महान् व्यक्तियों ने सदैव हथियारों को घृणा की दृष्टि से देखा है । उनका कहना था कि "कठोरता और पशुता जनता और शासन दोनों के लिए त्याज्य है । इसलिए इस प्रकार का विश्व मस्तिष्क निर्मित करना चाहिए जो हिंसा से घृणा करे, किन्तु अन्याय का अहिंसात्मक प्रतिकार करना सीखें ।"[1] डॉ0 लोहिया के विचार में सच्चा और सफल निःशस्त्रीकरण तभी हो सकता है जब कि विश्व में समानता स्थापित हो । मानव समाज के विकसित एक तिहाई और अविकसित दो तिहाई भागों की उत्पादन-शक्ति में विशाल असमानता गंभीर आर्थिक असन्तुलन उत्पन्न करती है जिससे विभिन्न प्रकार के संघर्ष उत्पन्न होते हैं और सम्पन्न भागों की निधियों की रक्षा के लिए शास्त्रास्त्रों की पागल होड़ प्रारम्भ हो जाती है । इसलिए डॉ0 लोहिया ने कहा "जब तक सम्पूर्ण संसार में संभव समानता नहीं लायी जाती, तब तक निःशस्त्रीकरण असंभव है ।"[2]

डॉ0 लोहिया का मत था कि शस्त्रीकरण में वृद्धि सफल सामूहिक सुरक्षा के अभाव का परिणाम है, क्योंकि सामूहिक सुरक्षा के अभाव में अन्याय करने और अन्याय के प्रतिकार हेतु शस्त्रों का सृजन होता है । अतः अन्याय शस्त्रों का जनक है । इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि सफल निःशस्त्रीकरण

---

1. डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 34
2. डॉ0 लोहिया: मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 466

हेतु विवेक सम्मत सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए ।[1]

डॉ० लोहिया का मानना था कि विषमता और अन्याय को समाप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सत्याग्रह किए जाने चाहिए । न्याय और समता की स्थापना के लिए यदि अहिंसात्मक उपाय नहीं किए जाते तो फिर हिंसा के द्वारा उसका प्रतिकार होगा और वह स्थिति भयावह तथा संसार नाशक होगी । विश्व के कोने-कोने में अन्याय और विषमता के विरूद्ध सत्याग्रह छेड़ने पर जोर देकर उन्होंने निःशस्त्रीकरण की कल्पना को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का प्रयास किया ।

डॉ० लोहिया का विश्व-समाजवादी चिन्तन अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना से ओत-प्रोत है । इसका अर्थ है व्यक्ति अपने राष्ट्र के साथ-साथ अन्य राष्ट्रों से भी प्रेम करें । अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना विश्व के बीच शान्तिपूर्ण सहयोग और परस्पर सद्भाव की वृद्धि करती है । डॉ० लोहिया ने अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना को समृद्ध बनाने के लिए, नवीन विश्व-व्यवस्था के सृजन हेतु, चार सूत्री योजना प्रस्तुत की- (1) एक देश की जो पूँजी आर्थिक शोषण के लिए लगी है उसे जब्त करना (2) विश्व भर के लोगों को संसार में कहीं भी जाने और बसने का अधिकार हो; (3) विश्व के सभी राष्ट्रों की स्वतंत्रता कायम रहे, और (4) विश्व-नागरिकता का प्रावधान सबको सुलभ हो ।[2] साथ ही डॉ० लोहिया

---

1. डॉ० लोहियाः आजाद हिन्दुस्तान में नये रूझहान, पृष्ठ - 14

2. डॉ० लोहियाः मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज्म, पृष्ठ - 152-153

ने अपने अन्तर्राष्ट्रीयवाद के विचार को साकार बनाने के लिए राष्ट्रों की सर्वांगीण समानता, जाति-प्रथा का उन्मूलन, रंग-भेद की नीति की समाप्ति और विश्व-सरकार पर अत्यधिक बल दिया । संक्षेप में, उनका अन्तर्राष्ट्रीयवाद सम्यक् दृष्टि, शान्ति और आशावाद का प्रतीक है ।

अध्याय - सप्तम्

मूल्यांकन

डॉ0 राम मनोहर लोहिया सामाजिक चिन्तक, राजनीतिक विचारक तथा भविष्य द्रष्टा थे, लेकिन उनका चिन्तन राजनीति तक कभी सीमित नहीं रहा । संस्कृति, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भाषा आदि के सम्बन्ध में भी उनके मौलिक विचार थे । व्यापक दृष्टिकोण, दूरदर्शिता, समन्वय और संतुलन उनकी चिन्तन धारा की विशेषता थी । उनकी विचारधारा देश काल की परिधि से बँधी नहीं थी । विश्व की रचना और विकास के सम्बन्ध में उनकी अनोखी व अद्वितीय दृष्टि थी ।

डॉ0 लोहिया के चिन्तन में अनेकता के दर्शन होते हैं । एक ओर उनका दर्शन ध्वंसात्मक है तो दूसरी ओर रचनात्मक भी । एक ओर यदि वे गृह-व्यवस्था से लेकर विश्व-व्यवस्था तक के प्रति विद्रोह कर उसे ध्वस्त करते हुए प्रतीत होते हैं तो दूसरी ओर प्रत्येक स्तर की व्यवस्था का पुर्ननिर्माण करने में भी नहीं चूकते । वे कुरूप, त्रस्त, दलित, भूखे और नंगे वर्तमान को इसलिए ध्वस्त करना चाहते हैं कि उसका स्थान एक सुन्दर, सुखी और सम्पन्न भविष्य ले सके । लोहिया के दर्शन का ध्वंसात्मक पहलू उनके सृजनात्मक पहलू का एक अभिन्न अंग है । इस संदर्भ में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके द्वारा प्रतिपादित राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि व्यवस्थाओं के मानचित्र इसके ज्वलंत प्रमाण हैं । लेकिन उनकी कुछ आदर्श योजनाऐं कुछ लोगों को अव्यवहारिक और असम्भव सी प्रतीत हो सकती है जैसे विश्व सरकार,

संयुक्त राष्ट्र संघ का पुनर्गठन, विश्व-समाजवाद का नवदर्शन, भूमि का पुर्नवितरण, अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी उन्मूलन, अन्तर्राष्ट्रीय जाति-प्रथा उन्मूलन सम्बन्धी उनकी आदर्श कल्पनाएँ ।

उनकी कुछ विचारधाराएँ कुछ लोगों को विरोधाभास से भी परिपूर्ण प्रतीत हो सकती है । क्योंकि एक ओर वे व्यक्तिगत सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण का प्रतिपादन करते हैं तो दूसरी ओर व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भी । एक ओर खर्च पर सीमा लगाकर वे जीवन को सरल बनाना चाहते हैं तो दूसरी ओर वे सम्पन्नता और आनन्द को भी आवश्यक मानते हैं । एक जगह वह यह कहते हैं कि अधिकार की भावना के आए बिना कर्त्तव्य की भावना नहीं आ सकती । इसी प्रकार उनका मत था कि सिद्धान्त दीर्घकालीन कार्यक्रम है और कार्यक्रम अल्पकालीन सिद्धान्त, धर्म दीर्घ कालीन राजनीति है और राजनीति अल्पकालीन धर्म । रूसों के समान उनकी ऐसी कई उक्तियाँ विरोधाभासपूर्ण प्रतीत होती हैं। उन्हें समझने के लिए गहन दृष्टि की आवश्यकता है । डॉ0 लोहिया के राजनीतिक चिन्तन की यह विशेषता थी कि वे वर्तमान की राजनीति को सुदूर से और सुदूर की राजनीति को वर्तमान से जोड़ते थे ।

डॉ0 लोहिया बहुमुखी क्रान्तिकारी दर्शन के जनक थे । अन्याय का तीव्रतम प्रतिकार उनके कर्मों व सिद्धान्तों की बुनियाद रही है । संसदीय राजनीति में तो वे क्रान्तिकारी थे ही, किन्तु संसद के बाहर की राजनीति को वे उससे भी अधिक तीव्र करना चाहते थे । वे जानते थे कि क्रान्ति के एक पहलू को पकड़ना क्रान्ति का विरोध करना है । उनके कठोर कर्म, व्यावहारिक राजनीति

और तेज आन्दोलनों से क्रमशः यह प्रतिपादित हुआ है कि उनमें न केवल देश की जटिल समस्याओं को समझने की अपूर्व क्षमता थी, वरन् देश को सही नेतृत्व देने वाला उनका समर्थ व्यक्तित्व भी था ।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की उनमें गहरी समझ थी और उनके बारे में उन्होंने मौलिक सिद्धान्त भी प्रतिपादित किए हैं, वस्तुतः देश के समाजवादी चिन्तन में उनका मौलिक योगदान स्वीकार किया जायेगा । परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि डॉ0 लोहिया ने देश के युगों से जकड़े जन-समाज और निष्क्रिय तथा निष्फल राजनीति को अपने चिन्तन और कर्म से गति और दिशा प्रदान करने का अथक प्रयत्न किया है । उन्होंने देश के सामने भाषा, जाति-धर्म, दल, संसदीय पद्धति, जनान्दोलन, मिली-जुली सरकार तथा चिरन्तन सत्याग्रह आदि ऐसे मौलिक तथा क्रान्तिकारी सिद्धान्त रखे हैं, जिनके बारे में पहले शंका और सन्देह का वातावरण रहा, पर बाद में सिद्ध हुआ कि उनकी दृष्टि देश के सन्दर्भ में कितनी पैनी है और उनका कर्म कितना प्रखर है । डॉ0 लोहिया ने वर्तमान व्यवस्था पर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी पहलुओं से प्रहार किया ।

राष्ट्रीय जीवन के उत्थान के लिए डॉ0 लोहिया ने साम्प्रदायिकता जाति प्रथा, नर-नारी असमानता, अस्पृश्यता, रंग-भेद नीति तथा अन्य इसी प्रकार की सामाजिक कुरीतियों पर गहरा प्रहार किया । डॉ0 लोहिया की सामाजिक साधना ने राष्ट्रीय जीवन के मस्तिष्क और आत्मा का विकास किया है । उन्होंने

जिस सामाजिक समता का प्रतिपादन किया है वह जनस्पर्शी और क्रान्तिकारी है । यह डॉ0 लोहिया ही थे जिन्होंने 700-800 वर्ष पुरानी दासता को इन सामाजिक विषमताओं की उपज बताया । उनका मत था कि भारतीय समाज को जब तक सामाजिक समता प्राप्त नहीं होती, तब तक आर्थिक समता कोई अर्थ नहीं रखती । उनकी दृष्टि में भारतीय समाजवाद का सामाजिक समता से घनिष्ठ सम्बन्ध है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आर्थिक समता की ओर उन्होंने कम ध्यान दिया ।

डॉ0 लोहिया ने आर्थिक क्षेत्र में देश के समक्ष ठोस सुझाव प्रस्तुत किये । भारत में व्याप्त आय-विषमता, मूल्य वृद्धि, भ्रष्टाचार, वर्ग - व्यवस्था, जमींदारी, आर्थिक केन्द्रीकरण और विलासिता को वे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे । अन्न एवं भू-सेना तथा छोटे यन्त्रों की योजना एक ओर उनकी मौलिक प्रतिभा की परिचायक है और दूसरी ओर उनकी आत्म स्वावलम्बन की भावना को भी व्यक्त करती है । कुछ विचारकों को ऐसा प्रतीत हो सकता है कि आय की सीमा बाँधना, मूल्य को निश्चित करना अथवा व्यय पर प्रतिबन्ध आदि की उनकी नीतियाँ अव्यवहारिक हैं । किन्तु वास्तविकता कुछ और ही है । अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इन नीतियों के कार्यान्वयन में कठिनाइयाँ अधिक आयेंगी ।

डॉ0 लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में चौखम्भा-योजना का महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने चौखम्भा योजना प्रस्तुत करके राजनैतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण किया जो व्यक्ति की राजनैतिक स्वतंत्रता का परिचायक है । डॉ0 लोहिया

समाजवाद को प्रजातंत्र के बिना अधूरा और अपर्याप्त मानते थे । दो खम्भों-केन्द्र एवं प्रान्त वाली संघात्मक व्यवस्था को अपर्याप्त माना और इसीलिए उन्होंने अपनी चौखम्भा योजना के अन्तर्गत ग्राम, मण्डल, प्रान्त और केन्द्र इन चार समान प्रतिभा और सम्मान वाले खम्भे में शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया । इस प्रकार लोहिया का विश्वास था कि देश में राजनीतिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण द्वारा ही नागरिकों का अपने स्थानीय शासन और संसाधन जुटाने से ही देश का उत्थान किया जा सकता है । विकेन्द्रीकरण से ही सभी नागरिक अपने भाग्य के निर्माता बन सकते हैं । चौखम्भा राज्य में ही सभी नागरिकों की प्रजातांत्रिक भागीदारी संभव हो सकेगी ।

डॉ0 लोहिया ने लोक-भाषा और मातृ भाषा को प्रतिष्ठित करने के लिए जो सिद्धान्त और कर्म दिये हैं, वे अद्वितीय हैं । गरीबों, किसानों और शोषितों को उनकी भाषा देकर उन्होंने उनमें आत्म-स्वावलम्बन, राजनैतिक जागरण और स्वतंत्रता के बीज बोये हैं । उनके 'पेट' की समस्याओं को ही नहीं, अपितु 'मन' की भी समस्याओं को सुलझाने का प्रयास डॉ0 लोहिया ने किया । उनकी भाषा नीति की आलोचना लोग यह कहकर कर सकते हैं कि उन्होंने भाषा के स्तर को निम्न किया अथवा साहित्यिक गरिमा को आघात पहुँचाया है । किन्तु यह आलोचना उचित नहीं कही जा सकती क्योंकि भाषा के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि वह सामान्यजन की भाषा बने । डॉ0 लोहिया का विचार था कि जब तक भारत की एक सर्व-सम्मत भाषा नहीं होगी तब तक उसकी समाजवादी विचारधारा भारतीय जीवन के सन्दर्भ में निष्प्रयोजनीय है ।

डॉ0 लोहिया के दर्शन के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उसमें संतुलन और सम्मिलन का समावेश है । डॉ0 लोहिया को भारतीय संस्कृति से न केवल अगाध प्रेम था, बल्कि उसकी आत्मा को उन्होंने हृदयगम किया था। उन्होंने 'अद्वैतवाद', 'ब्रह्मज्ञान' की जिस तरह सही व्याख्या की है, उसी तरह राम, कृष्ण और शिव की भी क्रमशः सीमित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व के प्रतीक के रूप में अराधना की है । उन्होंने अपनी संस्कृति को एकता और समता का मूल बतलाया है । उनका विश्वास था कि पश्चिमी विज्ञान और भारतीय अध्यात्म का सच्चा मिलन तभी हो सकता है जब दोनों को इस प्रकार संशोधित किया जाय कि वे एक दूसरे के पूरक बनने में समर्थ हो सकें । वे उस समाजवाद को एकांगी और अपर्याप्त समझते थे जो अध्यात्मवाद और भौतिकवाद में से किसी एक का पुछल्ला मात्र बनकर रह जाता है । डॉ0 लोहिया में भारत की आध्यात्मिकता और पश्चिम की कार्य क्षमता का सम्मिश्रण है । उनका विश्वास था कि "सत्यं, शिवम् सुन्दरम्" के प्राचीन आदर्श और आधुनिक विश्व के "समाजवाद, स्वातंत्रय और अहिंसा" के त्रिसूत्रीय आदर्श को इस रूप में रखना होगा कि वे एक दूसरे का स्थान ले सकें । वही मानव जीवन का सुन्दर सत्य होगा और उस सत्य को जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए मर्यादा-अमर्यादा का, सीमा असीमा का बहुत ध्यान रखना होगा ।

डॉ0 लोहिया की मान्यता है कि आत्मा पदार्थ को प्रभावित करती है और पदार्थ आत्मा को । इसी प्रकार आर्थिक लक्ष्य साधारण लक्ष्य को प्रभावित करते हैं और साधारण लक्ष्य आर्थिक लक्ष्य को । व्यक्ति लक्ष्य को प्रभावित

करते हैं और साधारण लक्ष्य आर्थिक लक्ष्य को । व्यक्ति समाज को प्रभावित करता है और समाज व्यक्ति को । राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता को और अन्तर्राष्ट्रीयता राष्ट्रीयता को प्रभावित करती है । विरोधी समझे जाने वाले दोनों तत्वों में अधीन और स्वतंत्र का रिश्ता उचित नहीं । इस प्रकार के रिश्तों की खोज करने वाले दर्शन अपर्याप्त, अव्यावहारिक और असत्य हैं । ऐसे दोनों तत्वों के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्धों का दिग्दर्शन ही यथार्थता है और यह यथार्थता डॉ0 लोहिया के दर्शन में हमें बड़े सुन्दर और स्वाभाविक ढंग से मिलती है ।

लोहिया जी के मतानुसार वही व्यक्ति समाज को सही दिशा दे सकता है जिसको भूत की अनुभूति हो, वर्तमान का ज्ञान हो और भविष्य का सपना हो । डॉ0 लोहिया में ये तीनों बातें चरमावस्था में विद्यमान थीं । वह युगदृष्टा थे, कर्मयोगी थे "निरन्तर संघर्ष उनका बाना था"। "मानेंगे नहीं पर मारेंगे नहीं" उनका नारा था । जब तक पृथ्वी पर अन्याय रहेगा तब तक उस अन्याय से लड़ने की प्रेरणा डॉ0 लोहिया ने दी है । अन्याय के सामने झुकना अन्याय को बढ़ाना है । इसलिए अन्याय का मुकाबला करना ही मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है - यह सीख लोहिया जी बराबर देते रहे ।

डॉ0 लोहिया की चिन्तन धारा देश-काल की परिधि में कभी भी नहीं बँधी । जिस कार्य को उन्होंने एक राष्ट्र में करना चाहा था । वही कार्य वे सम्पूर्ण विश्व में करना चाहते थे एक स्थान विशेष की राजनीति को वे सदैव सम्पूर्ण विश्व की राजनीति से जोड़ते थे । भारत की जाति व्यवस्था के यदि

वे विरोधी थे तो वे अन्तर्राष्ट्रीय जाति-प्रथा को भी विनष्ट करना चाहते थे । जमींदारी को यदि वे भारत से समाप्त करना चाहते थे तो वे विश्व से भी जमींदारी प्रथा को समाप्त करना चाहते थे । उनके विचार में यह एक अन्तर्राष्ट्रीय जमींदारी ही है जिसके अनुसार साइबेरिया या आस्ट्रेलिया या केनेडा के बहुत बड़े हिस्से में एक वर्गमील पर प्रायः एक, केलिफोर्निया में एक वर्गमील पर 7 या 8 व्यक्ति और भारत में लगभग 350 व्यक्ति रहते हैं । इसके लिए राष्ट्रों के बीच भूमि के पुर्नवितरण की उन्होंने चर्चा की । भले ही उनका यह विचार आज की परिस्थितियों में एक कल्पना मात्र हो, किन्तु मानव को क्या ऐसे महान आदर्श के लिए आशान्वित न होना चाहिए ।

डॉ0 लोहिया का दर्शन-विश्व शान्ति का सच्चा प्रतीक है । निःशस्त्रीकरण, विश्व-विकास समिति, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद संयुक्त राष्ट्र संघ के पुनर्गठन और विश्व सरकार की उनकी योजनाएँ उन्हें विश्व नागरिक और उनके दर्शन को विश्व-दर्शन सिद्ध करती हैं । डॉ0 लोहिया के मत में साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों में राजनैतिक और आर्थिक केन्द्रीकरण है और दोनों में जन संस्कृति स्थूल और रूढ़िग्रस्त होती जाती है । पूँजीवादी व्यवस्था संस्कृति की और साम्यवादी व्यवस्था "रोटी" की झूठी प्रतीक है । विश्व के वास्तविक प्रश्न हल करने की शक्ति किसी में नहीं है । "सारे मानवों को पेट भर अन्न, मन की आजादी की प्यास" और "युद्ध बन्दी की तीन प्रमुख समस्याओं का हल न रूसी गुट के पास हैं और न अमेरिकी । अतः पूँजीवाद और साम्यवाद दोनों एक दूसरे के विरोधी होकर भी दोनों एकांगी और हेय हैं । आधुनिक प्रजातंत्रों और साम्यवाद की इस

अपर्याप्तता के कारण ही उन्होंने एक तृतीय सभ्यता की योजना प्रस्तुत की ।

भारत की समग्र राजनीति के अन्तिम पाँच व्यापक लक्ष्यों-समता, अहिंसा, विकेन्द्रीकरण, लोकतन्त्र और समाजवाद को साकार (ठोस) रूप प्रदान करने का श्रेय डॉ0 लोहिया को है । आय का निश्चित अनुपात 1:10 रखकर उन्होंने समता को साकार रूप दिया । इसी प्रकार छोटे यन्त्र और चौखम्भा-योजना प्रस्तुत कर विकेन्द्रीकरण को ठोस रूप दिया है । चौखम्भा राज्य, सविनय अवज्ञा, वाणी-स्वतंत्रता और कर्म-नियंत्रण के सिद्धान्त प्रतिपादित कर उन्होंने जन-इच्छा को महत्व दिया है और लोकतंत्र के व्यापक आदर्श को साकार रूप प्रदान किया है । वर्ण और वर्ग की व्यापक एवं यथार्थवादी व्याख्या द्वारा उन्होंने वर्णहीन और वर्गहीन समाजवादी व्यवस्था का साकार रूप प्रस्तुत किया है ।

डॉ0 लोहिया राष्ट्रवादी होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीयता के पुजारी थे, विद्रोही तथा क्रान्तिकारी होते हुए भी शान्ति व अहिंसा के उपासक थे और आधुनिक होते हुए भी आधुनिक सभ्यता का पुर्ननिर्माण चाहते थे । वे पश्चिम-पूर्व की खाई पाटना चाहते थे । मानवता के दृष्टिकोण से वे पूर्व-पश्चिम, काले-गोरे, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े राष्ट्रों और नर-नारी के बीच की दूरी मिटाना चाहते थे । जाति-समाप्ति, लोकतंत्र के विकास और शस्त्रास्त्र-समाप्ति के लिए भी अद्वितीय प्रयास किए । डॉ0 लोहिया ने एक साथ सात क्रान्तियों का आह्वान किया है । इस प्रकार कर्म के क्षेत्र में अखण्ड प्रयोग और वैचारिक क्षेत्र में निरन्तर संशोधन द्वारा नव निर्माण के लिए सतत् प्रयत्नशील भी डॉ0 लोहिया का एक

रूप है । जीवन का कोई भी पहलू शायद बचा हो, जिसे डॉ0 लोहिया ने अपनी मौलिक-प्रतिभा से स्पर्श न किया हो । मानव-विकास के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी विचारधारा सबसे भिन्न और मौलिक रही है ।

डॉ0 लोहिया के विचारों को हम पर्याप्त रूप में व्यवहारिक स्तर पर अवतरित होते देख रहे हैं । भले ही इस अवतरण की पृष्ठ-भूमि में गाँधीवाद, संविधान और सामाजिक चेतना की शक्ति हो, किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि डॉ0 लोहिया के लड़ाकू समाजवादी आन्दोलन ने जन-मानस पर गहरा प्रभाव डाला है । देश में सामाजिक न्याय का जो आन्दोलन चलाया जा रहा है और पिछड़ी जातियों एवं महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षण दिया जा रहा है उसके प्रेरणा स्रोत डॉ0 लोहिया ही रहे हैं । शरणार्थियों का आवागमन और बंगलादेश का अभ्युदय तो उनकी दूर-दृष्टि का स्पष्ट प्रमाण है । संविद सरकारों का अभ्युदय और पतन भी डॉ0 लोहिया की यादगार है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मूल स्रोतः-

डॉ० राम मनोहर लोहिया द्वारा लिखित पुस्तकों, भाषणों, लेखों एवं पत्रों की सूचीः

1. Marx, Gandhi and Socialism - Nav Hind Prakashan, Hyderabad, 1963.
2. Interval During Politics - Nav Hind Prakashan, Hyderabad, 1965.
3. Fragments of a World Mind - Maitrayani, 19-C Calcutta, 1952.
4. Guilty Men of India's Partition - Kitabistan, Allahabad, 1960.
5. India, China and Northern Frontiers - Nav Hind Prakashan, Hyderabad, 1963.
6. Rupees 25,000/A DAY, Nav Hind Prakashan, Hyderabad, 1963.
7. The Mystery of Sir Staffard Cripps, Padma Publication, Bombay, 1942.
8. Wheel of History, Nav Hind Publication, Second Edition, Hyderabad, 1963.
9. Will to Power - Nav Hind Prakashan, Hyderabad, 1956.

10. Note and Comments, Vol. I and II, Ram Manohar Lohia Samta Vidhyalaya Nyas, Hyderabad, 1975.

11. Aspects of Socialist Policy - Socialist Party Publication, Bombay, 1952.

12. Foreign Policy - Vishwavidayalaya Press, Mahatma Gandhi Marg, Allahabad, 1963.

13. The Struggle for Civil Liberties - Allahabad Law Journal Press, 1936.

14. India's Stand, Allahabad Law Journal Press, 1936.

15. Whither Communism ! Director of Socialist Education, Socialist Party Gorakhpur, 1956.

16. Twentieth Russian Congress and Indian Communists, Himmat Jhaveri, 204 New Charni Road, Bombay, 1956.

17. Letters to Socialists - Published by D.P. Agrawal, 35, Gora Chand Road, Calcutta - 14, 1956.

18. Constituent Assembly - Published by Lal Bahadur Shastri, Secretary, U.P.C.C. Lucknow, 1936.

19. India in Figures - Published by Lal Bahadur Shastri Secretary, U.P.C.C., Lucknow, 1936.

20. Third Camp in World Affairs - Samajvadi Prakashan, Hyderabad, 1958.

21. मर्यादित, उन्मुक्त और असीमित व्यक्तित्व और रामायण मेला, राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1962

22. जर्मन सोशलिस्ट पार्टी - राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1962

23. नरम और गरम पंथ - राम मनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969

24. सिविल नाफरमानी: सिद्धान्त और अमल, सोशलिस्ट पार्टी, हिमायतनगर, हैदराबाद, 1956

25. सिविल नाफरमानी की व्यापकता - समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1956

26. सच, धर्म, प्रतिकार और चरित्र निर्माण: आह्वान, समाजवादी प्रकाशन, हिमायत नगर, हैदराबाद, 1956

27. समलक्ष्य, समबोधः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969

28. कृष्णा और गोदावरी के इलाके में - समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1956

29. सगुण और निर्गुण - राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1968

30. समाजवादी आन्दोलन का इतिहासः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969

31. देश-विदेश नीतिः कुछ पहलूः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970

32. जाति प्रथाः नव हिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1964

33. समाजवादी एकता - समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1956

34. कांग्रेसी राज में न्याय और मजिस्टरी, समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, जनवरी, 1958

35. भारत में समाजवादः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1968

36. खर्च पर सीमाः प्रस्ताव और बहसः 21 कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-7, 1967

37. कांचनः मुक्ति, नव हिन्द पब्लिकेशन्स, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1956

38. संसदीय आचरण काशी विश्वविद्यालय, समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, 1958

39. राम, कृष्ण और शिवः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969

40. राग, जिम्मेदारी की भावना अनुपात की समझः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971

41. आजाद हिन्दुस्तान में नये रूझहानः नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1968

42. समाजवाद की अर्थनीतिः नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1968

43. समाजवाद की राजनीतिः नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1968

44. समदृष्टि. राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970

45. क्रान्ति के लिए संगठन भाग-1, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963

46. समाजवाद और हिन्दूवादः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970

47. देश गरमाओः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970

48. हिन्दू और मुसलमानः नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, दिसम्बर, 1963

49. भाषाः नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1964

50. इतिहास चक्रः अनुवादक ओंकार शरदः लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1968

51. कांग्रेस और युद्धः नेशनल हेराल्ड प्रेस, लखनऊ, 1939

52. क्रान्तिकरणः नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1966

53. सरकार से सहयोग और समाजवादी एकताः नव हिन्द प्रकाशन, जुलाई 1962

54. उत्तर प्रदेश और बिहार के एक दौरे के कुछ अनुभवः नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, अगस्त, 1962

55. राजस्थान और गुजरात के दौरे के कुछ अनुभवः नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, अगस्त 1962

56. सरकारी, मठी और कुजात गाँधीवादीः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1968

57. कृष्णः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1979

58. 2,500वीं बुद्ध जयन्ती और हिन्दुस्तान के पढ़े लिखे - समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, जनवरी, 1960

59. हिन्द-पाक युद्ध और एका - राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970

60. सुधरो अथवा टूटो - राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971

61. पाकिस्तान में पलटनी शासनः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969

62. निराशा के कर्त्तव्यः राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971

63. वशिष्ठ और बाल्मीकि - नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1956

64. समाजवादी चिन्तन - नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1956

65. सात क्रान्तियाँ - नव हिन्द, प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, 1966

66. भारत विभाजन के अपराधी - राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1970

67. धर्म पर एक दृष्टि: नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम मुद्रण, 1966

68. प्रधानमंत्री मि0 नेहरू पर प्रतिदिन पच्चीस हजार रूपये - कौटिल्य प्रकाशन, दरभंगा, सितम्बर, 1963

69. स्वर्गीय समाजवादी नेता डॉ0 राम मनोहर लोहिया का राँची - भाषण, प्रकाशक, अखिल भारतीय जाति-तोड़ो सम्मेलन, समताघर, पटना, 1968

70. विद्यार्थी और राजनीति: प्रकाशक, समाजवादी युवजन सभा, इलाहाबाद, 1965

71. सम्पूर्ण और सम्भव बराबरी: समाजवादी प्रकाशन, हैदराबाद, जनवरी, 1958

72. हिन्दू बनाम हिन्दू: लहर प्रकाशन, 2 मिन्टो रोड, इलाहाबाद, 1973

73. लोकसभा में लोहिया: भाग-1; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971

74. लोकसभा में लोहिया: भाग-2; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1972

75. लोकसभा में लोहिया: भाग-3; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1972

76. लोकसभा में लोहिया· भाग-4; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1973

77. लोकसभा में लोहिया: भाग-5; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास हैदराबाद, 1973

78. लोकसभा में लोहिया: भाग-6; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1974

79. लोकसभा में लोहिया: भाग-7; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1974

80. लोकसभा में लोहिया: भाग-8; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1974

81. लोकसभा में लोहिया: भाग-9; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1975

82. लोकसभा में लोहिया: भाग-10; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1975

83. लोकसभा में लोहिया: भाग-11; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1985

84. लोकसभा में लोहिया: भाग-12; राम मनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1986

85. लोकतंत्र संविधान और सरकार बनाम एकतंत्र जुल्म और हिटलरशाही, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित, लखनऊ 1967

86. सोशलिस्ट पार्टी का मौजूदा कार्यक्रम, डॉ0 राम मनोहर लोहिया द्वारा दिये गये भाषण से: जनमुख - प्रकाशन, 8, इण्डियन मिरर स्ट्रीट, कलकत्ता-13, 1959

87. सोशलिस्ट पार्टी स्थापना - सम्मेलन, हैदराबाद, अध्यक्षीय भाषण, 28 दिसम्बर, 55, प्रकाशक, सोशलिस्ट पार्टी, हिमायतनगर, हैदराबाद ।

88. हिन्द किसान पंचायत के प्रथम वार्षिक अधिवेशन के अध्यक्ष श्री राम मनोहर लोहिया का अभिभाषण रीबां (विंध्य प्रदेश) (26 फरवरी 1950) - अधिकार प्रेस, 22 कैसरबाग, लखनऊ

89. अर्थशास्त्र: मार्क्स के आगे: अनुवादक ओंकारशरद: लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1980

90. समाजवाद के आर्थिक आधार - नव भारत प्रकाशन गृह लहरिया सरायं, 1952

91. बिना हथियारों की दुनिया और सात क्रान्तियाँ - जन अंक, मार्च-अप्रैल 1970

92. गाँधी जी का दोष - जन, गाँधी स्मृति अंक, अक्टूबर, 1967

93. मार्क्सवाद और समाजवाद - जन अंक, जून और जुलाई, 1970

94. हिन्दुस्तान और पाकिस्तान - जन, अगस्त, 1969

95. समता और सम्पन्नता - जन अंक, अप्रैल, 1966

96. समाजवाद और लोकतंत्र - जनवाणी काशी विद्यापीठ वाराणसी, जुलाई 1950

97. "भारत माता पृथ्वी माता, काशी बनाम हिन्दू" - जन फरवरी, 1966

98. "हत्यारे का बढ़ता हुआ हाथ" - जन सितम्बर, 1966

99. पूँजी निर्माण का तरीका लोकतांत्रिक राज व्यवस्था - जनवाणी, अप्रैल 1950

100. चार सरकारी "बन्दियाँ" - जन अंक नवम्बर, 1966

101. भारतीय समाजवाद का इतिहास - चौखम्भा मार्च, 1964

102. गाँधीवाद और समाजवाद - जन, अक्टूबर, 1968

103. डॉ0 लोहिया द्वारा प्रो0 लास्की को लाहौर जेल में लिखा पत्र 1945, मैनकाइण्ड, फरवरी, 1968

104. जेल मंत्री, उत्तर प्रदेश सरकार को सन् 1957 में लिखा पत्र जो बाद में "वशिष्ठ और बाल्मीकि" नाम से प्रकाशित हुआ।

105. डॉ0 लोहिया द्वारा भारत के राष्ट्रपति चुनाव के समय संसद एवं राज्यों के विधान सभाओं के सदस्यों के नाम लिखा पत्र, मई 2, 1967

द्वितीय स्रोत

1. अप्पादुराई, ए0: बीसवीं शताब्दी में भारतीय राजनीतिक चिन्तन, साउथ ऐशियन पब्लिसर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1990

2. अरमुगम - सोशलिस्ट थॉट इन इण्डिया - दि कन्ट्रीब्यूशन ऑफ राम मनोहर लोहिया, स्टरलिंग पब्लिशर्स प्रा0लि0, नई दिल्ली, 1978

3. केलकर इन्दुमतिः लोहियाः सिद्धान्त और कर्म, नव हिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963

4. प्रसाद, अखिलेन्द्र राय - सोशलिस्ट थॉट इन मार्डन इण्डिया, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1974

5. भसीन, प्रेमः डॉ0 लोहिया एण्ड एशियन सोशलिज्म, जनता, वाल्यूम, नम्बर 38-39, अक्टूबर 15, 1972, पृष्ठ - 9-12

6. भगवान सिंह - डॉ0 राम मनोहर लोहिया, समता प्रकाशन, बलिया, 1972

7. भटनागर राजेन्द्र मोहनः समग्र लोहिया, किताब घर, नई दिल्ली, 1982

8. मेहरोत्रा नानक चन्द्र - लोहिया ए स्टडी, आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली, 1978

9. मेहता अशोक - एशियाई समाजवाद एक अध्ययन, अखिलः भारत सर्व सेवा संघ बर्धा, 1959

10. मधुलिमये - स्वतंत्रता आन्दोलन की विचारधारा, पल्लवन प्रकाशन, क्यू 22 नवीन शाहदरा, 1983

11. मधुलिमये - चौखम्भा राज्य, एक रूप रेखा, समता प्रकाशन, कलकत्ता, 1973

12. दीपक ओम प्रकाश - लोहिया असमाप्त जीवनी, समता अध्ययन न्यास जय प्रकाश नगर गोरे गाँव, पूर्व बम्बई, 1978

13. नरेन्द्र देव आचार्य - राष्ट्रीयता और समाजवाद, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, बसंत पंचमी, 2006

14. ठाकुर कृष्ण नन्दनः डॉ0 राम मनोहर लोहिया के आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली, 1979

15. शरद ओंकार - लोहिया - रंजना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1967

16. शरद, ओंकारः लोहिया के विचार - लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969

17. शास्त्री, पी0सी0 - लोहियाज फारेन पालिसी एटीट्यूड्स, इन्टर डिसिपलिन, वाराणसी, वाल्यूम - 5, नं0 - 4, 1968

18. शर्मा, यतीन्द्र - डॉ0 लोहिया का अर्थ दर्शन, चित्रा प्रकाशन, शास्त्रीनगर, कानपुर, 1979

19. सिन्हा एल0पी0 - द लेफ्टविंग इन इण्डिया, रूकमणी सिन्हा फार दि न्यू पब्लिशर्स दमुचक रोड, मुजफ्फरपुर बिहार, अप्रैल 1965

20. सुबानी, एस0एम0एम0 - एटीट्यूड ऑफ सोशलिस्ट्स टूवर्ड्स इण्डियाज फारेन पालिसी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1977

21. बा0रा0 राजहंस - भारत-पाक महासंघ क्यों और कैसे ? प्रकाशक- व्ही0एम0 पटवर्धन, शुद्धोधन प्रेस, शानवर, पूना-2

22. बर्मा, रजनीकान्त - लोहिया और औरत, लोहियावादी साहित्य विभाग, श्री विष्णु आर्ट प्रेस, चक, इलाहाबाद, 1969

23. बर्मा, रजनीकांत - लोहिया और जाति प्रथा - रंजना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

24. बर्मा, रजनीकान्त - गैर कांग्रेसवाद और लोहियावाद - रंजना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

25. वर्मा, रजनीकान्त - "लोहिया" - रश्मि प्रकाशन, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद, 1968

26. कृष्णनाथ - सत्याग्रह - लोहियावादी साहित्य विभाग, श्री विष्णु आर्ट प्रेस, चक, इलाहाबाद-3, 1969

27. वर्मा, बी0पी0-आधु0 भारतीय राजनीतिक चिन्तन, आगरा प्रथम संस्करण जुलाई-1971

डॉ0 राम मनोहर लोहिया पर अन्य विद्वानों एवं राजनेताओं के लेख

1. ओम प्रकाश दीपक - "नई सभ्यता का सपना" लोहिया बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, सी-2 पार्क रोड, लखनऊ, 1984

2. श्रीकान्त वर्मा - लोहिया के बगैर भारत, रविवार, मार्च 1985, आनन्द बाजार, प्रकाशन 6 तथा 9 प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट, कलकत्ता।

3. नीलम संजीव रेड्डी - "राम मनोहर लोहिया", जन अंक, मार्च 1969

4 किशन पटनायक - "ट्रस्टीशिप का विचार", जन सितम्बर, 1969

5. मधुलिमये - लोहिया के बगैर भारत, रविवार मार्च, 1985

6. मधुलिमये - लोकसभा लोहिया के बिना - जन दिसम्बर, 1967

7. रामानन्द मिश्र - "लोहिया": बहुआयामी व्यक्तित्व लोहिया स्मारिका समिति, पार्क रोड, लखनऊ ।

8. रामचन्द्र प्रधान - भारतीय राजनीतिक दल और विदेशनीति, जन अगस्त, 1969

9. रमेश दीक्षित - लोहिया के "सच्चे उत्तराधिकारी, राजीव गाँधी", रविवार, मार्च 1985

10. लाडली मोहन निगम - पत्रों के आइने में यादों के रूझान, धर्मयुग, जनवरी, 1984, गणतंत्र विशेषांक टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रेस, डी0डी0एन0 रोड, बम्बई-1।

11. कन्हैया लाल डूँगरवाल - गाँधी और लोहिया कानून की दुनिया में जन, गाँधी शताब्दी अंक

12. लक्ष्मी कान्त वर्मा - आधारभूत मूल्यों का अन्वेषी, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अंक, 'लहर', प्रकाश जैन द्वारा प्रकाशित, महात्मा गाँधी मार्ग; अजमेर, मार्च-अप्रैल, 1968

13. रघुवंशः अपनी परम्परा की परख 'लहर' मार्च-अप्रैल, 1968, प्रकाश जैन, द्वारा प्रकाशित, महात्मा गाँधी मार्ग; अजमेर ।

14. राजेन्द्रपुरी - 'वीदाउट लोहिया' - वीकेन्ड रिव्यू, अक्टूबर 21, 1967, हिन्दुस्तान टाइम्स लि0, नई दिल्ली ।

15. डॉ0 हरदेव बाहरी - "डॉ0 लोहिया का नारा 'अंग्रेजी हटाओ', जन, डॉ0 लोहिया विशेषांक, 24 मार्च; 1978, प्रताप भवन 5, बहादुरशाह जफर मार्ग; नई दिल्ली"

पत्रिकाएँ

(1) हरिजन, (2) जनता, (3) संघर्ष; (4) चौखम्भा, (5) जन, (6) मैनकाइण्ड, (7) दिनमान, (8) धर्म युग, (9) रविवार, (10) लिंक, (11) वीकेन्ड रिव्यू